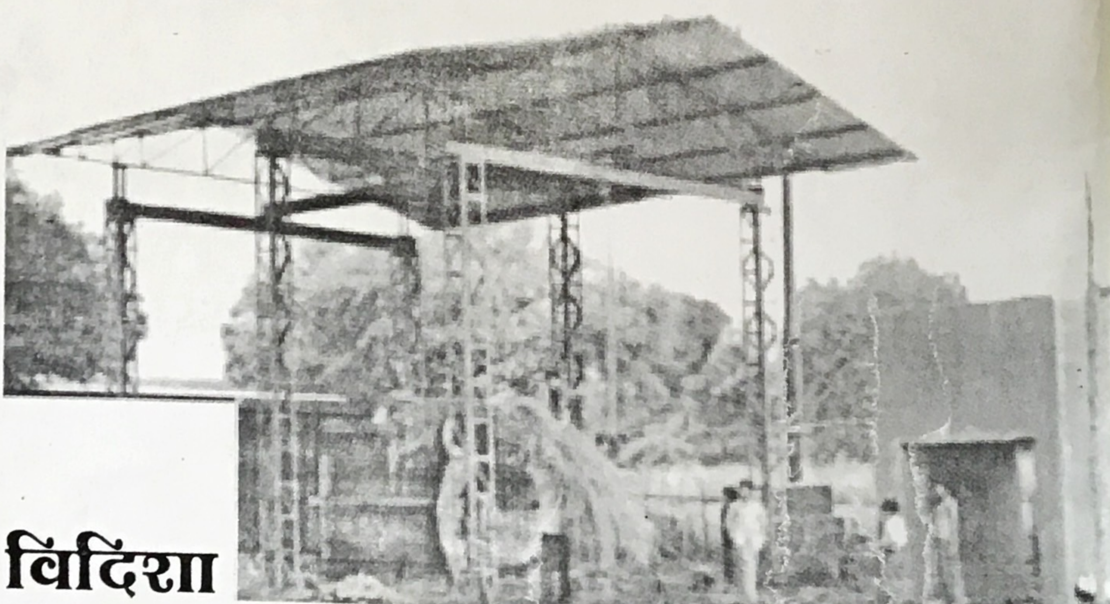


बुंदेली बसंत



पंजी. क्र. MPHIN-17761/12/1/2002-TC

बुन्देली साहित्य, संस्कृति तथा इतिहास को समर्पित

बुन्देली बसन्त

अंक 5 वर्ष 5 17 फरवरी 2004

संरक्षक :

शंकर प्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्नाराजा'

राजमहल परिसर, छतरपुर (म.प्र.)

☎ : (०७६८२) २४१२९०, २४१४२९

संपादक :

डॉ. बहादुर सिंह परमार

४/२, प्रोफेसर्स कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.) ४७१००१

☎ : (०७६८२) २४४१३३

सह संपादक :

डॉ. के. एल. पटेल

३/४, प्रोफेसर्स कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)

डॉ. हरिसिंह घोष

घोषयाना, संकटमोचन मार्ग, छतरपुर (म.प्र.)

☎ : (०७६८२) २४३०६६

प्रकाशक :

बुन्देली विकास संस्थान

बसारी जिला छतरपुर (म.प्र.) ☎ : (०७६८६) २८१२५१

✦

☐ संपादन एवं प्रबंध पूर्णतया अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

✦

☐ **आवरण चित्र :**

रामकुमार सोनी, छतरपुर (म.प्र.)

✦

☐ **छाया चित्र :**

आर.के. स्टूडियो एवं दिनेश पटेल, छतरपुर

✦

☐ सहयोग राशि :

१००/– (एक सौ रुपये)

✦

☐ **संगणकीय अक्षर संयोजन :**

जीतेन्द्र बस्वापट्टनकर, छतरपुर

✦

☐ **मुद्रक :**

जिला सहकारी संघ मुद्रणालय मर्या०,
छतरपुर (म.प्र.) ☎: (०७६८२) २४८६८६

✦

☐ **आवरण मुद्रण :**

प्रियंका आफसेट, भोपाल (म.प्र.) ☎: (०७५५) २५५५७८९

✦

अनुक्रम

भाषा, साहित्य एवं आलोचना –

संस्कृति –

इतिहास एवं पुरातत्व –

बुन्देली काव्य –

बुन्देली गद्य –

अन्य –

———

संपादकीय –

हमारा देश विविधताओं को समेटे एक विशाल राष्ट्र है। इसमें विभिन्न धर्मों, जातियों–उपजातियों, सम्प्रदायों, क्षेत्रीय भाषायी विशिष्टताओं वाले नागरिक एकसाथ निवास करते हैं। शहरों–कस्बों और गाँवों में हमारी आबादी निवास करती है। इस आधार पर देखें तो बहुसंख्यक लोग गाँवों में रहते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि असली भारत देखना है तो गाँवों को देखो। लेकिन आज दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि चाहे आर्थिक संसाधनों के उपभोग की बात हो, भौतिक सुविधाओं के पहुंचने की बात हो या विकास के आयामों को गढ़ने की बात हो – शहर गाँवों की पीठ पर सवार होकर आगे बढ़ रहे हैं। कमोवेश साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में भी यही स्थिति बनी हुयी है। आज ग्रामीण निर्धनों, वंचितों, शोषितों और दलितों के नाम की लड़ाई महानगरों के वातानुकूलित ड्राइंग रूमों में बैठकर बहसों के माध्यम से लड़ी जा रही है। संस्कृति के क्षेत्र में काम करने के लिए राजकीय स्तर पर अनेक परिषदें, अकादमियाँ व समितियां गठित हैं। इनमें से कुछेक को छोड़कर लगभग सभी अकादमियों, समितियों व परिषदों के कर्ताधर्ता औपचारिक नौकरी करके संस्कृतियों की सेवा कर रहे हैं। गाँवों भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं को अपने जीवन में न केवल संरक्षित करता है बल्कि उसे आत्मसात करके जीता भी है। इसके बारे में अध्ययन, मनन–चिन्तन हेतु सांस्कृतिक केन्द्रों का गठन ग्रामीण स्तर पर ही होना चाहिए क्योंकि कस्बों–नगरों व महानगरों में बैठकर संस्कृति के बारे में सही निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते हैं। शहर से अध्ययनकर्ता जब गांव जाते हैं तो उनकी मानसिकता पिकनिक मनाने जैसी होती है और वह ठीक से तथ्यों का निरीक्षण भी नहीं कर पाता है। विश्लेषण तो दूर की बात है। इसी समस्या को केन्द्र में रखकर छतरपुर जिले के ठेठ ग्रामीण अंचल में अवस्थित ग्राम बसारी में बुन्देलखण्ड के लोक सांस्कृतिक पक्षों को रेखांकित करने, उनके अध्ययन हेतु बुन्देली विकास संस्थान का गठन कर कार्य किया जा रहा है। लोकसंस्कृति आचरण की संस्कृति होती है और आचरण में सदैव परिवर्तन दिखाई देता है। इस बदलाव को किस रूप में देखा जाये यह दर्शक की दृष्टि पर निर्भर करता है। बदलाव विभिन्न दवाबों के चलते सकारात्मक व नकारात्मक होते हैं। हमारे संस्थान का उद्देश्य है कि नकारात्मक प्रभावों को कम कर सकारात्मक पक्ष को उत्प्रेरित किया जावे।

लोकसंस्कृति व साहित्य में जन–चेतना का प्रवाह होता है। कुछ लोग इसे 'सामंती अवशिष्ट' तथा 'रीतिकालीन' जैसी संज्ञाएं प्रदत्त करते हैं जो सर्वथा गलत है। लोक संस्कृति व साहित्य में आम आदमी के दुख–दर्द, पीड़ा, सुख, प्रेम, भक्ति, शौर्य तथा संघर्ष की गाथा रहती है। बुन्देलखण्ड के लोकसांस्कृतिक व साहितियक विरासत जनपक्षधरीय रही है। किन्तु विद्वानों के सत्ताश्रयी व सीमित

चिन्तन के कारण लोक रचनाधर्मिता का सही पक्ष नहीं आ पाया है। आज भी कुछ रचनाकार मात्र श्रृंगार, नखशिख वर्णन, नायिका भेद, प्रकृति वर्णन व भक्तिभावों से ओत–प्रोत कीर्तननुमा रचनायें रच रहे हैं। जिससे बुन्देली का विकास परिलक्षित न हो उसका ठहराव दिखने लगता है। ऐसे रचनाकारों से विनम्र निवेदन है कि वे बुन्देलखण्ड अंचल में व्याप्त दुख–दर्द, पीड़ा–अभाव, संघर्ष, वैषम्य, शोषण के साथ सुख व विकास के नये पक्षों को अपनी रचनाओं में स्थान दें तो हम बुन्देली की सही सेवा कर पायेंगे। इसी तरह विधागत समृद्धता लाने की आवश्यकता है – मात्र प्रबंधात्मक काव्य या चौकड़ियाँ, कुण्डलियाँ या गीतों के लिखने से काम चलने वाला नहीं है। नाटक, कहानियां, व्यंग्य, उपन्यास, संस्मरण, साक्षात्कार, रिपोर्ताज आदि नयी विधाओं में कलम चलाने की आवश्यकता है। शोध हेतु भी दृष्टि बदलना होगी। मात्र सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, भावगत चेतनायें आदि खोजने से हम बुन्देली को मजबूती से खड़ा नहीं कर पायेंगे। इतिहास के उन अनछुए पहलुओं को भी उद्‌घाटित करने की आवश्यकता है जो अभी तक समाज के समक्ष नहीं आ सके हैं। उन पुरातात्विक अवशेषों को सहेजने तथा पुरानी पाण्डुलिपियों को खोजने तथा वाचिक परम्परा की ज्ञानधारा को संरक्षित करने की आवश्यकता है। हर जाति व क्षेत्र का अतीत गौरवशाली रहा है, अपना बुन्देलखण्ड भी कहीं पीछे नहीं है किन्तु वर्तमान भी खुशहाल व समृद्ध बनाने की आवश्यकता है। आज हमें वर्तमान का उपयोग कर स्वर्णिम भविष्य की मंगलकामनाओं के साथ जुटना होगा। तभी हम माटी की सार्थक सेवा कर पायेंगे।

'बुन्देली बसन्त' के इस अंक में वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक' द्वारा बुन्देली में लिया गया साक्षात्कार, 'निबौरी' कहानी तथा 'बुन्देली की एकाक्षरी शब्द सम्पदा' साहित्यिक विकास को रेखांकित करने का प्रयास है। बुन्देली के साधक पंडित गौरीशंकर द्विवेदी, पजनेश, हरिदेव, बिहारी जी तथा डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त आदि पर सामग्री देकर उनकी सेवाओं को प्रेरणास्वरूप स्मृत करने का प्रयत्न है। कविताओं में भी विषय वैविध्य का ध्यान रखकर समकालीन जीवन को प्रतिबिम्बित करने तथा ऐतिहासिक आलेखों में विभिन्न पुरातात्विक धरोहरों के महत्व को उद्‌घाटित करने का प्रयत्न किया गया है। इसमें हम कहाँ तक सफल हुये हैं? यह तो आप सभी सुधी पाठक ही तय करेंगे।

अपने लेखकीय सहयोगियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए बुन्देली विकास संस्थान के संरक्षक श्री शंकर प्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्नाराजा' तथा अन्य सभी सहयोगियों के प्रति मैं हृदय से आभार ज्ञापित करता हूँ जिनके प्रयत्न परिश्रम व सहयोग से यह अंक आपके सामने आया है।

बहादुर सिंह परमार

चिट्ठी मिली अपुन की —

बुन्देली बसन्त का आद्योपान्त अवलोकन किया एवं गंभीरता से पठन–अध्ययन भी। मैं एक विशेष माटी से उद्भूत सांस्कृतिक सुमन–सौरभ से सराबोर होकर एक अकिंचना कम्पाउण्डर की हैसियत से उस विषय में अपना अभिमत प्रस्तुत करने का दुस्साहस कर रही हूँ व किसी को स्वीकार हो अथवा न भी हो।

सम्पूर्ण बुन्देली बसन्त बुन्देलखण्ड के लोकदर्शन को अभिव्यक्त करने में सफल हुयी है। उसके लिए सम्पादन विभाग अपने परीक्षक, आत्मीयता एवं बौद्धिक संयोजन के लिए, प्रशंसा का पात्र रहेगा। किसी भी वस्तु–स्थिति का अस्तित्व कहीं न कहीं अवश्य ही छुपा हुआ या अज्ञात होता है। उसका प्रकाशन कुशलता से जनता के समक्ष प्रस्तुत करना एक संपादक के कुशाग्रता पर ही निर्भर करता है। बुन्देली माटी के महत्व को इस यांत्रिक युग में भी शुद्ध, स्वच्छ, निर्मल रखकर उसको प्रदूषिता से बचाये रखना एक विशेष अस्मिता की पहचान है। संपादकीय में ही लोककथा, लोककाव्य और लोकगीत आदि और भी अन्य लोकविधा कृतियों का प्रोल्लेख कर देने से उसके अध्ययन में पाठक की और भी अधिक रुचि बढ़ती जाती है।

इसके अतिरिक्त विशेष उल्लेखनीय वे बिन्दु भी हैं जो बुन्देली माटी से प्रसूत बुन्देली परिजनों को शोधकार्य के लिये प्रेरित प्रोत्साहित करते हैं — १. बुन्देली के माधुर्य का ध्वनि वैज्ञानिक विश्लेषण (डा. कैलाश बिहारी द्विवेदी) २. बुन्देली बोली की साहित्यिक भाषा — समस्यायें और समाधान (पं. गुणसागर सत्यार्थी), ३. लोकसंस्कृति के संरक्षण की दिशा (अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद') जैसे आलेख शोधार्थियों के लिए एक वैज्ञानिक विधा दिशा निर्देश दे रहे हैं।

— श्रीमती विजया केलकर,
छतरपुर

बुन्देली बसन्त का अंक प्राप्त हुआ इस अंक की अधिकांश रचनाएं आकर्षक स्तरीय हैं। डॉ. गंगाप्रसाद बरसैंया का आलेख 'अज्ञात प्रतिभा — अमान सिंह गोटिया', डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी का आलेख 'बुन्देली के माधुर्य का विश्लेषण' एवं साकेत सुमन चतुर्वेदी का आलेख 'एक लोक खेल तूरमार' विशेष रूप से पसन्द आये।

— डॉ. परशुराम शुक्ल
१००, पंचशील नगर, दतिया

बुन्देली विकास संस्थान 'बुन्देली उत्सव' तथा बुन्देली बसन्त के प्रकाशन से बुन्देलखण्ड क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। इससे बुन्देली भाषा–साहित्य, संस्कृति, संगीत एवं कलाओं के विकास हेतु सार्थक प्रयास हो रहे हैं।

— हरिविष्णु अवस्थी
अवस्थी चौक, टीकमगढ़

मुझे सौभाग्यवश 'बुन्देली बसन्त' की एक प्रति डॉ. संध्या जैन 'श्रुति' के माध्यम से प्राप्त हुयी। उसको पढ़कर लगा कि मैं बुन्देलखण्ड अंचल में पहुंच गया हूँ इसमें बुन्देलीसंस्कृति साहित्य व इतिहास के पक्षों को उजागर किया गया है। मेरी ओर से हार्दिक बधाई स्वीकारें।

— मनिराम सिंह ठाकुर 'मुकुल'
११३०, नीलगगन, आधारताल, जबलपुर

राधा कृष्ण बुन्देली जी के यहां से आपकी पत्रिका बुन्देली बसन्त देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कलेवर एवं सामग्री की दृष्टि से पुस्तक उपयोगी है।

— डॉ. प्रेमप्रकाश शुक्ल
अलीगंज, बांदा

बुन्देली बसन्त २००३ मिली। सम्पादनशीलता हेतु सम्पादक मण्डल को बधाई इस पत्रिका के माध्यम से आप बुन्देली पर उत्कृष्ट सामग्री उपलब्ध करा रहे हैं। श्री शंकर प्रताप सिंह ने इस संस्था की स्थापना कर एक ऐसा बड़ा काम किया है जो सदियों तक उन्हें याद रखेगा।

— डॉ. लोकेन्द्र सिंह नागर
रघुवंश नगर, भांडेर मार्ग, दतिया

बसारी महोत्सव एवं बुन्देली बसन्त के माध्यम से श्री शंकर प्रताप सिंह एक बुन्देली का बड़ा अनुष्ठान कर रहे हैं। उन्हें भगवान रामराजा सत्कीर्ति देकर दीर्घायु प्रदान करे।

— डॉ. कन्हैया लाल 'कलश'
बुन्देली वार्ता, शोध संस्थान, गुरसरांय

बुन्देली बसन्त का अंक मिला, अंक पढ़कर प्रसन्नता हुयी कि इसमें बुन्देलखण्ड के विविध पक्षों को समेटने का प्रयत्न किया गया।

— अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'
मण्डपम्, राठ रोड, उरई

सम्पादक मण्डल ने बुन्देली बसन्त का अच्छा सम्पादन किया है। इससे शोध के क्षेत्र में शोधार्थियों को मदद मिलेगी। बुन्देली बसन्त के निरन्तर आगे बढ़ने हेतु हमारी शुभकामनाएं।

— **भारतेन्दु प्रकाश**
विज्ञान शिक्षा केन्द्र, तिंदवारी, बांदा

सचमुच बसन्त पत्रिका बुन्देली भाषा, साहित्य संस्कृति का अलंकार साबित हो रही है। लोक क्षेत्र में बहुचर्चित चौमासा पत्रिका के बाद बसन्त पत्रिका एक सराहनीय प्रयोग है। इसमें बुन्देली बोली की कविताओं को चार पांच पेज में एक साथ क्रमबद्ध रूप से प्रकाशित करें तो बुन्देली कविताओं का अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

— **माधव शुक्ल 'मनोज'**
सी/१३, अवन्ती विहार, तेलीबांधा, रायपुर (छ.ग.)

बसन्त का नया अंक प्राप्त हुआ। उच्चस्तरीय पठनीय सामग्री, सुन्दर छपाई देखकर प्रसन्नता हुयी। बसन्त का रूप वर्षानुवर्ष प्रगति कर रहा है। सम्पादक मण्डल बधाई का पात्र है।

— **मधु—दिनेश**
कानपुर रोड, झांसी

बुन्देली बोली में बसन्त पत्रिका का प्रकाशन एक अच्छा प्रयास है। पत्रिका के सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

— **पं. गंगाराम शास्त्री**
ई—४/६४, अरेरा कॉलोनी, भोपाल

बुन्देली विकास संस्थान बसारी द्वारा प्रकाशित बुन्देली बसन्त पत्रिका एक स्तुत्य प्रयास है। इसे सतत रूप से जारी रखा जावे।

— **शिव कुमार तिवारी**
नीमखेड़ा फार्म, कुण्डेश्वर, टीकमगढ़

बुन्देली वसन्त पत्रिका बुन्देली ज्ञानप्राप्ति के लिए मार्गदर्शक के रूप में कार्य कर रही है। इस पत्रिका में जो निष्पक्षता अभी तक बनी हुयी है वह आगे भी बनी रहे तो यह पत्रिका ज्ञान का सतत प्रवाह करती रहेगी।

— **जीतेन्द्र बस्वापट्टनकर**
महोबा रोड, रोडवेज डिपो के सामने, छतरपुर

बुन्देली के उत्कर्ष के लिए बुन्देली बसन्त का योगदान सदैव जीवित रहेगा। सम्पादक मण्डल बुन्देल भारती की महती सेवा कर रहा है। यह पत्रिका शोध परालेखों और संस्कृति के बहुमूल्य पक्षों को प्रतिभाषित और उद्घाटित करती है। पत्रिका के आलेखों को पढ़कर हम रोमांचित और जीवित होते हैं। माँ वीणापाणि आप स्वजनों से यह पुण्यकार्य सतत कराती रहे ऐसी प्रार्थना है।

— **डॉ. अवध किशोर जड़िया**
ललपुर, जिला छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देली बसन्त को अंक भौतई नौनो लगो — भौत गुरीरौ और साँची कओ सो मोय भैया निहाल अहमद जू की लघु कथाएं (जिनै ठक्का—ठाई कैं तौ जांदा ठीक है) भौतई मन खां भांती। बसन्त पै कभऊ पतझर न आ पावै ऐसौ उपाय करैं रइयो।

— **डॉ. लखनलाल खरे**
कोलारस, जिला शिवपु

बुन्देली बसन्त की नई पत्रिका पाकें खुसी तो भौत भइ पै ऐसौ लगत कहूं कहूं संपादक संकोच में परकें पत्रिका के स्तर सें बहुत दूर के कलेवर खां भी अंगीकार कर लेत। अच्छौ हूहे कि अपने स्तर कौ ख्याल रखो जाय। हमाई शुभकामनायें हमेशा रैहें। हम ऐसे सहयोग के लाने सदा तैयार बने रात, सो जानियों। अपुन को...

— **रामस्वरूप सिंह**
गौरिहार, जिला छतरपुर

बुन्देली बसन्त में बुन्देली माटी का प्रेम और इस अंचल के कलासाधकों की कला को रेखांकित करने का प्रयास किया जा रहा है, जो स्वागत योग्य है मेरा सुझाव है कि बुन्देली उत्सव के दौरान ही बुन्देली कवि सम्मेलन का आयोजन भी हो। तो बुन्देली कवियों से आम आदमी का परिचय बढ़ेगा।

— **साकेत सुमन चतुर्वेदी**
७२१, चित्रा चौराहा, झांसी

बुन्देली बसन्त के माध्यम से इस अंचल की साहित्यिक, सांस्कृतिक व ऐतिहासिक धरोहर को समाज के सामने प्रकट करने का प्रशंसनीय कार्य किया जा रहा है। मेरी इस शुभ कार्य हेतु हार्दिक शुभकामनाएं।

— **डॉ. बारे लाल जैन**
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय,
रीवा (म.प्र.)

(इन पत्रों के अतिरिक्त अन्य पाठकों के पत्र भी प्राप्त हुये हैं। सभी को उत्साहवर्धन हेतु धन्यवाद — सम्पादक)



बुन्देली लोकगीतों में गणपति स्तवन

- डॉ. हरिमोहन पुरवार 'बुन्देलरत्न'

विघ्नहर्ता, पापहर्ता, मंगलकर्ता देवाधिदेव श्रीगणपति देवा तो आदि देव हैं। श्री गणेश आराधना से सर्वत्र मंगल ही मंगल होता है। सिद्ध पवित्र भूमि बुन्देलखण्ड में भी श्री गणपति आराधना आदि काल से चली आ रही है। इसीलिये यहां के जनजीवन के हृदय में श्री गणपति का वास है और आराधना के समय जन जीवन गा–गाकर श्रीगणपति के स्तवन में ऐसा निमग्न होता है कि वह सभी मायावी बन्धनों को तोड़कर नृत्यरत हो उठता है।

श्री गणपति आदि देव हैं। यद्यपि जहां पुराणों में हमें यह वर्णन मिलता है कि श्री गणेश जी भगवान भोले शंकर व जगतजननी मां उमा के सुपुत्र हैं वहीं यह भी प्रमाण मिलता है कि पार्वती महेश्वर विवाह के अवसर पर मंडप के नीचे परम पवित्र गोबर से निर्मित श्रीगणेश जी की मूर्ति विराजमान थी जिसका अर्चन वन्दन पार्वती व महेश्वरजी ने किया था। इस आश्चर्यजनक दृष्टान्त को बुन्देलखण्ड के लोक जीवन में लोकगीत के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है –

जौ देखौ मैं अचरज भारी
मड़वा बीच खम्बं के नैंचे, मूरत गोबर बारी
गौरा पारबती संग भोला, पूजा करत तिहारी
पैलंऊ से तुम कां ते आ गये, दीनबन्धु हितकारी
बिकट सांकरे संकट काटत, गनपत गुन अधिकारी
हांत जोड़ दोऊ बिनती कर रये, बिपदा लेऊ निवारी।''

श्री गणेश जी महाराज की सर्वप्रथम पूजा करते हुये यहां पर मंगलगान किया जाता है –

सबसे पैले गनेस मनाऊँ
कुलदेवा कुलगुरु खौं पूजूं, महादेव को ध्यायूँ
जगदम्बा की करके सेवा, मन मांगो फल पाऊँ
दूबा फूल बतासा केरा, हर हर बम बम गाऊँ
आक धतूरा बेल पत्ती लै, लडुअन थार सजाऊँ।''

शिव पुराण में हमे वर्णन मिलता है कि मां पार्वती ने अपने शरीर के मैल से श्रीगणेश जी को जन्म दिया है। अतः वही उनकी माता है। पार्वती जी के पति शिवजी हैं। अस्तु वे श्रीगणेश जी के पिता हुये। परन्तु उमा महेश्वर के विवाह के अवसर पर भी जब श्रीगणेश जी उपस्थित थे तब शंका स्वाभाविक ही है। अतः श्रीगणेश जी से उनके माता पिता के विषय में पूंछतांछ करते हुये कहा जाता है –

सब देवन ने फूल बरसाये, महाराज गजानन आये।
देबा कौन तुम्हारी माता हैं, और कौना के लाल कहाये?
महाराज गजानन आये.......।।
देबा पारबती मोरी माता हैं, और सिब संकर के लाल कहाये।
महाराज गजानन आये........।।
देबा कौन तुम्हारी पूजा है, और काये के भोग लगाये?
महाराज गजानन आये.........।।
देबा धूप दूब मोरी पूजा है, और लडुअन के भोग लगाये।
महाराज गजानन आये..........।।

श्री गणपति का शरीर बड़ा विलक्षण है। उनका सिर हाथी का है। पेट और कान बड़े–बड़े हैं। चार–चार भुजा वाले हैं। चूहे की सवारी है। जब हम गणेश जी के शरीर के अंगों का गुणानुसार मनन चिन्तर करते हैं तो पाते हैं कि उनका यह स्वरूप पूर्णरूपेण समाजिक स्वरूप है। श्री गणेश का ठिगना आकार हमें यह शिक्षा देता है कि सामाजिक व्यक्ति में अहम नहीं होना चाहिये तथा समाज में बड़ा बनकर नहीं अपितु छोटा बनकर ही रहना चाहिये जिससे समाज के प्रत्येक व्यक्ति व वर्ग का स्नेह प्राप्त हो सके। श्री गणेश का सिर जहां बुद्धि, धैर्य एवं गाम्भीर्य का द्योतक है वहीं उनके बड़े बड़े कान यह इंगित करते हैं कि समाज में रहते हुये अपने कानों को चौकन्ना रखना चाहिए तथा सबकी सुनना चाहिए। श्रीगणेश का उदर लम्बा होता है जिससे यह स्पष्ट है कि व्यक्ति समाज में रहते हुये सबकी सुने तथा सबकी सभी बातों को उदरस्थ करता जाये और इधर उधर चुगलखोरी न करे तथा उचित समय पर यदि आवश्यक हो तो उदरस्थ बात को प्रकाश में लाये। श्रीगणेश को एकदन्त कहा जाता है। समाज की एकता के लिए अक्सर यह कहा जाता है कि ''बे लोग तो एकई दांत से रोटी खात हैं।'' अर्थात् आपस में अगाध प्रेम का सूचक है यह एक दन्त। श्रीगणेश का मोदक प्रिय होना भी यही इंगित करता है। कि जिस प्रकार से अलग–अलग बूंदी को एक साथ मिलाकर मोदक बनाकर उसे ग्रहण करने से शारीरिक पुष्टता प्राप्त होती है उसी भांति समाज के सभी बिखरे पड़े वर्गों को इकत्रित कर सामाजिक कार्यों में लगने से समाज में प्रगतिरूपी पुष्टता आती है। श्री गणेश की सवारी चूहा है चूहों की यह प्रकृति होती है कि वे प्रत्येक वस्तु को कुतर कर नष्ट कर देते हैं। अतः इससे यह शिक्षा मिलती है कि समाज को तोड़ने (कुतरने) वाली शक्तियों पर धीरज तथा गम्भीरता का अंकुश लगाकर उन्हें नियंत्रित किया जा सकता है तथा सामाजिक विघटन को रोककर उससे सकारात्मक योगदान लिया जा सकता है। श्री गणेश परशुधारी हैं जो कि समाज के अन्याय को समाप्त करने हेतु इंगित करता है तथा दूसरे हाथ में पाश इस बात का प्रतीक है कि समाज को एक रूपता में ही रहने से उसकी प्रगति

हो सकती है। श्री गणेश को सिन्दूर व दूर्वा अर्पित की जाती है। सिन्दूर एक मांगलिक एवं बुद्धि नियंता द्रव्य है तथा दूर्वा नम्रता एवं सरलता की द्योतक है। दूर्वा का यह आयुर्वेदीय गुण है कि वह शीत प्रधान द्रव्य है। अतः सामाजिक उलझनों से बुद्धि में जो ऊष्णता एवं क्रोधाग्नि का भड़काव होता है, दूर्वा सेवन से उसको नियंत्रित किया जा सकता है। अस्तुं श्री गणेश के शरीर के इसी रहस्य को सामाजिक उत्थान की दृष्टि से बुन्देलखण्ड के लोक जीवन ने पूजा अर्चन के माध्यम से अपने अपने हृदयों में संजोकर रखा है।

श्री गणेश तो साक्षात् ऊर्जा के स्त्रोत् हैं क्यांकि उनका निर्माण ही मां पार्वती ने अपने मैल से किया था जो कि ऊर्जा का स्वमेय भण्डार है। आज यह बात वैज्ञानिक दृष्टि से भी प्रमाणित है। बुन्देली जन मानस श्रीगणेश के स्वरूप के रहस्य को समझन हेतु उन्हीं से प्रश्नोत्तरी करते हुये कहता है –

गजमुख कैसे कहाये, बताये जइयो
दांत कितै हिरा आये, बताये जइयो
पेट बड़ो कॉ से पाये, बताये जइयो
चुखरा किटै से ल्याये, बताये जइयो
मात पिता कॉ पायें,बताये जइयो
दूबा काये मन भाये, बताये जइयो
कारो कीरा काये लपटाये, बताये जइयो''

और बुन्देलीजन श्रद्धावनत होकर कहता है –

एकदन्त दयावन्त, मोरी ओर हेरिये।
तोय छोड़ दीनबन्धु और काये टेरिये।।

श्रीगणपति चतुर तथा उनका स्वरूप सुख देने वाला है। वे विपत्तियों का नाश करने वाले हैं तभी तो उनकी स्तुति करते हुये गाया जाता है–

गोबर के गनेस बलहारी
तुम हौ बहुत उदार चतुरवर गजआनन सुखकारी
सैंदुर कौ टीका गलमाला, मूसक कौ टीका गलमाला
मूसक की है सबारी। गोबर के गनेस......।
बांझन पूत आंधरन आखैं, दीजौ बिपदा टारी।
गोबर के गनेस............।।

श्री गणेश जी का गजमुख इतना आकर्षक है कि उसकी ओर अपलक निहारते रहने में अत्यन्त सुख मिलता है। वे दूब केले के पत्ते से प्रसन्न होकर बल, बुद्धि व विद्या प्रदान करते हैं। अतः आस लगाकर उनकी ओर टकटकी लगाते हुये कंठ गा ही उठता है–

गजमुख तोरी ओर निहारूं
डूंडा बैल सम्भू बैठे हैं, सिंहा पै मात पुकांरू
दूबा फूल केर के पत्ता, पानी तोय चढ़ाऊँ
बल, बुधि विदया, गुन के सागर
कह कह सीस नबाऊं''

गिरजापति पुत्र श्री गणेश का श्रद्धा एवं अनुराग सहित अर्चन वन्दन निश्चित रूप से मन की चंचलता को समाप्त करते हुये ज्ञान के चक्षुओं को खोलता है और मन, बुद्धि, शुद्ध होकर परब्रह्म के चिन्तन में लीन होता है। इसी कारण भाव विभोर होकर इस बुन्देलखण्ड का जनमानस गाता है –

चरनन गिरजापति सुत लागौ, प्रेम सहित अनुरागौ
दीजै बुद्धि, सुद्धमति कीजै, कन्ठ कोकिला रागौं
है मति थोर, कथन कुछ चाहौं, ब्रह्मनाद वर मागौं
चुन्नीलाल पराग भ्रमर ज्यौं, लेत रहत रस पागौं।

आदिशक्ति मां पार्वती के शक्ति सम्पन्न पुत्र हैं श्री गणेश। अस्तु मां के स्मरण के साथ साथ श्री गणेश की स्तुति करने से श्री गणेश जी शीघ्र प्रसन्न होकर मनवांछित फल की प्राप्ति कराते हैं। तभी तो उनका ध्यान इस प्रकार किया जाता है –

भाई रे सुमरौ ए गनपत
सुमरौ गनेस, दाता, विघन विदारनहार हो स्वा
बड़े बड़े पैर गनपत राजा सोहेंगे,
सक्ती माई के खम्बा बनेंगे, हो स्वामी
लम्बी लम्बी मूंछ गनपत राजा सोहेंगे
सक्ती माई के कुडरा बनेंगे, हो स्वमाी
छोटे छोटे नैननवा गनपत राजा सोहेंगे
सक्ती माई दियला जरैगें, हो स्वामी
बड़े बड़े दांत गनपत राजा सोहेंगे
सक्ती माई चुरियां बनेगी, हो स्वामी

श्री गणेश जी तो बड़े ही सहज हैं। उतनी ही उनकी पूजा भी बुन्देलखण्ड में आदि देव श्री गणेश जी की पूजा अर्चना के बाद उनके प्रत्यक्ष दर्शन की अभिलाषा करते हुये भाव विभोर होकर गाया जाता है–

जय हो गनेस बलिहारी तुमने सारी बिपदा टारी
हम सब तुम्हरी पूजा करते टेरत रैन गुजारी
हम पै होओ दयालु चतुरभुज करौ न देर अवतारी
दूबा लडुआ तुम्हें चढ़ाये दरसन की है चाहत भारी
जय हो गनेस बलिहारी''

बुन्देलखण्ड के लोकगीतों में श्रीगणेश का स्तवन जहां श्री गणेश आराधना का मार्ग प्रशस्त करता है वहीं सामाजिक बन्धुत्व के लिये प्रेरित भी करता है। श्री गणेश की अर्चना यहां के जनजीवन को लोकगीतों के माध्यम से भक्ति सागर में डुबकी लगाने हेतु बाध्य कर देती है।

– संस्थापक एवं निदेशक
बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई २८५००१

□

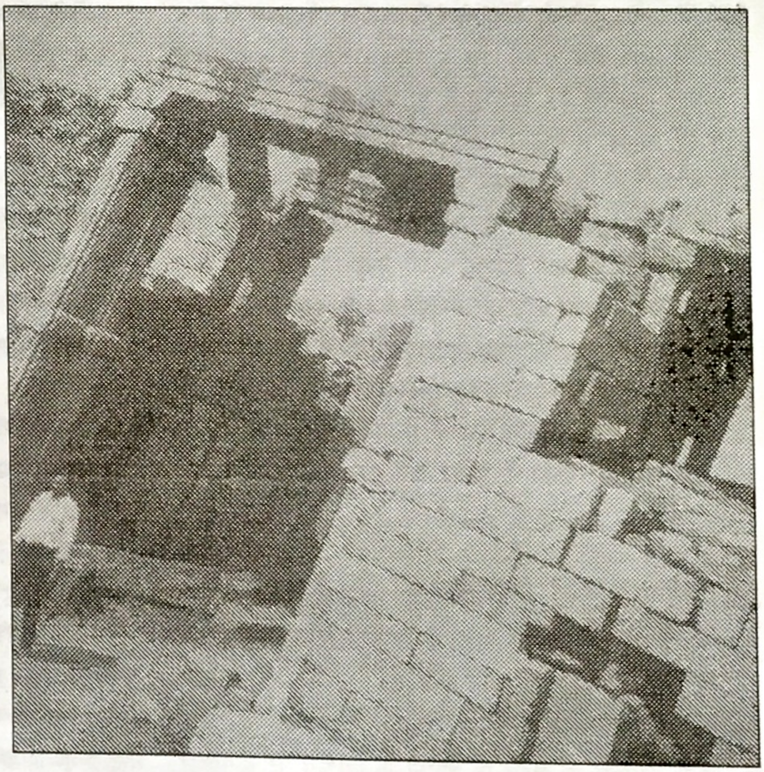
किला बिजयगढ़

- डॉ. के.पी. त्रिपाठी

किला बिजयगढ़, बारीगढ़ ग्राम में जो छतरपुर जिला के उत्तरी पूर्वी भाग में, छतरपुर से ७० कि.मी. एवं महोबा (उ.प्र.) से १० किलोमीटर की दूरी पर दक्षिण पूर्व में २५.१२ उत्तरी अक्षांश एवं ८०.५ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। यहां आने जाने के लिये छतरपुर (म.प्र.) एवं महोबा से चरखारी राज्य का तहसीली मुख्यालय था, जिसे जुझार नगर नाम से संबोधित किया जाता है। यह बनाफर एवं चौरसिया जाति बाहुल्य क्षेत्र रहा है। इस क्षेत्र के लोग स्वभावतः झगड़ालू, लड़ाकू अक्खड़ स्वभाव के निर्भीक और स्वतंत्रता प्रिय हैं। भूमि काली दुमट है जो भरपूर उपज देने वाली है। चंदेल काल में यह महोबा राजधानी का निकटतम प्रथम सैन्य दुर्ग था। यहां के लोगों पर आल्हखण्ड की यह उक्ति सही चरितार्थ होती है ''बड़े लड़ैया महुबे बारे....। वैसे यहां पहुंचने के लिये उर्मिल एवं कैल नदियों को पार करना पड़ता है।

किला बिजयगढ़ चंदेलों के सुदृढ़ आठ किलों में से एक विशाल गिरि दुर्ग रहा है। जिसका परकोटा (भित्ति) चार पहाड़ों की चोटियों चुरहा पहाड़, बैंड़ा पहाड़, बैहार पहाड़ एवं बंधा पहाड़ को जोड़ता हुआ लगभग १५ किलोमीटर के घेरे में फैला हुआ है। किला बिजयगढ़ उर्फ बारीगढ़ समुद्रतल से ९०० फुट की ऊँचाई पर है। किले का मुख्य दरबाजा हाथी दरबाजा (देखो चित्र) कहा जाता है। जो पश्चिम दिशा की ओर चुरहा पहाड़ एवं बैंड़ा पहाड़ की खांद में से है। उत्तर दिशा की ओर साहब तालाब के पार्श्व से किले का दूसरा दरबाजा है। तीसरा दरबाजा पूर्व दिशा की ओर है जिसे कंजली पौर कहा जाता है। यह कंजली पौर दरवाजा बेहार पहाड़ की खंदिया में से है। इस दरवाजा से होकर आगम निर्गम हेतु पत्थरों की सीढ़ियां निर्मित हैं। दक्षिणी पूर्वी कोंण से किले का चौथा दरवाजा है। जिसे गुरैया नाघा दरवाजा कहा जाता है जो बैंड़ा पहाड़ एवं धंधा पहाड़ की खाद में से है।

बारीगढ़ ग्राम के पश्चिमी पार्श्व से चुरहा पहाड़ एवं बैंड़ा पहाड़ के मध्य की खंदक चढ़ते हुये हाथी दरवाजा के सामने पहुंचते हैं। यह पत्थर के चीरों से निर्मित विशाल दरवाजा २० फुट लम्बे २ फुट चौड़े मोटे चौपाले खंभों पर खड़ा हुआ है। खंभों से संलग्न सटी दोनों ओर उत्तर को एवं दक्षिण को जाती दरवाजा के बराबर की ऊँची सुदृढ़ परकोटा–सुरक्षाभित्ति–बनी हुयी है जो वर्गाकार एवं आयताकार आकार में तरासे गये बड़े बड़े प्रस्तर खंडों से बनाई गई है। दरवाजा की चौड़ाई १५ फुट, लम्बाई २० फुट एवं ऊँचाई २० फुट है, जिसकी छत आगे–मध्य एवं पीछे सीधे खड़े खंभों (चीरों) पर १८ फुट लम्बे पत्थर की चौपाला ३ कड़ियां (Beam) डली हैं। इन कड़ियों के ऊपर ११–११ फुट के तरासे हुये सुन्दर सपाट प्रस्तर पटिया बिछाकर बनाई गई है। इस हाथी दरवाजा के अन्दर मध्यभाग में दायें बायें एक एक कोटर प्रकोष्ट है, जिसमें प्रविष्ट होकर दरवाजा की छत एवं परकोटा



भित्ति पर पहुँचा जा सकता है। कोटरों से गुप्त सीढ़ी मार्ग निर्मित है। दरवाजा के बाहरी तरफ दायें–बायें लगभग दस–दस फीट लम्बी एवं २० फुट ऊँची चौपाला सपाट चबूतरा आकार की सुरक्षा भित्तियां हैं। आज बारीगढ़ किले का हाथी दरवाजा ही शेष है जो दर्शनीय है। अन्य तीन दरबाजे साहब दरबाजा, कंजली दरबाजा एवं गुरैया नाघा दरवाजा आक्रामकों ने ध्वस्त कर दिये हैं। जिनके चीरा–खंभे एवं पत्थर बिखरे फैले–किले की सुरक्षा में हुये शहीदों

की भांति चिरनिद्रा में पड़े हुये हैं। गुरैया दरवाजा, गुरैया देव के नाम पर एवं कंजली दरवाजा कजलियों के विसर्जन हेतु आने जाने के नाम पर प्रसिद्ध है। कजलियां महोत्सव चंदेलों का महत्वपूर्ण राजपर्व था।

बारीगढ़ किले का १५ किलोमीटर घेरे वाला विशाल परकोटा चुरहा पहाड़, बैंड़ा पहाड़, बैहार पहाड़ एवं धंधा पहाड़ के शिखरें एवं उन पर स्थापित महलों तथा सुरक्षा चौकियों को अपने आगोस में समाहित किये हुये हैं। परकोटा का निर्माण वर्गाकार एवं आयताकार बड़े–बड़े प्रस्तर खंडों से सीरा–पाटी (आड़े–खड़े) की निर्माण विधि (वास्तु स्थापत्य) के आधार पर एक दूसरे को स्थापित करते हुये बनाया गया है, जो २० फीट ऊँचा और १० फीट चौड़ा है। पत्थरों पर पत्थर की जमावट स्वयं में एक आश्चर्य है कि भित्ति में सुई की नौंक भी नहीं भिदे! यह भी मानो कि प्राकृतिक पहाड़ों की छाती पर चंदेलों ने २० फीट ऊँचा अभेद्य पहाड़ खड़ा कर दिया हो।

हाथी दरवाजा के अन्दर से किला प्रांगण में पहुँचते हैं। इस मैदान में चन्देल राजाओं के हाथी बांधे जाते थे। मैदान में से उत्तर दिशा की ओर परकोटा के पास से घूमते चलते हुये चुरहा पहाड़ के नजदीक पहुंचते हैं। यहां पहाड़ पर एक बनाया गया (कृतिम) मैदान है, जिसके चारों ओर पत्थरों का आयताकार छः सात फीट ऊँचा परकोटा है, जिसके अन्दर महलों भवनों के भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं। इन भग्न महलों को पार कर पहाड़ के उत्तरी भाग के मध्य में उत्तराभिमुखी भगवान आशुतोष का गुफा मंदिर है। यह गुफा मंदिर पहाड़ की चट्टान काट कर बनाया गया है। इसी तरह के शैव गुफा मंदिर अजयगढ़, कालिंजर एवं मनियागढ़ में देखने को मिले हैं। पहाड़ पर निर्मित महलों से शिव गुफा मंदिर तक सीढ़ियां थीं, जो मंदिर से नीचे बस्ती भूमि तक भी थी परन्तु वर्तमान में सीढ़ियां जहाँ कहीं बची हैं, बाकी के प्रस्तर खंड ग्राम बासियों ने उठाकर अपने घरू उपयोग में लगा लिये हैं।

चुरहा पहाड़ के सर्वोच्च शिखर पर, ठीक महलों के सामने, ईंट चूना की एक सुरक्षा एवं निगरानी चौकी निर्मित है, जहाँ से किले के अन्दर आने जाने वालों पर नजर रखी जाती थी। हाथी दरवाजा के बाम भाग से एक खोह है। लोकमत के अनुसार स्थानीय लोगों का कथन है कि इस खोह से महोबा तक गुप्त मार्ग था। किला परकोटा के अन्दर के पहाड़ों के शिखरों पर घुमावदार गोल ऊँची अनेक चौकियां स्थापित हैं। पूर्वी भाग के कंजली (कजली) पौर दरवाजे के भीतरी प्रांगण में एक ऊँचा मटयाकोट है। जिसके भीतर के प्रांगण में भी महलों भवनों के भग्नावशेष दृष्टव्य हैं।

बारीगढ़ किला परकोटा के भीतर चार तालाब, साहब तालाब टपुआ तालाब, कजलिया तालाब एवं बनिया तालाब हैं। तालाबों के अतिरिक्त यहां चौदह बावड़ियां भी हैं। तात्पर्य कि बारीगढ़ किले में पानी की आपूर्ति का पर्याप्त–समुचित प्रबंध किया गया है। धंध पहाड़ के शिखर पर धंधा देवी का मंदिर है इसी पहाड़ पर पत्थर काट कर एक तालाब का निर्माण भी किया गया है। गुरैया बाघा दरवाजा के समीप पहाड़ पर दो नग्न प्रतिमायें थी, जिन्हें स्थानीय लोग खुमना–कन्हैया कहा करते थे। वर्तमान में वह दोनों प्रतिमायें महोबा के अजायब घर में रखी हैं। कंजली (कजली) पौर दरवाजा के भीतरी भाग में बस्ती की ओर शान्तिनाथ जी की १८ फीट लम्बी नग्न प्रतिमा पड़ी हुयी है। जिसे स्थानीय लोग शेषनाथ के नाम से बतलाते हैं। इन सब प्रतिमाओं की उपलब्धता से यह सिद्ध होता है कि चंदेल शासन काल में बारीगढ़ और जुझार नगर में शैव, शाक्त और जैन मत सम्प्रदायी अनुयायी निवास करते थे। कंजली (कजली) पौर दरवाजा एवं कंजली (कजलियां) तालाब भी इस बात के प्रमाण हैं कि बारीगढ़ में कजलियों के विसर्जन का उत्सव धूमधाम एवं राजसी समारोह के रूप में मनाया जाता है। जुझार नगर नाम भी सिद्ध करता है कि यहां के निवासी पुरुषार्थी जुझारू एवं लड़ैत थे।

किला बारीगढ़ को चंदेल कालीन अभिलेखों में एव ग्रंथों में बारी दुर्ग और विजयगढ़ तथा विजयदुर्ग लिखा कहा गया है। इस किले का निर्माण महोबा के चंदेल राजा बिजयवर्मा (१०४०–५० ई.) ने कराया था। इस किले का मूल नाम विजयगढ़ था जो विजयवर्मा चंदेल राजा के नाम पर ही रखा गया था। कालान्तर में नगर एवं महलों भवनों की सुरक्षा में बारी (बागड़) सा सुदृढ़ परकोटा बना होने से लोक बोली में इसे बारीगढ़ और बारी दुर्ग भी कहा जाने लगा था, और अपने मूल नाम बिजयगढ़ के बजाय बारीगढ़ नाम से अब लोक संबोधन में प्रचलित है।

परकोटा के अन्दर बारीगढ़ में राज्य कर्मचारी, सैनिक घोड़े हाथी एवं सेवकगण ही रहते थे, मूल बस्ती किले से बाहर जुझार नगर थी। बारीगढ़ किले का दुर्गाध्यक्ष बाल वृद्ध चंदेल था। चंदेल राजसत्ता के पराभव के साथ साथ बारीगढ़ किले का भी पराभव हुआ। सन् ११८२ ई. में पृथ्वीराज चौहान ने चन्देल राज्य पर आक्रमण किया था। वह आक्रमण चंदेलों के लिये विनाशकारी सिद्ध हुआ, जिसमें चंदेल कालीन बुन्देलखण्ड के लगभग सभी सूरमा किलेदार एवं पराक्रमी योद्धा वीरगति को प्राप्त हो गये थे। एक प्रकार से वह युद्ध बुन्देलखण्ड का महाभारत था। उसमें चन्देलों के आठों सैन्य दुर्ग डहा दिये गये थे, अथवा उन्हें निःशक्त कर दिया था, जिनमें महोबा, काल्पी, बारीगढ़, मनियागढ़ एवं मड़वा के सैन्य किलों की विशेष क्षति हुई थी।

चंदेलों के बाद जैसे ही महोबा मुगलों के अधिकार में आया तो वहां हमीद खां प्रशासक की नियुक्ति हुई। हमीद खां ने बारीगढ़ किले की बस्ती और महलों को लूटा था। कालांतर में महाराजा छत्रसाल एवं इनके द्वितीय पुत्र जगतराज ने उक्त मुगल परिक्षेत्र के जुझार नगर, बेलाताल, महोबा एवं बांदा हमीरपुर

इलाकों में लूटमार कर अराजकता उत्पन्न की थी एवं उक्त क्षेत्रों को अपने अधिकार में कर लिया था। जगतराज ने बेलाताल में किला बनवाकर उसे अपना प्रशासनिक मुख्यालय बनाया। बेलाताल का नामकरण जैतपुर हो गया। बारीगढ़ भी जैतपुर के अन्तर्गत हो गया। जगतराज ने एक किला रामपुर (कुर्रा) में भी बनवाया था जहां वह स्वयं रहा करते थे।

१७३१ ई. में छत्रसाल की मृत्यु हो जाने के पश्चात जगतराज जैतपुर परिक्षेत्र के स्वतंत्र राजा हो गये थे, परन्तु वह रहते थे रामपुर के किले में ही। १७५८ ई. में जगतराज का निधन रामपुर किले में हो गया था। उनके मझले पुत्र पहाड़ सिंह उनके पास थे। चूंकि जगतराज के ज्येष्ठ पुत्र कीर्ति सिंह, उनके जीवन काल में ही स्वर्गवासी हो गये थे, जिनके दो पुत्र गुमान सिंह एवं खुमान सिंह थे। जगतराज के निधनोपरान्त नियमानुसार ज्येष्ठ पुत्र कीरत सिंह के ज्येष्ठ पुत्र गुमान सिंह को जैतपुर नरेश होना चाहिये था परन्तु पहाड़ सिंह ने रामपुर में पिता श्री राजा जगतराज की मृत्यु का खुलासा न कर, शव को पालकी में रखवा कर रामपुर से जैतपुर ले गये एवं उनके संस्कार से पहले अपना राजतिलक करवा लिया था। इस षडयंत्र की खबर लगते ही भतीजों (गुमानसिंह एवं खुमान सिंह) ने पहाड़ सिंह के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। जिस कारण पहाड़ सिंह ने गुमान सिंह को बांदा का एवं खुमान सिंह को चरखारी–मय लौड़ी चंदला बारीगढ़ परिक्षेत्र का राजा बनाकर झंझट से मुक्ति पाई थी। परन्तु गुमान सिंह खुमान सिंह बारीगढ़, क्षेत्र में रहते हुये सदैव युद्ध छेड़े रहते थे। कभी जैतपुर राजा से तो कभी राजा सरनेत सिंह एवं सोनेशाह पंवार राजनगर से। जगतराज के समय तो मराठा सरदारों जयाजी शिन्दे, मल्हारराव होल्कर की संयुक्त सेना ने जैतपुर किले को तोड़ा था और बारीगढ़ के सुदृढ़ किले के दरवाजों को ध्वस्त किया था। कृष्णा जी अनंत ताम्बे काम विस्तार बांदा ने भी बारीगढ़ दुर्ग के भवनों, महलों को ध्वस्त किया था।

बारीगढ़ परिक्षेत्र बनाफरी क्षेत्र है जहां लड़ाका ही पैदा होते रहे हैं। बच्छराज की बछरावनी इसी क्षेत्र में है। आल्हा ऊदल की कर्मभूमि विजयगढ़ दुर्ग रही। जैतपुर के राजा पारीछत की महारानी राजोरानी की जन्मभूमि टटम इसी परिक्षेत्र में है। जिनके पिता बहादुर सिंह परमार थे। राजा पारीछत एवं रानीराजो की संग्राम भूमि यही बारीगढ़ परिक्षेत्र था। १७९२–९५ ई. के मध्य अलीबहादुर हिम्मत बहादुर ने इस किला एवं परिक्षेत्र को तोड़ा एवं रौंदा था। १८५७ ई. के विप्लव के समय महोबा से भाग कर अजयगढ़ जाते दो अंग्रेजों को बारीगढ़ के दासी सिंह एवं देशराज सिंह ने लूट कर मार डाला था। बारीगढ़ दुर्ग एवं क्षेत्र का इतिहास गौरवशाली है। कास कि किले की दीवालें, पत्थर, दरवाजे, परकोटा एवं शिवाला अपने अंतर की छिपी दास्तानें कह पाते।

– भारत भवन, पुरानी टेहरी, टीकमगढ़ म.प्र.

□

लोककथा के आधार पर –

जो जीवो भी कोनऊ जीवो है लल्लू

– निहाल

भगवान सबई जंतुअन खां उमर बांट रये ते, सब जीव जंतु लैन में अपनी उमरें पा रये ते, बस मानुस लैन में नई लगो। काय से कै अपने आप खां भौतई अकलमन्द समझ रये ते और सोच रये ते भगवान खुदई उनकी उमर भिजवाहैं। बस वे एई अकड़ में अड़े रये। जब उनै पतो चलो कै सब उमर बट गयी तो दौरे दौरे भगवान के पास पौंचे, भगवान ने कई – देखो हमाये पास बस पांच बरस बचे हैं सो तुम लै लो, पांच साल उमर पाकें वे बहुत गुस्सा भये और झल्लाये और गिड़गिड़ा के विनती करन लगे और उनकी बुरी दशा देख के भगवान ने अपने "रिजर्व" कोष सें २० बरस और उमर दे दई, तो भी वे उने सन्तोष नहीं भओ और वे गिड़गिड़ान लगे। भगवान बोले कि देखों हमाये पास जितनी उमर हती सब खों बांट दई अब अगर तुमें और उमर चाउने तो इन सब लोगन से विनती करके मांग लो, हम भी सिफारिश कर दे रये। मानुस गिड़गिड़ाने ये सब लोगन ने थोरी–थोरी उमर अपनी उमर से दे दई।

पहले घोड़ा ने १० बरस, फिर गधा ने १० बरस, फिर बन्दर ने १० बरस फिर उल्लू ने १० बरस

बस इतनी उमर पाके मानुस बड़े खुश भये, भगवान ने जौन पांच बरस दये ते वे मजे से गुजर जात न कोई चिन्ता न कोनऊ फिकर। फिर भगवान ने दये २० बरस कछू अच्छे कछू बुरये लगत और मस्ती से गुजर जात अब जौन उमर घोड़ा ने दई ती सो उमर में वे घोड़ा से उचकत, मचकत, निकल जात तो कछू आगे देखने और न कछू पाछे देखने मस्ती ही मस्ती, अब भइया १० बरस गधा की उमर अपनो असर दिखात हाट बाजार में साइकिल में दो कट्टा कैंची में धरै दो बोरी पाछे सायकिल में कसी। हैंडल में तीन चार थैला टांगे और सायकिल की हवा सरक गयी गर्मी के दिन तो ठन्डन के दिन में पसीना आ रओ जैसे तैसे घर पौंचे तो घरवारी ने कछू और काम बता दओ, दिन भर खटर पटर में गुजरत। अब जैसे तैसें कटी सो बन्दरा घांई एक जांगा बैठे बंदरन घांई खों खों करत रये और मिचमिचा रये चाये कोऊ सुने चाय न सुने अब आओ उल्लू की उमर सो आँखन पे चसमा चढ़ाये टुकर टुकर ताक रये और मनई–मन सोच रये – जो जीवो भी कौनऊ जीवो है लल्लू।

– नोटरी, छतरपुर

□

बुंदेली आन, बान एवं शान की प्रतिमूर्ति –

ओरछेश मधुकर शाह जू देव 'टिकैत'

– हरिविष्णु अवस्थी

सोलहवीं शदी से देश के मध्य स्थित बुन्देलखण्ड नामक भू–भाग का सर्व प्राचीन ओरछा राज्य (वर्तमान में जिला–टीकमगढ़ म.प्र.) बुन्देल–भूमि का शक्तिपुंज रहा है, जिसने समूचे बुन्देलखण्ड की राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परम्पराओं का विकासात्मक मार्ग दर्शन किया। इस भूमि के शासक बुन्देला क्षत्रिय जो परम शौर्यवान, कथनी–करनी के कायल, धर्म परायण तथा जिनका कलम और करवाल पर समान अधिकार रहा, इस भूमि में ऐसे घुल–मिल गए थे, जैसे समीर में सौरभ। भूमि–बुन्देलखण्ड शासक बुन्देला, प्रजा–बुंदेलखण्डी भाषा बोली बुन्देली, यही सब मिलकर बुन्देलखण्ड की भावात्मक एकता का सशक्त आधार रहा है।

बुन्देला सूर्यवंशी राजपूत हैं। ऐसा कहा जाता है कि अयोध्यापति श्री राम के पुत्र लव के गंगासेन एवं कनकसेन नाम के दो पुत्र थे। सन् ६७४ ई. में गंगासेन के वंशजों ने काशी (बनारस) में अपनी सत्ता स्थापित की। कूर्तराज ने अपने राज्य की स्थिति सुदृढ़ करने हेतु 'ग्रह–निवार' यज्ञ किया था। उसी समय से ये वंश ग्रह निवार मुख–सुख प्रवृत्ति से गहरवार नाम से अभिहित हुआ। सन्१०४८ ई. में इसी गहरवार वंश के हेमकर्ण उर्फ पंचम ने विन्ध्य क्षेत्र में आकर बाँदा के निकट 'गंहौरा' में अपना ठिकाना बनाया। राज्य विस्तार के साथ इनके वंशजों ने पहूज नदी के तट पर स्थित 'महौनी' (वर्तमान में जिला–जालौन उ.प्र.) में अपनी राजधानी स्थापित की। महौनी के शासक सोहनपाल को अपने सौतेले भाइयों के विद्रोह के कारण निर्वासित होना पड़ा। सन् १२५७ ई. में सोहनपाल ने गढ़कुंडार की खँगार सत्ता को पराजित कर गढ़–कुंडार को अपनी राजधानी बनाया।

उन्हीं सोहनपाल के बंशज महाराज रुद्रप्रताप (१५०१–३१ ई.) ने कुंडार के स्थान पर सन् १५३१ ई. में ओरछा (वर्तमान में जिला टीकमगढ़ म.प्र. में स्थित, देश प्रसिद्ध पर्यटक स्थल एवं तीर्थ धाम) को अपनी राजधानी बनाया। तभी से इसकी ख्याति ओरछा राज्य के नाम से हुई। ओरछेश रुद्रप्रताप परम धार्मिक वृत्ति के गौ, ब्राह्मणों के रक्षक एवं वीर योद्धा थे। कैप्टेन सी.ई. लार्ड के अनुसार "He was killed in the same year by a tiger from whose clutches he was rescuing a cow. though he selw the least and sawed the sacred animal, he diad of his injuries."[1]

ओरछेश रुद्र प्रताप के निधन पश्चात् उनके ज्येष्ठ–पुत्र भारती चंद्र (१५३१–५४ ई.) ओरछा की गद्दी पर बैठे। इन्होंने ओरछा राज्य की अभूतपूर्व उन्नति करके बुन्देलखण्ड में बुन्देला शक्ति का पूर्ा परिचय देकर स्वतंत्र राज्य की नींव डाली। इनका राज्य यवन सत्ता से रहित, पूर्ण बाधा रहित था। प्रजा सुखी और देश धन–धान्य से सुखी था।''[2]

भारती चन्द की वीरता का समकालीन कवि मंसाराम 'सिद्ध' ने बहुत सुन्दर चित्रण किया है –

यथा – ''बावर हुमायु शाह दिल्लीपति मानी हार,
उनसठ चढ़ाई कीन्ह कवि जस गायो है।
चारों दिशा में जाय बढ़–बढ़ कैं लूटे देश,
सागर किनारे तक झण्डा गाड़ आयौ है।।
पृथ्वी के खण्ड करि बाँटे निज भ्रातन को,
आज तक मस्तक न काहू को नवायौ है।
भारत को चंद तू प्रसिद्ध नर योनिन में,
कमती है एक जौन पुत्र नहिं पायौ है।।''[3]

सन् १५५४ ई. में भारतीचंद की निसंतान मृत्यु होने पर उनके अनुज मधुकरशाह (१५५४–९२ ई.) ओरछा के राजा हुए। ''जिस समय मधुकर शाह गद्दी पर बैठा, उस समय मुसलमानों का जोर था। ये लोग हर तरह से हिन्दुओं को सताया करते थे। ये कभी उन पर आक्रमण करते और कभी उनके धार्मिक चिन्हों को नष्ट–भ्रष्ट करते। ऐसे कठिन समय में महाराज मधुकर शाह सदृश धार्मिक राजा का स्वतंत्रता पूर्वक राज्य करना अकबर को बहुत खटकता था।''[4]

''अकबर की आक्रामक गतिविधियों से कुपित होकर मधुकर शाह ने सन् १५७४ ई. में मुगलों के अधीनस्थ इलाकों पर आक्रमण कर अकबर को चुनौती दे डाली। १५७६ ई. में अकबर की आक्रमणकारी सेना को बुरी तरह पराजित किया। १५७८ ई. में मुगलसेना को अनिर्णय की स्थिति में वापिस लौटना पड़ा। १५७९ ई. में सादिक खां के नेतृत्व में पुनः मुगल सेना ने ओरछा पर आक्रमण किया। सादिक खां ने अपने राजनैतिक चातुर्य का परिचय देते हुए मधुकर शाह को मुगलों से संधि करने हेतु मना लिया।

सन् १५८५ ई. में अकबर ने मधुकर शाह को सहाबुद्दीन के नेतृत्व में दक्षिण भारत की चढ़ाई पर जाने हेतु निर्देशित किया, किन्तु मधुकरशाह ने इसे अपना अपमान मानते हुए, आदेश की अवज्ञा की। फलस्वरूप १५८७ ई. में दक्षिण से वापिस लौटते समय सहाबुद्दीन ने ओरछा पर आक्रमण की योजना बनाई। जिसे मधुकरशाह के पुत्र कछौआ के जागीरदार इन्द्रजीत सिंह ने अपने चातुर्य से शान्त कर दिया।

सन् १५९१ ई. में मुराद मालवा का सूबेदार नियुक्त हुआ। परम्परानुसार सभी राजे, महाराजे एवं सामंत मुराद से औपचारिक भेंट करने हेतु गए किन्तु मधुकरशाह ने इसे अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध मानते हुए मुराद से भेंट करना उचित नहीं समझा। इस अपमान से क्रुद्ध होकर मुराद ने ओरछा पर आक्रमण करने की योजना बनाई मआसिरुल उमरा भाग २ पृ. १३३ के अनुसार मुराद को ओरछा पर आक्रमण करने से मना कर दिया। इस तरह मधुकर शाह निरंतर अपने शौर्य के बल पर अपने एवं ओरछा राज्य के सम्मान की रक्षा करते रहे।''[5]

अनेकबार मधुकरशाह से पराजय एवं अपमान की आग में जलने वाले मुगल सम्राट अकबर ने उन्हें अपमानित करने की योजना बनाई। दिल्ली दरबार में अन्य राजाओं एवं सामंतों की भाँति मधुकरशाह को भी ससम्मान आमंत्रित किया गया। उन्होंने इस आमंत्रण को स्वीकार कर दिल्ली दरबार में जाने का निर्णय ले लिया।

ओरछेश मधुकरशाह राधा–माधव के युगल स्वरूप के उपासक थे। नियमित रूप से पूजा–पाठ, भागवत कथा का श्रवण, सुबह–शाम, जुगलकिशोर जी के मंदिर में उपस्थित होकर भजन–कीर्तन करना उनका दैनन्दन कार्य था। उनकी महारानी गनेश कुंवरि भी परम वैष्णव एवं मधुकरशाह के चरण चिन्हों पर चलती थी। मधुकर शाह स्नान कर भजन–पूजन से पूर्व चन्दन रोरी से नासिका के अग्रभाग से ललाट तक रामानंदी विशाल तिलक लगाया करते थे। तुलसी एवं रुद्राक्ष की माला उनके कण्ठ में शोभायमान हुआ करती थी।

अकबर के दरबार में भी मधुकर नित्य की भांति तिलक लगाये एवं कंठीमाला धारण किये उपस्थित हुए। अकबर, मधुकरशाह के तिलक युक्त उन्नत ललाट एवं उनके आभामण्डल को देख–देख कर मन ही मन कुढ़ता रहा। दरबार समाप्त होने से पूर्व उसने आदेश दिया। कवि के शब्दों में –

''हुकुम दियो है पातशाह ने महीपन कौ,
मानो राय राजन प्रमान लेखियत है।
चन्दन चढ़ायो कहूँ देव बन्दन को,
देहों सिरदाग जहां रेखा रेखियत है।'' [6a]

अर्थात कल दरबार में कोई भी तिलक लगाकर उपस्थित नहीं होगा। अवज्ञा करने वाले का सिर दाग दिया जायेगा। दरबार समाप्त हो गया। सभी उपस्थित आपस में काना–फूसी करते हुए अपने–अपने डेरों पर लौट गए।

मधुकरशाह अगले दिन भी नित्य की भांति तिलक लगाये कंठी माला धारण किये यथा समय अकबर के दरबार में उपस्थित हुए। अवज्ञा के फल स्वरूप भावी संकट को ध्यान में रखते हुए उन्होंने स्थिति से निपटने की सभी व्यवस्थायें गोपनीय रूप से करली थी। दरबार में उपस्थित तिलक–विहीन राजाओं के समूह में मधुकरशाह के तिलकपूर्ण उन्नत ललाट को देखकर एक कवि के मुँह से सहज ही यह शब्द फूट पड़े –

सूनों कर गये भाल छोड़–छोड़ कण्ठ माल,
दूसरौ दिनेश तहा कौन पेखियतु है।
सोहत 'टिकैत' मधुशाह अनियारौ जिमि,
नागन के बीच नियारो देखियतु है।'' [6b]

अर्थात – दरबार में उपस्थित तिलक विहीन नरेशों के मध्य मधुकर शाह ऐसे शोभायमान हो रहे थे जैसे नागों के मध्य मणिधर नाग शोभायमान होता है। दरबार में उपस्थित सभी जन मधुकर शाह के इस स्वरूप को देखकर हतप्रभ हो गए। आपस में काना–फूसी होने लगी, तभी सम्राट अकबर दरबार में प्रविष्ट हुआ। सभी दरबारी सम्राट के सम्मान में उठकर आदाब बजाने लगे। अकबर ने सभी पर नजर दौड़ाई। उनकी नजर मधुकर शाह के चेहरे पर आकर ठिठक गई। मधुकर शाह द्वारा अपनी आज्ञा की अवहेलना से अकबर अन्दर ही अन्दर आग बबूला होकर बोला–

अकबर – ''शाह फिर बोले– कल मैंने हुक्म था दिया,
तिलक लगाने को सभी को मना था किया।
कल दरबार में क्या आप नहीं आये थे?
या कि वह हुक्म सुन आप नहीं पाये थे।''

मधुकरशाह – ''महाराज बोले – मैं अवश्य कल आया था
और सुना हुक्म भी था जो कि फरमाया था।''

अकबर – ''गूँजी गिरा'' –अच्छा तब तिलक न छोड़कर,
आपने दिखाया मुझे मेरा हुक्म तोड़कर!
मधुकरशाह! परवाह हुक्म शाही की –
आपको नहीं है, तभी तो चित्त चाही की!
देखें आप जितने नरेश यहाँ आये हैं –
कोई उनमें से कहीं तिलक लगाये हैं?''
''सिर्फ आपने ही 'शाही हुक्म' को न मानकर–
तिलक लगाया है अनोखा एक तान कर।
तो हैं आप बागी? यह पूछा बादशाह ने,
उत्तर दिया यों ओरछे के नरनाह ने।

मधुकरशाह– धर्म मुझे प्राणों से पचासों गुन प्यारा है,
धर्म ही तो लोक–परलोक का सहारा है।
धर्म दिव्य दीपक है मोक्ष की भी राह का,
धर्म से बड़ा नहीं है हुक्म बादशाह का।
जीते जी कदापि धर्म से न मुँह मोड़ूँगा,
डर से किसी के कभी धर्म नहीं छोड़ूँगा।
तिलक लगाना धर्म मेरा है सदा ही से
धर्म छोड़ सकता नहीं मैं हुक्म शाही से'' [7a]

ओरछेश मधुकर शाह के निर्भीकता पूर्ण इस उत्तर से दरबार में सन्नता छा गया। बजीर एवं अधिकारी ओरछेश की ओर

आँख फाड़कर देखते रह गए। उन्हें आभास हुआ कि ओरछाधिपति ने उग्र रूप धारण कर लिया है। कुछ न कुछ अनहोनी होने को है।

कुटिल और कुशल राजनीतिज्ञ अकबर मधुकरशाह के बदले तेवर एवं हिन्दू नरेशों के संभावित विद्रोह की आशंका से भयभीत हो गया। उसने पाला बदलते हुए अपनी राजनैतिक पटुता का परिचय देते हुए कहा –

अकबर "सन्नाटा सभा का तोड़ गूँजा शब्द "वाह–वाह"

बोले बादशाह – "वाह! मधुकरशाह! वाह!
आपने ने ही 'नितनेम' अपना निभाया है।
जान पर खेल कर तिलक लगाया है।।
मुझको नही है चिढ़ तिलक लगाने से।
मैंने जाँच की थी उस हुक्म के बहाने से।।
तिलक बिना है राजों महाराजों का समाज।
निकले 'टिकैत' सच्चे सिर्फ एक आप आज।।
आफरीं है आपकी अनोखी आन–बान पर।
खुश हो गया हूँ मैं सच्चाई और शान पर।।
आप ही के नाम से लगाया अब जायेगा।
'मधुकरशाही' यह टीका कहलायेगा।।" ७ब

ओरछेश मधुकरशाह की धर्मनिष्ठा एवं निर्भीकता के समक्ष मुगल सम्राट अकबर को नतमस्तक हो जाना पड़ा। बुन्देलखण्ड बासी आज भी मधुकरशाही तिलक लगाकर गौरव का अनुभव करते हैं। बुन्देलखण्ड की आन–बान–शान के आदर्श नरेश को शत–शत नमन।

संदर्भ ग्रंथ –

१. Eastern states Gazetter Page No 19 by captain C.E. Luard.
२.बुन्देलखण्ड का इतिहास, ओरछा खण्ड, कवि कृष्णदास पृ. ९७
३.मंसा राम सिद्ध (ओरछा राज्य के कवि)
४.बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, गोरे लाल तिवारी पृ. १२६
५.बुन्देलखण्ड का बृहद इतिहास, डॉ. के.पी. त्रिपाठी पृ३८–३९
६.अ–ब– ओरछेश स्मृति ग्रंथ, पं. कृष्णकिशोर द्विवेदी पृ. ३०
७.अ–ब प्रेम पयोनिधि/मुंशी अजमेरी स्मृति ग्रंथ पृ. १४१–४२.

– अवस्थी चौक, किले का मैदान
टीकमगढ़ (म.प्र.) ४७२००१

□

बुन्देली कविता –

हरिया हाँकवौ

– डॉ. ए.के. जड़िया

ओली में ककरा लएँ, बोली में कोकिल के कल सी।
चली जात है जातरूप कौ, रूप लएँ चंचल सी।।

हरिया हाँकन जात, लएँ पानी पीने घरिया में।
गोरो रंग दो गुनौ हो गओ, करिया सी फरिया में।

पहुँची ज्यों केतकी, खेत की शोभा शतगुण बढ़ गई।
लच लच गयो शरीर सो सचमुच, शुचि मचान पै चढ़ गई।।

ककरा धरि गुफना में, डोरी पकर स्वकर में लीन्हीं।
कटि पै फैंटा कसि, हरिया की हरषि तैयारी कीन्हीं।।

अधर दंत सौ दाबि, हाथ इक शोभित भयो कमर में।
दूजौ हाथ घुमायो, वक्षस्थल मचल्यो अम्बर में।।

गुफना उड़त हवा में, लफ लफ जावै लरम कलाई।
ककरा लौ कइ कर रये जिनकी, लखिलखि सुंदरताई।।

उतै पखेरू सोचें कै हम, परमधन्य हो जावें।
जो गोरी के पथरा मारे, पंखन में लग जावें।

पथरा चल्यो पखेरू उड़ गये, खिच गयो सुन्न सनाकौ।
बाँधो बाँकौ नाकौ देखौ, जादू तनक धनाकौ।।

पंछी उड़ि उड़ि जात, और फिर लौट लौट कें आवें।
एक बार फिर भाग जगै जो गोरी पुनः भगावें।।

चुगन न देतीं दानौं देखें काँनौ ऐसइ सेतीं।
आवत जोई समीप ओई पै पट पाहन हन देतीं।।

जौ अनाज खावे के लानें नाज करौ न ई कौ।
जानै कौन कौन दाने पै नाम लिखो की की कौ।।

– हरपालपुर म.प्र.

□

दो कुण्डलियाँ

– कल्याण दास साहू 'पोषक'

देस–भक्ति की भावना, तब–तब भारत जोर।
जब–जब हमें दिखात हैं, मछरा चारों ओर।।
मछरा चारों ओर, लगत सबखों माड़ारें।
कै गंजी में आग, लगा जिन्दा वाड़ारें।।
"पोषक" आवै ताव, देख भड़यन की शक्ति।
चिथत–चिथत आ जात, कभउँ हम में देस–भक्ति।।

शासन के हर घाट पै, भइ भड़यन की भीर।
का हुइयै ई–देस कौ, काँनौं धरवैं धीर?
काँनौं धरवैं धीर, मची है लूटामारी।
मिलकें खारय खूब, आज नेता–अधिकारी।।
"पोषक" मररय मान्स, पेट खों नइयाँ रासन।
कररय हमें निरास, जिनैं हम सौंपत शासन।।

बिदा के करुण रस भरे बुन्देली लोक गीत

– गुप्तेश्वर द्वारका गुप्त

बुन्देली लोकगीतों की अभिव्यक्ति और उजास का प्रभा मंडल करुण रस के इर्द गिर्द इस प्रकार विद्यमान है जैसे हिन्दी भाषा के चारों ओर उसकी अपनी अन्य भाषाई बहनों का। लोकगीत के बारे में डॉ. शालिग्राम गुप्त लिखते हैं – लोकगीत हृदय की वाणी होने के साथ साथ समाज की चेतना और अनुभूति पर आधारित हैं, जिसमें बुद्धि की अपेक्षा परम्परा का प्राधान्य होता है।'' आगे वे कहते हैं कि –– लोक संस्कृति एक ऐसा प्रवाह है जिसमें मानव जाति की आदिम वासनाओं, भावनाओं और संस्कारों के आधार पर ही शिष्ट परम्पराओं में अग्रसर होने वाली मानवीय संस्कृति के विभिन्न तत्व सन्निहित होते जाते हैं। किसी प्रदेश की स्थानीय लोक संस्कृति उस क्षेत्र के लोक मानस के आधार पर ही संघटित होती है जिसमें व्यापक मानवीय भावनाओं का आदिम रूप, उस विशिष्ट मानव समूह के मानस में अपने परम्परागत संस्कार और समवर्तिनी शिष्ट परम्पराओं के नानाविध संस्कार एक साथ ही प्रतिघटित होते हैं।''

बुन्देली के लोकगीतों में जहां करुण रस की भरमार है वहीं इन लोकगीतों में मानव मन को सहज रूप से अपने में आत्मसात कर लेने की अद्भुत क्षमता भी है। करुण रस के बारे में भवभूति का कथन है – ''एकौ रसः करुण एव निर्मित भेदाद्भिन्नः पृथगिवाश्रपते विवर्तान अर्थात रस तो केवल एक ही है और वह रस है करुण रस। इसी से पृथक्–पृथक भेद करके भिन्न भिन्न नाम दिये गये हैं। करुण रस की पुष्टि हमें पंत की इन पंक्तियों से बरबस ही अपनी जो आकृष्ट करती है –

''वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान
उमड़कर आंखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।''

संस्कृत के आदि कवि का मूलस्रोत करुणा ही है क्रोंच पक्षी का वध और विलाप कवि हृदय को झकझोर गया तब कवि मन कह उठा –

''भा निषाद प्रतिष्ठान्त्वभागमः शाश्वतीः समाः
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काम–मोहितम्।''

लोक साहित्य के अध्येता डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने करुण रस भरे लोक गीतों को लेकर लिखा है कि –– ''पुत्री की बिदाई (गौना) जंतसार, निर्गुन, पूरबी रोपनी तथा सोहनी आदि गीतों में करुण रस की मंदाकिनी मंद मंद गति से प्रवाहित होती दिखलाई पड़ती है। पुत्री की बिदाई का अवंसर बड़ा ही दुखदायी होता है। इस समय अनेक धैर्यशाली व्यक्तियों का धैर्य भी करुण रस के प्रबल प्रवाह में बह जाता है। गौना के गीतों में करुण रस बरसाती नदी की भांति उमड़ता दिखलाई पड़ता है। डॉ. विनोद तिवारी लिखती हैं कि ''नारी की मनोदशा यथा वन्ध्या, विधवा, बेटी बहु, के कष्ट, माता का वात्सल्य आदि ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनके द्वाग यहां के गीतों में करुणाधारा अजस्त्र रूप में बहती रही है। जहां कहीं भी मार्मिकता के प्रसंग आये हैं, वहां करुण रस की अभिव्यक्ति ही विशेष रूप से हुई है। सचमुच करुण रस लोकगीतों में ऐसा समा गया है कि इसको निकाल देने से लोकगीतों की आत्मा ही निकल जायेगी। यह लोक–गीतों का अमर तत्व है।''

तो आइये अब हम ऐसे रस से ओतप्रोत कुछ बुन्देली लोकगीतों की बानगी पर अपनी दृष्टि डालें। सबसे पहले बेटी की बिदा के ही गीत लें। इन गीतों में बेटी की बिदा के पहले का दृश्य, फिर उसकी सखी सहेलियां उसे सजा रही हैं और सजाते सजाते उनके नेत्र अश्रुपूरित हो चले हैं –

''भीतर बिटिया सखी सजाईं, असुअन की बहै धार मोरे लाल
सज कें बिटिया बाहर आई, रोवत होत अधीर मोरे लाल
हाय रे बिधना कहा लिखायो, कहां को रई हैं ढकेल मोरे लाल''

बेटी पिता के आदेश की अनुगामिनी होती है अतः पिता जब कन्यादान सौंपकर मंडप के नीचे से उठता है तो उसकी छाती हिलोर ले उठती है –

''धीअर समधि बाबुल घर को आये चितु मंडप तन जाए
फटि जा धरती, बजुर छाती, बहुरि न जनमें धीय हो

इस प्रकार से वह पिता अपनी बेटी का कन्यादान देकर कहता है। बेटी स्वयं अपनी व्यथा कथा को गीत के माध्यम से प्रस्तुत करती है –

''हम तौ कहियै आजुल बरहै कौ पानी
जित मोरौ तित जाय
हम तौ हहियै बाबुल अंगना की चिड़िया
रुगि चुंग के उड़ि जाय
०० ०० ००
हम तौ कहिये बाबुल खूँटा की गैया
जित ढीलौ तित जाय।''

बेटी इतना कहकर ही नहीं रह जाती वह अपनी मां के पास जाकर कहती है –

''हाय री मइया जौ का कीनों, कहा को दई है ढकेल मोरे लाल।
जौ दुख मइया काय को दीनों, जनमत काय न मारी मोरे लाल।
जइ कों मइया दूध पियाओ, पाल पोस करी स्यानी मोरे लाल।
कहा कसूर बनों मइया, जामें दई परदेश मोरे लाल।।''

बेटी अपने बालापन को याद करती और फिर अपनी मां के कंठ

सें लग कर बार–बार कहती है –

''बालापन यहां खेल गंवायौ, लोटत यही धूर मोरे लाल
अब दो पन मइया कहां बीत हैं, सो सब मोय बताव मोरे लाल''

मां अपनी बेटी को समझाती बुझाती है और सखियां गीत के माध्यम से उसे सान्त्वना देती है –

''पहिली भांवर जब परी लड़नदे हमारी है
दूजी भांवर जब परी बेटी हमारी है
०० ०० ००
सातवीं भांवर जब परी बेटी भई है पराई।''
०० ०० ००
सब सखियां रोदन ठानें कहा करी करतार मोरे लाल
चतुर सखी सब मिल समुझावें, यही वेद की रीत मोरे लाल

लेकिन बेटी फिर भी अपनी भावनाओं को रोक नहीं पाती वह कहती है –

''देरी में इटिया न दइऔ मोरे बाबूल, बिटिया न दइऔ परदेश मोरे लाल।
देरी की इटिया खिसक जैहै बाबुल, बिटिया बिसूरे परदेस मोरे लाल।।''

लेकिन पिता अपनी बेटी को भला किस प्रकार समझाये। ऐसी स्थिति में वह अपनी लाड़ली बेटी से कुछ नहीं कह पाता।

उधर सभी जुड़ी स्त्रियों का समूह फिर गीतमय होकर करुण रस में डूबा उसी स्वर में भीग जाता है –

''सड़खर के दो तीर, धनइयां नोंनी बंसा की
रोकौ बीरन मोरे दोर बहिन तोरी कहां चली
जाना दो माई जाय वीर बहिन घर जाने दो
रानी माई ने लई है दुकाय जैसे धीया कूपरी
राजा बाबूल ने दई है बताय जैसे जल माछरी''

और जब बाबुल ने लड़की को बता दिया तो फिर सभी सखी सहेलियां उसे ले जाकर पालकी में बैठाने लगती हैं –

जबरन बिटिया धरी पालकी, रोवत रोवत जाय मोरे लाल

जब बेटी पालकी में बैठा दी गई तब भला उसका क्या बस। फिर भी वह कहने लगती है –

''मोरी मइया भूल न जइयौ, जल्दी मोय बुलैयौ मोरे लाल।
सावन होरी और दिवारी, भैया बेग पठैयौ मोरे लाल।
मिलै सवारी जो न भइया, भइया रिंगत पठइयौ मोरे लाल।।''

आशा और विश्वास के साथ वह अपनी मां से इतनी विनय करती है और अपने मन की बात को कह डालती है।

उसकी यह दशा देखकर सभी की स्थिति करुणा के सागर में हिलोरें लेने लगती है। सभी की आंखें अश्रुपूरित हो पड़ती हैं और उसे तसल्ली देने के लिए उसकी सभी सखी सहेलियं आतीं हैं। उसके मां बाप भाई सभी उसे तसल्ली देते हैं, —

''भैया कहै बेटी नित उठ अइयौ बाबुल कहें दोउ जून मोरे लाल
भैया कहें बहिनी काम परें अइयो''

लेकिन उसका मन नहीं मानता वह बहुत रोती बिलखती है लेकिन वह ऐसी स्थिति में यह भी जानती है कि उसे यहां तो अब रहना ही नहीं है उसे जाना ही पड़ेगा अतः वह अपने बाबुल से कहने लगती है –

''भैया को दये बाबुल महल अटारी,
हमको दये परदेश मोरे लाल।।''

गीत में कितनी करुणा और विद्राह है उसका सम्मलित स्वरूप किस स्थिति में पिता को मर्मन्तक पीड़ादायक बना देता है। यह तो वह पिता ही जान सकता है दूसरा नहीं। आगे पालकी को उठाकर कहार चल देते हैं, दूर से बाबुल देख कर कह उठते हैं –

''क्रोट तरैं तर निकर पलकुरी, बाबुल कात धिय जांय''

लेकिन उनका मन रो उठता है साथ ही मां और भाई भी रोने लगते हैं गीत में उस बिदाई के क्षणों को कैसे बांधा जा सकता है फिर लोक व्यापी करुणा का चित्र वस्तु स्थिति को अपने में समेट कर चलता है देखिये –

''मैया के रोए चुनरिया ऊ भीजै बाबुल कुसवारी डा
दै दै दुपट्टा बीरन रोबैं, मोरी भैना चली ससुरार।''

बुन्देली लोकगीतों की करुणा में अतिश्योक्ति अलंकार का चित्र भी उभर कर सामने आ जाता है। जैसे कि बेटी की बिदा के समय का दृश्य है और सभी लोग बिदाई की बेला में रो रहे हैं लेकिन मां बाप की स्थिति और सगे संबन्धियों का हृदय इस प्रकार का दृवीभूत हो उठता है कि कुछ कहा नहीं जाता उस स्थिति को देखकर फिर भी लोक भावना की प्रबल भावाभिव्यक्ति अपने चरम उत्कर्ष पर जब पहुंचती है तो –

''माया के रोए से नदिया बहत है।
बाबुल के रोए बेला ताल मोरे लाल।।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि बेटी की बिदा के गीतों में करुण रस की पूर्ति यत्र तत्र मिलती है। बेटी की विदा के इन गीतों में पत्थर हृदय भी पिघल सकता है मानव मात्र की तो बात ही क्या। भरे कंठ और झर–झर झरते आंसुओं की धारा का दृश्य जब भी किसी के सामने आता है तो वह उसे भी अपने आप में जोड़ लेता है और वह भी उस स्थिति में अपने को सटीक पाता है, जिसमें पूरा का पूरा समूह डूबा होता है।

श्री लक्ष्मीकांत वर्मा के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि – ''लोकगीतों की मनोव्यथा उन्मुक्त हुआ करती है, उसमें सभ्यता का मिथ्या आवरण नहीं लिपटा रहता, साथ ही मर्यादा और परम्परा की रक्षा भी लोकगीतों में निहित रहती है।'' इस प्रकार से बुन्देली लोकगीतों में हमें करुण रस की अपार सम्पदा और उसकी रक्षा के लिए भी आज की स्थिति में प्रयासरत रहना जरूरी है, क्योंकि समय के परिवेश में वर्तमान के बदलते तेवर ऐसी रचना न रचें कि हमारी यह धरोहर विलीन हो जाये।

–ई.डी–२५, म.प्र.वि.मं. कॉलोनी, रामपुर, जबलपुर

□

पजनेस और उनका काव्य

- डॉ. गंगाप्रसाद बरसैंया

रीतिकालीन कवियों में पजनेस सुपरिचित नाम है। किन्तु आश्चर्य की बात है कि न तो उनका प्रामाणिक जीवन–वृत्त ज्ञात है और न ही उनका कोई ग्रंथ उपलब्ध है। इतना सुनिश्चित है कि वे पन्ना (बुन्देलखण्ड) के निवासी थे परन्तु पन्ना निवासियों को भी उनके बारे में कोई जानकारी नहीं है। पन्ना के पुस्तकालयों तथा राजघराने के संग्रहालय में भी उनकी कोई कृति या विवरण नहीं है। पजनेस, करन, मंचित, मंजुन आदि दर्जनों ऐसे कवि हैं जो इस क्षेत्र में रहे हैं लेकिन जब कोई जिज्ञासु या शोधार्थी उनकी खोज में आता है तो उसे निराश होना पड़ता है।

सर्वप्रथम पजनेस के ५६ छंदों का प्रकाशन भारत जीवन प्रेस, काशी से ''पजनेस पचासा'' शीर्षक से किया गया था। इन छंदों का संग्रह भारत जीवन के सम्पादक बाबू रामकृष्ण वर्मा ने डुमराव निवासी नकछेदी तिवारी की सहायता से खोजकर किया था। बाद में दूसरा संग्रह सन् १८९४ ई. में ''पजनेस प्रकाश'' शीर्षक से किया गया जिसमें उनके एक सौ छंद संग्रहित हैं। यह जानकारी ''पजनेस प्रकाश'' के मुखपृष्ठ पर अंकित इबारत तथा उसमें दी गई भूमिका से होती है। उससे यह पता नहीं चलता कि वें किसी के आश्रित थे अथवा नहीं। संकलित छंदों में कहीं यह उल्लेख नहीं है कि वे किसी के राज्याश्रय में थे। मुखपृष्ठ की इबारत इस प्रकार है – ''पजनेश प्रकाश अर्थात् जिसमें पन्ना जिला बुन्देलखण्ड निवासी प्रसिद्ध पजनेस कविकृत १०० कवित्त हैं। जिसे भारत जीवन सम्पादक बाबू रामकृष्ण वर्मा ने खोजकर डुमराव निवासी नकछेदी तिवारी की सहायता से संग्रह कर प्रकाश किया।[1]

इस संग्रह की भूमिका में संक्षेप में कविं तथा उनकी काव्यकला के बारे में चर्चा करने के साथ ही इस संग्रह के बारे में जानकारी दी गई है। साथ ही साहित्य प्रेमियों से अनुरोध किया गया है कि वे पजनेस के नए छंद उपलब्ध करायें तो उन्हें मानदेय भी प्रदान किया जावेगा। भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है अतः यहां उसे यथावत दिया जा रहा है – ''विदित हो कि पजनेस कवि की कविता के प्रेमीजन प्रायः बहुत दिखाई देते हैं किन्तु वह रत्न इन दिनों दुष्प्राप्य है। जिन लोगों के पास कुछ कवित्त हैं वे उसे सूर्य की धूप और बाहर की हवा तक नहीं लगने देते। ऐसे लोगों पर अत्यन्त खेद होता है और सोच के साथ कहा जाता है कि यों ही बड़े–बड़े प्राचीन कवियों की अनेक कवित्त में लोप हो गई। ये कवि महाशय पन्ना नगर में हुये हैं। इनकी कविता में अनुप्रास और श्रृंगार रस में भी ट वर्ग प्रायः अधिक होता है। उपमा और कविता की गठन इनकी प्रशंसनीय है। इनका जन्म संवत् १८७२ में हुआ था। हमें जहां तक उनकी कविता मिली, हमने संग्रह किया और यथावत संभव शुद्ध भी किया, किन्तु फिर भी अनेक पद ऐसे गड़बड़ है कि उनका भाव ठीक नहीं खुलता। जिन महाशयों को इन कवित्तों का पाठान्तर या शुद्ध पाठ स्मरण हो कृपा कर हमें लिखकर अनुग्रहीत करें। सुना है कि कहीं–कहीं पजनेस की ३०० कविता है। हमने जो कविता इसमें प्रकाश की है इसके अतिरिक्त जो महाशय हमारे पास अधिक कवित्त भेजेंगे उन्हें प्रत्येक कवित्त या सवैये पर हम ४ पजनेस प्रकाश की किताब देंगे अथवा यदि वे नगद चाहेंगे तो उनकी चार कवित्त पर १/– रुपया दिया जाएगा। प्रथम बेर जब वह पजनेस पचासा के नाम से छपा था तो उसमें केवल ५६ कवित्त थे। इस बेर इसमें १०० कवित्त हैं, शेष के कवित्त भी हम आशा करते हैं कि हमारे कविता प्रेमी ग्राहकों के उत्साह में शीघ्र मिल जायेंगे।''[2]

इस भूमिका में निम्नांकित बिन्दु महत्वपूर्ण हैं :–

१. पजनेस पन्ना जिला बुन्देलखण्ड के निवासी थे।

२. इनका जन्म संवत् १८७२ में हुआ था।

३. इनके छंदों का पहला संग्रह ''पजनेस पचासा'' नाम से भारत जीवन प्रेस से प्रकाशित हुआ था इसमें मात्र ५६ छंद थे। इसका प्रकाशन काल अज्ञात है। दूसरा संग्रह ''पजनेस प्रकाश'' नाम से सन् १८९४ में प्रकाशित किया गया जिसमें १०० छंद हैं। इनमें ''पजनेस पचासा'' के ५६ छंद भी सम्मिलित हैं।

४. पजनेस पचासा और पजनेस प्रकाश दो अलग ग्रंथ नहीं है। पजनेस प्रकाश में पजनेस पचासा के छंद शामिल हैं। परवर्ती अनेक विद्वानों ने इन दोनों को अलग ग्रंथों के रूप में उल्लिखित किया है।

५. ''पजनेस पचासा'' के प्रकाशन तक पजनेस कवि पर्याप्त लोकप्रिय हो चुके थे।

६. उस समय भी लोग छंद–संग्रहों के प्रति अनुदार थे। पास में छंद होकर भी नहीं देना चाहते थे। अर्थ का आकर्षण था।

७. पजनेस की कविता में अनुप्रास और श्रृंगार की प्रमुखता और ट वर्ग का आधिक्य है।

८. उस समय लोगों मे उनके छंदों की संख्या लगभग ३०० होने की चर्चा थी।

९. पजनेस प्रकाश का प्रकाशनकाल सन् १८९४ है। हो सकता है कि इसके पूर्व पजनेस पचासा का प्रकाशन ५ वर्ष पूर्व सन् १८९० के आस–पास हुआ हो।

१०. यदि पजनेस कवि का जन्म संवत् १८७२ (सन १८१५) प्रामाणिक मान लिया जाये तो जन्मकाल और ''पजनेस पचासा'' के प्रकाशन में लगभग ७५ वर्ष का ही अंतर होता है जिसे अधिक नहीं कहा जा सकता। यदि कवि की आयु ६० वर्ष ही मान ली जाय तो उनके निधनकाल और प्रकाशन काल में लगभग १५ वर्ष का ही अंतर रह जाता है। इतनी जल्दी कवि के कृतित्व का लुप्त होना अविश्वसनीय सा लगता है। इससे अनुमान होता है कि संवत् १८७२ उनका जन्मवर्ष न होकर उपस्थिति काल ही हो सकता है। यद्यपि अनेक परवर्ती विद्वानों ने उनका कविताकाल संवत् १९०० माना है।

प्राप्त विवरणी से ज्ञात होता है कि पजनेस की चर्चा सर्वप्रथम शिवसिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' में की थी जिसका प्रथम प्रकाशन सन् १८७८ में हुआ था। उनके अनुसार इनका जन्म परना (पन्ना) में हुआ था। उन्होंने पजनेस के मधुप्रिया नामक ग्रंथ का भी उल्लेख किया है जो भाषा साहित्य का अदभुत ग्रंथ है। कवि की अनूठी उपमा, अनूठे पद, अनुप्रास, यमक को तारीफ योग्य माना है किन्तु ट वर्ग श्रृंगार रस में सार्थक है। उन्होंने अपने नखशिख चित्रण की प्रशंसा करते हुए उन्हें फारसी का ज्ञानकार भी कहा है।[3] बाद में मिश्रबन्धु विनोद में मिश्र बंधुओं ने भी लगभग यही बातें कहीं हैं। उन्होंने मधुप्रिया के अलावा नखशिख ग्रंथ का भी उल्लेख किया किन्तु स्वीकार किया है कि उन्होंने उनका एक भी ग्रंथ नहीं देखा। वे भी जन्म संवत् १८७२ और कविताकाल संवत् १९०० मानते हैं। पहलीबार उन्होंने भारत जीवन प्रेस से प्रकाशित ५६ छंद वाले पजनेस पचासा का उल्लेख किया और यह भी लिखा कि तमाम खोज के बाद उसी प्रेस ने ''पजनेस प्रकाश'' शीर्षक से १२७ छंद छापे। यह भी कि इससे अधिक इनके छंद नहीं मिलते।[4] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लगभग यही एक बातें कहीं हैं जो मिश्र बंधुओं और सरोजकार ने कहीं हैं। किसी नये तथ्य का उल्लेख नहीं किया। इन्होंने भी १२७ छंदों वाले पजनेश प्रकाश का उल्लेख किया है।[5] इसका आशय यह है कि इन लोगों ने १०० छंदों वाले सन् १८९४ में प्रकाशित ''पजनेश प्रकाश'' का संस्करण नहीं देखा। मेरे पास सन् १८९४ में प्रकाशित एक सौ छन्दों वाला ''पजनेश प्रकाश'' है। ''बुन्देल वैभव'' के लेखक ने भी अपना विवरण सरोजकार के लेख के आधार पर दिया प्रतीत होता है।[6] मिश्र बन्धुओं ने अपने विवरण में मधुप्रिया का उल्लेख करते हुए १९०५ के खोज विवरण का संदर्भ भी दिया है। इससे लगता है कि यह पजनेश का ग्रंथ है जिसको देखकर ही विवरणकार ने विवरण लिया और प्रकाशित किया होगा। यद्यपि उन्होंने ग्रंथ स्वयं न देखने की बात भी स्वीकार की है। दिग्विजय भूषण के संपादक डॉ. भगवती प्रसाद सिंह के अनुसार पजनेस का एक मात्र ग्रंथ मधुप्रिया उपलब्ध हुआ है। विद्वानों ने जिस नखशिख ग्रंथ की चर्चा की है वह अलग ग्रंथ न होकर मधुप्रिया का ही अंग है।[7] दिग्विजय भूषण में इनके नखशिख तथा श्रृंगार संबंधी छंद भी संग्रहीत हैं। सरोज सर्वेक्षणकार डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने प्रामाणिक रूप से जो लिखा है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार ''मधुप्रिया'' की एक प्रति मिली है जो सटीक है। प्राप्त प्रति में केवल नखशिख संबंधी ३१ कवित्त हैं। प्रतीत होता है कि यह मधुप्रिया का एक अंश मात्र है। इस प्रति की पुष्पिका से ही यह संकेत मिलता है – ''इति पजनेसकृत ग्रंथ मधुप्रिया स्वामिनी जू को वर्णन मूल कवित्त टीका नखशिख समाप्त।[8]'' टीकाकार का नाम अज्ञात है। विनोद (१८०४) में एवं उसी के आधार पर शुक्ल जी के इतिहास में इनके दो ग्रंथों मधुप्रिया और नखशिख का उल्लेख है। पर जैसा कि अभी हम देख चुके हैं नखशिख कोई स्वतंत्र ग्रंथ न होकर मधुप्रिया का अंग मात्र है। शुक्ल जी ने मधुप्रिया का मधुरप्रिया बना दिया है।[9] आगे वे लिखते हैं भारत जीवन प्रेस काशी ने पजनेस के ५६ कवित्त सवैयों को प ''पजनेस पचासा'' नाम से फिर १२७ छंदों को ''पजनेस प्रकाश'' नाम से प्रकाशित किया था। अन्य प्रमाणों के अभाव में ''सरोज'' में दिये गए संवत् १८७२ को कवि का जन्मकाल न समझ कर उपस्थिति काल ही समझना चाहिए।[10] दीवान प्रतिपाल सिंह ने पजनेस पचासा, पजनेश प्रकाश, मधुप्रिया, नखशिख ग्रंथों के नाम गिनाए हैं।[11]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि पन्ना निवासी कवि पजनेस संवत् १८७२ (सन्) १८१५ में वे उपस्थित थे। संवत् १९०० उनका कविताकाल है। उन्होंने कवित्त सवैयों की रचना की। ''मधुप्रिया'' ग्रंथ की रचना करने वाले पजनेस ने सैकड़ों छंदों की रचना की। उनका मधुप्रिया अथवा अन्य कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। पजनेस प्रकाश उनके १२७ स्फुट छंदों का सबसे बड़ा संग्रह है। जिसकी प्रामाणिक जानकारी साहित्य जगत को है। यह ग्रंथ भी अब सहज उपलब्ध नहीं है। उनके छंदों का मूलस्वर श्रृंगार है जिसमें फारसी शब्दावली और ट वर्ग का बाहुल्य है। उनके छंद उच्चकोटि के हैं। जिसमें अनुप्रास आदि का प्रयोग विशिष्ट हैं। उनकी लोकप्रियता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि तत्कालीन प्रायः सभी काव्य संग्रहों में उनके छंद संग्रहित हैं। परमानन्द सुहाने के नखशिख हजारा (सन् १८९३) में ८ छंद[12] पटऋतु हजारा (सन् १८९४) में ९ छंद[13] सरदार कवि के श्रृंगार संग्रह में १८ छंद[14], दिग्विजय भूषण में कई छंद आदि इसके प्रमाण हैं।[15]

पजनेस प्रकाश में छंदों का जो क्रम दिया गया है वह कवि का दिया न होकर सम्पादक द्वारा व्यवस्थित किया गया है। यहां वहां से संकलित छंदों को यथासंभव विषयानुसार रखने की चेष्टा की गई है। प्रारंभ में सरस्वती वंदना और राधा कृष्ण की युगल

वंदना के छंद हैं। राधाकृष्ण संबंधी तीन छंदों में अंतिम चौथी पंक्ति सभी में दोहराई गई है।

चंद्रिका में मुकुट मुकुट में सुचंद्रिका है,
चंद्रिका मुकुट मिली चंद्रिका अजोर की।
नगन में अंग अंग नगनग अंगन में,
कवि पजनेस लखैं नजर करोर की।।
तनु बिज्जुदान मध्य बिज्जु तनु मध्य तनु,
बिज्जुदाम मिलि देह दुति दुहुं ओर की।
तीन लोक झांकी ऐसी दूसरी न झांकी
जैसी झांकी हम झांकी आज जुगल किशोर की।

श्रृंगार कवि पजनेस का प्रमुख विषय है। वय: संधि श्रृंगार का अभिन्न अंग है। पजनेस ने वय: संधि का सुन्दर चित्रण किया है। वय–परिवर्तन से केवल आंगिक परिवर्तन ही नहीं होता अपितु मानसिक और स्वभावगत बदलाव भी आता है। कवि ने परिवर्तन की इस मनोवैज्ञानिकता का भी चित्रण में ध्यान रखा है। उदाहरणार्थ–

लागी दीठि लगन लजान लागि लोगन तें
लंकलागी कृमन लुभान लागे पजनेख।
चम्पक प्रसून दल दुति कलिका के गात
औरै और रंग अंग अंगन परत देख।।
कसमसे कसे उकसेऊ से उरोजन पै,
उपटति कंचुकी की तुरुष तिरीछी बेख।
उदया अस्ताचल की दोऊ कोर दाबि
मानो दीपति नवीन पथ रविरथ चक्र रेख।।

इस छन्द में की गई कल्पना अनूठी है। पजनेस नखशिख वर्णन के लिए विशेष रूप से जाने जाते हैं। सभी विद्वानों ने उनके नखशिख वर्णन का उल्लेख किया है। यह कहना तो मुश्किल है कि सभी छन्द एक से श्रेष्ठ हैं। कई छंदों में मर्यादा की उपेक्षा भी की गई है किन्तु रीतिकालीन काव्य में इसकी कहीं कमी नहीं है। पजनेस ने एक–एक अंग का सर्वांग चित्रण के साथ ही आभूषण, वस्त्र, तिल, गोदना यहां तक कि मोहासे तक का बड़ा रोचक और सूक्ष्म चित्रण किया है। राधा–कृष्ण के नामों का बीच–बीच में प्रयोग करने से कवि चूका तो नहीं, परन्तु संयोग, वियोग और रतिक्रीड़ा आदि के चित्रण में कोई संकोच दिखाई नहीं देता। सौंदर्य चित्रण में कवि ने जो अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, यमक, संदेह आदि का कलात्मक प्रयोग किया है वह निश्चित ही आकर्षक है यथा –

कैधौं कोकदेव के कुमार काम जीत दोनों
कैधों मैंन मग के मुकाम तिथि करै री।
कैंधों स्याम–नुकता निसान पंचबान बांकौं
कैधों तिया रूप पै पिया के दृग हेरे की।
कैधों भाग अंग लेखनी को बुन्द लागे कहूं
पजन मुखारबिन्द अलिकल घेरे की।
नीलमनि कैसे ये नबीन कर राजै चारू
अमल कपोल पै अमोल तिल तेरे की।

कुर्सी पर बैठी हुई नायिका के सौहर्य का एक चित्रण देखिये –

पगन प्रवीन प्यारी मेहंदी सुरंग रंग
विदुम कला सी छवि छायो तन ती पैहै।
छटा है छपाकर के छाजत छबीलो
अंग उरज उतंगन पै रंगन भरी पै है
मन पजनेस दीप कैसो है मुखारबिन्द
दृष्टिपग पोंछियोंछि जात प्रात पी पै है।
कुन्दन जरी सी मांग मोतिन भरी सी
रूप राजत परी सी बाल बैठी कुरसी पै है।

जैसा कि मैंने पूर्व ही में कहा कवि ने रतिक्रीड़ा आदि के चित्रण में अश्लीलता और मर्यादा का उल्लंघन करने में संकोच नहीं किया। परन्तु श्रृंगार के आनन्द–रस में बाधा तब उपस्थित होती है जब कवि ट वर्ग का बहुतायत से प्रयोग करता है। रति क्रीड़ा का चित्रण कवि ने अनेक प्रकार से अनेक छन्दों में किया है। जिसमें विपरीत रति भी सम्मिलित है। ट वर्ग के प्रयोग का एक उदाहरण देखें –

कवि पजनेस केलि मधुप निकेत नव
दरमुख दिव्य धरी घटिका लंटी सी है।
विधुवर वेष चक्र चक्र रवि रथ चक्र
गोमती के चक्र चक्रताकृत घटी की है।
नीवीतर निबली बली पै दुति को खतुंड
कुंडली कलित लोम लतिका बुटी की है।
उबटी की टीकी प्रभाटी की वधूटी को नाभि
टीकी धूर्जटी को औ कुटी की संपुटी की है।

इसी प्रकार जहां अनुप्रासों की झड़ी लगती है वहां भी भाव रस उन अनुप्रासी शब्दावली में विलीन हो जाता है। कई छंदों में जहां ट वर्ग का आग्रह नहीं है वहां चित्रित हाव–भाव, अनुभाव सहज और स्वाभाविक प्रतीत होते हैं। केलिक्रीड़ा का यह छंद इसी प्रकार का है –

ल्याई केलि मंदिर भोराय भोरी भामिनी को
फूलगंध कैफबस कीन्हों पौन रुख तै।
कुन्दन कलित कस तनु अति रमणीय,
लीन्हौं गहि पीतम प्रसून सेज सुख तैं।
मन पजनेस भुज भरत हहाकै हरे
सिसिक समेटि सांस नीवी दावि दुख तै।
आह करि उछरि सचोट पन्नगी सी ऐंठि उमठि
अरीरी मैं मरी री कढ़ी मुख तैं।

कवि पजनेस में श्रृंगार के विधिव अंगों और रूपों के साथ ही ऋतुओं और फाग आदि का भी चित्रण किया। फाग के चित्रण

में राधा–कृष्ण की उपस्थिति रीतिकाव्य में अनिवार्य सी हो गई थी। यद्यपि यह सभी जानते थे ''राधाकन्हाई''बहाना मात्र है। कवि द्वारा वर्णित फाग का एक छंद इस प्रकार है –

दुहुं ओर से फाग मड़ी उमड़ी जहां
श्री चढ़ी भीरतें भीर भिरी।
कुच कंचुकी कोर छुये छरके पजनेस
फंदी फरकै ज्यों चिरी।
धधकी दै गुलाल को धूंधर में
धरी गोरी लला मुख भीड़ि सिरी।
झरपै झपै कौधे कढ़ै तड़िता तड़पै मनौ लाल घटा में घिरी।

कवि ने कई छंदों में ऋतुओं का भी चित्रण किया है। यों तो सभी ऋतुयें कवियों की प्रेरक रही है इसीलिए षट्ऋतुओं और बारहमासा का चित्रण प्रभूत मात्रा में कविता में मिलता है। ऋतु वर्णन की यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। रीतिकांव्य में इसका बाहुल्य देखने को मिलता है। श्रृंगार चित्रण में कवि ने जितनी रुचि दिखाई है उतनी प्रकृति चित्रण में नहीं। फिर भी ऋतुपरक जो भी छंद है उसमें कवि की काण्यकला और दृष्टि की पहचान मिल जाती है। पावस का एक चित्रण इस प्रकार है –

पावस विवस बिरव वासर निसा से भासे
भन पजनेस देस देसन संवारे से।
धूम रंग धौरै धौरै धराधर श्रृंगन
पै धावत अधरधुर धुंध गतिवारे से।
छूटे बाट बानन बलन्द को जहाज
मानो आवत ढिलत नित नेह नदवारे से।
होती घनीहू में धारा धरनी सी
धूमे धरि घेरि धन धूमे झूमें गज मतवारे से।

फारसी शब्दावली के प्रायः प्रयोग से अनुमान होता है कि उन्हें फारसी का अच्छा ज्ञान था किन्तु कहीं कहीं छन्दों में फारसी का इतना आधिक्य है कि अर्थ तों समझना कठिन ही है, आनन्द रस की कोई कल्पना भी नहीं होती। इस प्रकार के प्रयोग कई बार बहुत अखरते हैं –

पजनेस तमछुकता विलमिल, जुलफ फुरकत न कबूल कए से।
महबूब चुनां बदमस्त सनम अजदस्त अलाबल जुलफ बसे।
मजयू यैन काफ मफाक रुयै सम क्यामत चश्म से खूँ बरसे।
मिंजगाँ सुरमा तहरील दुतां नुकते बिन वे किनते किन से।

इसी प्रकार कई छंदों में जिस प्रकार की अनुप्रासिक शब्दावली का प्रयोग किया गया है वह असहज होने के साथ ही शब्दों के साथ किया गया खिलवाड़ और कलाबाजी सी लगती है। जैसे –

पजन प्रयत्न सो संकेत परजंक पाय
प्रफुर फुंदी के फूंद फंदन दुराय रे।
केलि कुलकलाकलकुल कल्जै कूल
कूल कुल कौल कौल कौल कली खुल काय रे।
ऊल अवलम्ब अलि अवलि अबोल
बोल लाल लोल लोवन सो सलिल बहाय रे।
ऊलै ऊलै ओल ओली ओलत अलीलै
ओलै हौले हौले खोलै पल बोलै हाय हाय रे।

इस प्रकार लगभग दो सौ वर्ष पूर्व जन्मे पन्ना निवासी कवि पजनेस ने रीतिकालीन वातावरण के अनुरूप अनेक श्रृंगारिक कवित्त–सवैया छन्दों की रचना की। छंदों को देखने से यह तो कहा जा सकता है कि उनकी रुचि किसी शास्त्रीय विधि के अनुरूप ग्रंथ रचना की नहीं थी। उन्होंने श्रृंगार प्रधान छंदों की रचना की जिसमें नखशिख स्वरूप और सौंदर्य का चित्रण तथा विविध स्थितियों और मनोभावों का अंकन है। छंदों में उन्होंने ''पजन'' और 'पजनेस' दोनों का प्रयोग किया है। जरूरत पड़ने पर इसमें भी तोड़ –फोड़ की गयी है। जैसे पजनेस का 'प्रजनेख'। शब्दों तोड़ मरोड़ रीति कवियों की एक विशिष्टता थी। साहित्य आ सार्थकों के इतने विकास और शोध के बावजूद इस कवि क जीवन वृत्त और कृतित्व प्रामाणिक और पूरी तरह से ज्ञात न होन दुखद है। बुन्देलखण्ड के विद्वानों, साहित्यकारों का विशेष दायित है कि वे ये इस दिशा में अपने दायित्व का निर्वाह करें और उन जीवन तथा साहित्य को उजागर करें ताकि ऐसी प्रतिभायें अनजान और अप्रकाशित न रह जावें।

संदर्भ–संकेत

१. पजनेस प्रकाश सम्पादक – रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन प्रेस, काशी सन् १८९
२. पजनेस प्रकाश – सम्पादक – रामकृष्ण वर्मा, भूमिका भारत जीवन प्रेस, सन् १८९
३. शिवसिंह सरोज – शिव सिंह सेंगर पृ. ७३४
४. मिश्रबंधु – मिश्रबंधु विनोद (भाग ३–४) पृ. ५४
५. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल पृ. ३६४
६. बुन्देल वैभव – भाग ३, गौरीशंकर द्विवेदी पृ. ५७५
७. मिश्रबंधु विनोद पृ. ३४
८. दिग्विजय भूषण – सम्पादक डॉ. भगवती प्रसाद सिंह पृ. ५७
९. सरोज सर्वेक्षण – डॉ. किशोरीलाल गुप्त पृ. ४१८–१९
१०. –''– वही –''–
११. बुन्देलखण्ड का इतिहास – दीवान प्रतिपाल सिंह सन् १९२८
१२. नखशिख हजारा, सं. परमानन्द सुहाने, नवलकिशोर प्रेस काशी, सन् १८९
१३. षट्ऋतु हजारा – पं. परमानन्द सुहाने –''– सन् १८९४
१४. श्रृंगार संग्रह – सरदार कवि –''– सन् १८९९
१५. दिग्विजय भूषण – गोकल प्रसाद, बहादुरी यंत्रालय, बलरामपुर सन् १८६
नोट – सभी छंद 'पजनेस प्रकाश' सम्पादक–रामकृष्ण वर्मा भारत जीवन प्रेस काशी संस्करण १८९४ से उद्धृत हैं।

– एम.आई.जी. १
चौबे कॉलोनी, छतर

□

बुन्देली की उपमायें

– डॉ. डी.आर. वर्मा 'बेचैन'

साहित्य में उपमाओं का अपना निराला स्थान है। कवि हो या लेखक या व्याख्याता, जब वह अपने भाव को अधिक बोध गम्य बनाकर सरलता से समझाना चाहता है तो किसी रूप सादृश्य का सहारा लेता है। साहित्यकारों ने उपमा के लिये रूप, रंग या गुण की समानता या सादृश्य का होना आवश्यक माना है, और कहा है –

"रूप, रंग, गुण काहु कौ, काहू के अनुसार।
ताको उपमा कहत हैं, जे सुबुद्धि आगार।।"

– संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास उपमाओं के लिये अद्वितीय हैं। हिन्दी में तुलसीदास की उपमायें भी सटीक हैं। प्रत्येक भाषा के साहित्य में उपमायें और उपमान होते हैं। इसी प्रकार बुन्देली भाषा साहित्य में परम्परागत रूप से मार्मिक उपमायें चली आ रही हैं। यह बुन्देली उपमायें इतनी सटीक होती हैं कि मूल भाव को मूर्त रूप प्रदान करने में सक्षम हो जाती हैं। उपमाओं का प्रयोग भाव विशेष का सांगोपांग चित्रण करने में सहायता करता है। अधिकांश उपमाओं का प्रयोग भाषा को ललित तथा लोकोक्तिमय बना देता है जिससे भावार्थ को पाठक ज्यों का त्यों हृदयंगम कर लेता है। भावानुभूति करा देना ही साहित्य का उद्देश्य होता है। बुन्देली भाषा की कुछ परम्परागत उपमायें अग्रांकित रूप में हैं।

मंद चाल का वर्णन करने के लिये दीं सी टिरकत या गिंजाई सी चलत कहते हैं। कोई औरत एकाइक तेज बोल पड़ती है, तो कहते हैं – कुतिया सी दोंकत, अचानक शीघ्र आ जाने पर चील सौ टूट परो, हवा सौ उड़ौ आदि। किसी को मारने की धौंस देने में पड़ौरा सौ लुटा दें, बँदरा सौ बमका दें, ककरी सौ पौल दें, लाई सौ भूंज डारें तथा धान सौ कूटें, लदवार सी हलांय आदि उपमायें सुनने में आती हैं। जब कोई कर्णप्रिय नहीं बोलता तो कहते हैं– अरुवा सौ बोलत, ऊँट सौ बलबलात, कुत्ता सौ उआंत, स्याड सी फिकरत आदि सुना जाता है। इसी प्रकार तकुवा सौ सूदौ कर दें, बरा से बलदत, लपसी सी चाटत, पानी सौ पी गये, टका सी कै दई, सत्तुर सौ लगत, विष सी लगत, पौनी सौ मुलाम, पथरा सौ करों, पुरिया सी पूरत, भौंरी सी भभात, घुरिया सी हिनहिनात, गदा कैसे ओंठ, पड़ा सी छाती, विटा सौ डील, हँड़िया कैसी तरी, ईंगुर सी लाल, बरा सी सुजै दई, भुंट्टिया सी छांट दई, भुंट्टा सौ काट लें, घूंस सी घुसी, ऊँट सौ मों उठांय, अरा सौ मों बांय, नार सौ दोंकत, सांड़ सौ दलाकत, सुआ सौ पड़ाव, किवार सी छाती, केवला सी कारी, पानी सौ पतरौ, खजरी कैसौ डूंड़, सूपा कैसे कान, चिरैया सी चेंचयात, सुंगैया सौ मों चलाउत, कोहल सी कूकत, काजर कैसी रेख, पान सौ खांय, अब सौ लगो बासौ सौ खांय, दमार सी ठुकी, पत्ता सौ उड़ौ, छत्ता सौ तनों, लोड़ सौ धरो, अजगर सौ धरो, सतुवा सौ सानत, साँप सौ फूंसत, छिरिया सी सूदरी, भात सौ बगर गओ, मठा सौ भांउत, दरौ सौ दओ, गगरी सी बोर लई, पिड़ी सौ माड़ी, लुचई सी बेली, टमाटर से गाल, भटा से गटा, टिटार सी घींच, बगला सी सफेत, टिटार से गोड़े, हवा सौ उड़त, तांत सौ तनत, अमर बेल सी लिपड़त, हिराने गदा से कुटौ, खरा कैसे गोड़े चूमत, गुलेंदे सौ फेंक दओ, मरी सी धरी, डोरा सी पतरी, चील सी मड़रात, मीदा से मड़रात भारई सी भन्नात, कागद सी पतरी, दिन सौ ऊरौ, चंदा सी सूरत, तुषार सौ लग गओ, ऊमर सें ठूंसे, चटुवा नौंरा सौ हेरत, करबी सी टोड़ारी, जतइया सी धरी, गदइया सी करयाई, बादर सौ गरजत, फरुवा से पांव, नगाड़े सौ पेट, मटका सौ पेट, तिलगिया सी लगी, लुगइया सी लगी, गुँजी सी ठोक दई, हरदी कैसौ पीरौ, गुलाब कैसौ फूल, चरखी सौ मों चलत, परेवा कैसी शोर, बेड़नी सी नचत, सूपनखा कैसी नांक, बिगना कैसी लार, नट कैसी कुलांटें, टांड़ी सौ मों चलत, भूत से भरे, टुइयां सी बोलत, छोत सी लगगई, वान सौ छिदां, ओरे से बरा रये, पानी सौ वरसाउत, बरा सौ सुजै दओ, पान से पलोटे, लम्पा सौ गड़त, गान सौ दब गओ, भाजी सौ पौल दओ, लुखइया कैसी हाई, बसेंड़ा सौ लम्मो, ताजिया कैसी मुड़ी, हांती कैसी सूंड़, रैन सौ बारीक आदि न जाने कितनी उपमायें बुन्देली साहित्य में बिखरी पड़ी हैं, जिन्हें संजोने पर पृथक से एक ग्रंथ तैयार किया जा सकता है। यह उपमायें देश काल और परिस्थिति के अनुसार जन्म भी लेती हैं। प्रयोग न होने पर समाप्त प्राय भी हो सकती हैं। आज के वैज्ञानिक युग में कुछ उपमाओं ने जन्म भी ले लिया है, यथा मोटर सी तेज, वलफ कैसौ झक्काटौ, करंट सौ लगो, गोला सौ घलो, चील गाड़ी सी भन्नात, गाड़ी कैसौ कूका देत, रेल सी देखत रैंगये सूज सी गुलक गई आदि।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि बुन्देली साहित्य में उपमायें प्रयुक्त होती है और अर्थ सामर्थ्य शक्ति को बढ़ाती है। भाव बोध कराकर सही रसास्वादन कराने में उपमाओं की विशेष भूमिका होती है। साहित्य का सौंदर्य भी उपमाओं के प्रयोग से द्विगुणित हो जाता है।

– ग्रा.पो. स्यावरी, वाया मऊरानीपुर,
जि. झांसी (उ.प्र.)

□

निबौंरी

- डॉ. सुश्री शरद सिंह

का हुइए अपनो जी दुखा के? बिट्टो ने सोची।

नीम तरे बैठे निबौंरिन से खेलत-खेलत ऊकी उंगरियन में नींच की लसी चपक गई रही। उतई नींम को करऊंपन मानों ऊके भीतरे समा गऔ रहो। वा अपने उन्ना फटकारत भई ठाड़ीं हो गई। ऊने कनक ठैर के इते-उते हेरो उर फिर ओसारे खों चल परी। बिट्टो के आन की आहट सुनी सो ओसारे के इते बंधी गइया रमान लगी। बिट्टो ने मनों आज चारो-पानी देबे कीं सुधई बिसार दई रही। भुनसारे से गइया भूकी-पियासी खुर्र-खुर्र करत ठाड़ी हती। गइया खों चारो का, बिट्टो ने सो भुनसारे से कछु आड़ी के काड़ी लो न टारी हती। न तो झाडू-बुहारू करो उर न चौका-बासन। दद्दा उर बऊ भुनसारे की गाड़ी से का गए, मनों बिट्टो को सबरो चैनई अपने संगे ले गए।

पांव परबे खों गए हुइएं, का हुइएं पाथर पूजे से? हुंह! नीम को करऊपन मनो मों में घुर गओ। बिट्टो ने आज खटिया लो न उठाई हती। बई खटिया पे पसर गई बिट्टो। तपत भओ सूरज मुंडेर पे से होत-होत खपरैल पे चढ़त जा रओ हतो। गरमी के मारे पसीना सौ चुचान लगो। मनो दुपारी हो चली रही। गइया फिर के रमानी।

'बिट्टो!बिट्टो!' संगे सुखारन बऊ की पुकार सुनाई परी। सुखारन बऊ ने इत्ते जोर से सांकर बजाई के सबरो ओसारो झमक गओ। बिट्टो खिजयात भई दुआरे लो पोंची।

'काए बऊ, का हो गओ? कौन-सी आफत आन परी'?

'कछु नईं! इते से निकर रई हती सो सोची के पतो लेओं, दद्दा-बऊ कढ़ गए का?' कुल्ल गांव भर की खबरें बटोरत फिरत रहत हैं सुखारन बऊ!

'हऔ! भुनसारे वारी गाड़ी से कढ़ गए हैं।' बिट्टो बोली।

'परमेसर करे, ई बेरा बात बनई जाए!' सुखारन बऊ हात जोड़त भई कहन लगीं। फिर बिट्टो से बोलीं, 'दोरे की किवरियां लटका लेओ, काय से अब मोए ज़ाने है। गइया सोई भूकी दिखा रई। खली-भुसा कछु तो डार देओ। जो भुसा बढ़ा गओ होय सो घरे जा के उमेद से भेजवाए देत हों।'

उमेद! उमेद को नांव सुन के बिट्टो की बांछे खिल आई।

'उमेद कबे आ गऔ, बऊ?' बिट्टो ने अपने जी की खुसी छिपात भई पूछी।

'काल संझा खों आओ है। हओ, सो लेओ किवरियां लटका लेओ।' सुखारन बऊ कहत भई दुआरे से बाहरे कढ़ गई।

तो उमेद आ गओ कहाओ? बिट्टो मनई मन सोचत भई मुसक्यान लगी। ऊ को जी अच्छो सो लगन लगो। ऊने उन्ना कसे औ झट्टई झाडू-बुहारू करन लगी। ऊने खटिया सोई एक ओर टिका दई। खटिया की जाँगीदरी बिछा दई। पटा डार दऔ। चूले की राख निकारी औ लकरिया की झिपटियां डारत भई चूलो सिलगान लगी। कि स्चूला पे चाय कौ पानी चढ़ा दओ। चाय को पानी नप्प के दो कप हतो। इत्तो करके बिट्टो ऐंना के आगूं जा ठाड़ी भई। ऐंना में अपनी सकल देख के सोचन लगी के जो का हम तो पगलूं घाई दिखा रए हैं। झोंथरा से बार, उन्ना-लत्ता खों ठिकानो नइयां, जो कोनऊ देखहै सो का सोचहे? फेर, कछु सोच के बिट्टो ऊंसई की ऊंसई रही आई। ऊने न तो बारन में कंघा फिराओ औ न उन्ना-लत्ता बदरे। बाकी ऊने भुसा को गट्ठा पे से खैंच के ऊ तरफ गिरा दओ। जासें के उमेद को भुसा ने दिखा परे उर वो जा समझे के भुसा बढ़ा गओ है।

चाय को पानी खदबदान लगो। पतीला को ढंकना उचकन लगो। बिट्टो ने देखो उर कछु सोचे बिगैर ढंकना नंगी उंगरिया से उठा लओ। ढंकना तपो धरो हतो। ऊकी उंगरियां जर गईं। उबरत भये पानी में चा-पत्ती, उर सक्कर डारत भई बिट्टो ने सोची कै कुल्ल देर हो गई, उमेद अब लौं नईं आओ? कहूं ऐसो तो नईं के सुखारन बऊ उमेद को इते भेजबे खों भूल गईं होएं। उबरत भई चाय में बिट्टो ने दूध सोई डार दओ। ऊको जी डरान लगो के कहूं उमेद न आओ तो?

गइया फिर रमानी। बिट्टो को लगो के उमेद आ गओ का? पै सांकर नईं खटकी, अकेली गइया रमात रही। बिट्टो ने चूले पे से चाय को पतीला उतारो उर नेचें खों धर दओ। वा उठी उर दुआरे लो बढ़ी। किवरियां खोल के बाहरे झांको, कोनऊ न दिखानो। तभई मरियल सो एक कुत्ता घुस आओ उर गइया के ऐंगर मंडरान लगो। एक तो भूकी ऊ पे जे कुत्ता, गइया सींग मारबे खों दौर परी। बिट्टो ने कुत्ता खों भगाओ उर गइया को पुचकारन लगी। गइया जे जाने सोई भिन्नात दिखा रई हती के बिट्टो ने ऊको खाबे के लाने अब लों भुसा-खली काए नईं दई?

बिट्टो ने किवरियां लटकाईं उर भीतरे खों बढ़ी। अब लों ऊको पक्को हो गओ के सुखारन बऊ ने उमेद से कछु नईं कई, नईं तो भला ऐसो कभऊँ हो सकत है के उमेद खों बिट्टो की खबर दई जाए उर उमेद नईं आए? उमेद तो बिट्टो के ऐंगर आबे खों तरपत है।

इते पतीला में डरी-डरी चाय जुड़ा गई हती। उते उमेद को कहूं अतो-पतो न हतो। बिट्टो सोचन लगी के जो उमेद अबई आ

जाए तो ऊखों अबई सबरो खोर–खार के कै दे।

अखीर बिट्टो को कछु न कछु तो हो के रैहे....... चाये देवसर के इते जाने परहे, चाये छोर–छुट्टी होए। बाकी छोर–छुट्टी होन की गुंजाइस जांदा दिखा रई। एक बेरा जो छोर–छुट्टी हो जाए तो दूसरो ब्याओ होवो मुसकल होत है। पै बिट्टो को कोनऊ ओर के संगे ब्याव करनेई नइयां, ऊ के लाने तो उमेद अबे लों क्वारों बैठो है। उमेद सोई बिट्टो की छोर–छुट्टी के लाने हेरत बैठो हुइए, नई तो उमेद खों लरकियन की कोनऊ कमी है? बिट्टो सोई अपने सासरे में लरत फिरी उमेद के लाने।

'कोऊ ओर खों चाहत हो का?' देवसर ने पूछी रई।

'हओ!' बिट्टो ने सोई कै दई रई।

'काए, कोन खों?' देवसर जरत–फुंकत सो बोलो।

'कोऊ आए, काए बताएं? बाकी तुमसे साजो आए!' बिट्टो इतरात भई बोली हती।

ई के आगूं सासरे के सबई के सबई जने आंखें दिखान लगे। का सास, का ससुर, का जेठ–जिठानी, सबई बिट्टो खों नांव धरन लगे। बिट्टो खों जे बात न पोसानी। अखीर, ऊको देवसर ने सोई अपने नैन–मटक्का के मुतकी किसां सुनाई रहीं। बिट्टो उर उमेद को तो ऐसो कै मनई मन को नेम–परेम रहो, इते तो देवसर खेलत–खात रओ। खूबई रंगेरलियां करीं ऊने उर जा बात कोनऊं से छुपी बी नई रई। पै मरदन की जात... कछु कर लेय का फरक परत है? मरदन के लाने सौ खून माफ उर औरतन के लाने सोचबो बी गुनांय। बिट्टो को जी फिर के उमेद के लाने हुमसन लगो। बिट्टो जे सोचन लगी के देवसर उर ऊ की छोर–छुट्टी हो जाए तो अच्छी हू हे।

ठुकत–पिटत भई ऊने कछु दिनां सासरे में और बिता दये। साउन को मइना आओ सो मायके भिजा दओ गऔ। बिट्टो मायके खों आई सो मायके की हो के रै गई, कभऊँ सासरे को ऊने नांव न लओ। सासरे से सोई खबर आ गई के बिट्टों खों कभऊँ सासरे न भेजियो। ऊके लाने अब इते जगा नइयां। मइना पे मईना निकर गए। बात बनती नई दिखानी' सो बऊ–दद्दा को जी कुलबुलानों। काए से कै उन औरन ने कछु कसर न उठा रखी है। कक्काजू के कहबे पे आज बे दोई जने जेई लाने ऊके सासरे खों गए हैं। बिट्टो जानत्ती कै कछु बात न बनहै। देवंसर खों अब ऊके संगे रैबो नै पुसेहे। वा सोई देवसर के संगे नई रैबो चात आए। देवसर ने बेसरमाई में कछु तो कसर नई राखी।

'काए, वा तुमाओ मंजनूं तुमें सोई ऐसई गरे लगात तो... वा तुमाए संगे ऐसई.....।' देवसर ने ऊसे मुतकी बेर पूछी रही, चाये बिट्टो ने लाख कसमें खाईं। देवसर जे मानतई नई हतो के ऊके संगे ऊके 'मंजनूं' ने कभऊं कछु करोई नईयां।

गइया फिर रमान लगी। बिट्टो मन मसोस के उठ परी। ऊने पांछे से भुसा को छोटो सो गट्टा उठाओ उर गइया के आंगू डार दओ। गइया ने भुसा खों सूंघों उर बिट्टो को हेरन लगी। बिट्टो ने गुण्ड भरो पानी हौदी में कुड़ेर दओ। फिर बारे से बाहरे ताकन लगी। जो लो गइया भुसा खान लगी।

बिट्टो को सोई भूक लग आई रही। भुनसारे से अबे लों ऊने मों में एक दानों बी नई दओ रऔ। भुनसारे ऊने दद्दा–बऊ के लाने पराठां सेंक दये रए। तभऊं ऊको सोई पराठां खाबे को जी करो हतो। पै ऊने जा सोच के नई खाओ के बऊ अबई बड़बड़ान लगहे, 'तोरे लाने हमोंरे नाएं'मायं दौरत–दौरत थकाय जा रये उर तोय पराठां ठूंसबे की परी है!... नासमिटी... ठठरी की बंदी...!'

बऊ की जे बातें सुन के ऊके जी में आततो के बऊ से कै देवें के, 'तुमई ओरें मोय ऊ नरक में भेजन चात हो, जेई लाने नायं–मायं दौरत फिरत हो, कौन ने कई जे सब करबे के लाने!' मनो ऊने ऐसी नई कई पै ऊके जी में जे मुतकी बेर आओ के इन ओरन खों उमेद काय नई दिखात? उमेद सोई अब सहर में रैत है। अच्छो कमात–खात है। इन ओरन ने कभऊं नई सोची उमेद के संगे ऊको ब्याओ कराबे के लाने, कोन किसम के मानुस आएं जे दद्दा–बऊ?

बिट्टो फिर से चाय गरम करन लगी। भुनसारे को पराठों निकार लओ। बिट्टो ने चाय के संगे पराठां गुटक लओ। चाय इठैली लगी। मों इठैलो–इठैलो सो हो आओ, निबौरी घाई।

होत–होत, संझा बेरा हो आई। बिट्टो ने दिया–बत्ती करी सो ठाकुर जी को आलो जगमगान लगो। दद्दा–बऊ के आन की बेरा हो चली रही। बिट्टो ने गइया खों सांझा की बिरियां की खली–भुसा धर दई। चूले में लकरियां डारीं उर अदन चढ़ा दौ। तभई बाहरे दद्दा कोऊ के संगे बोलत भए सुना परे।

'आओ बेटा!बाहरे काय ठैर गए? भीतरे कढ़ आओ!' दद्दा संगवारे खों भीतरे बुलात भए बोले। बिट्टो ने झिरी से झांको, उमेद हतो। जी की राह देखत–देखत पूरो दिन कढ़ गओ, वा उमेद अब जा के आओ, उर वा बी दद्दा–बऊ के संगे। बिट्टो मनई मन कुढ़न लगी।

'काए दद्दा। सो अब सो सबई ठीक हो जेहे, काय से के औरें मानई गए कहाने।' उमेद पूछन लगो।

'हऔ बेटा! हमें सोई कुछ आसा सी नई रै गई हती, वातो कक्का जू के कैबो से उन औरन ने कान दओ है ... मोरी कई कोआ सुन रओ हतो?' दद्दा खुसी जतात भए बोले। दद्दा की कई सुन के बिट्टो को जी धक्क सें रै गओ। जो का हो गओ? तो, देवसर मान गओ? जो केसे हो सकत है? दद्दा ने कछु और तो नई कई के ऊनई कछु ओर सुन लओ?

'बऊ!' बिट्टो ने बऊ से कछु पूछबे के लाने मों खोलो।

'हऔ बिट्टो! उन ओरन ने मान लओ के तोरो कोनऊ दोस

नईं हतो। वा तो कहा – सुनी में तोसे कै आओ रहो... नईं तो तुमाओ कोनऊ के संगे कोऊ चक्कर नइयां।' बऊ लाड़ करत भई बोलीं।

'सांची बऊ?'

'हऔ तो! जो जरूर आए के बे औरें तुमें लिबाबे के लाने इते न आहें, खुदई जाने परहे... दद्दा तुमें पौंचाबे खों जेहें।

'कबे जाने परहे?' बिट्टो को जी मुरकन लगो।

'काल... भुनसारे वारी गाड़ी पकरने परहे। कक्का जू सोई जेई चात हैं के अब देर न करो चइए' बऊ ने कई। बिट्टो कछु न बोली। उते उमेद दद्दा के संगे बतकाव कर रओ हतो। कछु सोचत भई बिट्टो पांछू के दोरे से निकल के गइया के आंगू जा ठाड़ी भई।

'दद्दा! इते नेंचे भुसा बढ़ा गओ है! छप्पर के ऊपरे से निकारने परहे... तनक अइयो!' जे जानत भई के दद्दा के सो ऊंसई गोड़े पिरा रये हुइएं उर बे न आहें, बिट्टो पुकारत भई बोली।

'ठेरौ! दद्दा खों बैठन देओ... हम निकार देत हैं!' कहत भओ उमेद बाहर आ गओ।

'चढ़बे को काम नइयां... ऐसई निकर जेहे, जे बांस से उचका लेओ।' बिट्टो ने उमेद खां लम्बो सो बांस पकरा दओ। उमेद ने बांस पकरो उर भुसा को गट्ठा निकारबे की जुगत करन लगो।

'उमेद!' बिट्टो फुसफुसात भई बोली, 'काए, अबे लो का रए हते? दुपारी को काए नईं आए?'

'ऊसई! कछु काम लग गओ रहो।'

'काम लग गओ रहो? हऔ, इत्तो काम रहो के तुमें इते आबे को सोई टेम नईं रओ?'' बिट्टो बमकत भई बोली।

'अब का है के...!'' उमेद अटकत भओ नांय–मांय हेरन लगो।

'काय? चुप काए हो गए? जे काए नईं कहत हो के मोय से मिलबो नईं चात हो!' बिट्टो ने तानो मारो।

'जो चाये सो मान लेओ।' उमेद ऊंसई बोलो।

'का? जे का कै रए?' बिट्टो सनाका सो खा के रै गई।

'अब ऐसो आए के दद्दा–बऊ सो भुनसारे कढ़ गए रहे उर घरे तुम अकेरी हतीं, सो इते आबो हमने ठीक नईं समझो।' उमेद आवाज नेची करत भओ बोलो।

'अकेरी हती? ई को का मतलब?' काए पैला कभऊँ मोसे अकेरे में मिलबे खों नईं आए का?'

'तब की बात और हती!'

'सो काए, अब का हो गओ?'

'ऐसो आए के तुमाए सासरे वाले ऊसई तुमाओ नांव धर गए आएं। ऊपे हमाए कारन तुमें कछु कहो जाए सो हमें बुरौ लगहे. हम जे नईं चात आएं के तुमें हमाए संगे बदनाम करो जाए उर कोनऊ जे सोचे के जो कछु देवसर ने कई आए, वा अब सांची रई।' उमेद समझात भओ बोलो।

उमेद जा सोच के नईं आओ हुइए ऐसो बिट्टो ने कभऊँ नईं सोची हती। ऊको भौत बुरौ लगो। जेई उमेद आए, जी के लाने ऊने सासरे में का–का नईं सहो... मार लों खात रई। जे उमेद मोरे संगे अपनो नांव जोड़बे से डरा रओ?

जे कैसो मरद आए? बिट्टो को जी खट्टो हो गओ।

'बिट्टो!' उमेद ने कछु कै बे के लाने अपनो मां खोलो पै बिट्टो दौर के भीतरे खों कढ़ गई।

चौके में दद्दा–बऊ कछु कै–सुन रए हते।

'बिट्टो से पूछी? वा जाबे के लाने का कै रई? जाहे के नईं?' दद्दा बऊ से पूछ रए हते।

'कछु बोली तो नइयां! बाकी ऊको बता दओ है।' बऊ बोलीं।

'फिर के पूंछ देखो! भुनसारे निकरने परहे।' दद्दा ने बऊ से कई।

'हओ! बुलात हैं...' कहत–कहत बऊ ठैर गईं, बिट्टो उतई आन के ठाड़ी हो गई हती।

'मोय सासरे जाने!' बिट्टो ने कै दओ।

'मोरी गइया कैसी बिटिया! ऊंसई कहत रहत आएं सब जने...' बऊ को जी सो भर आऔ।

बिट्टो ने बऊ से उर कछु नईं कही। वा मनई मन सोचन लगी के हऔ, औरतन खों गइया घांई सूदो रऔ चइये उर मरदन खों निबौरी घाई! के ऊपरे से देखत के साजे उर भीतरे करएं–करएं चाये देवसर होंए चाये उमेद!

–एम/१११, शांति विहार, रजाखेड़ी,
सागर ४७०००४ म.प्र.

□

दो फागें

– एन.डी. सोनी

फेरत पींठ माव कौ मइना, मनुआं करत कहीना।
लगत बसंत, बैर बैरन भई, मन में नइयाँ चैना।
मन के रंग भरे फूलन में, भोंरा बन गये नैना।
मन उमंग सें उपजीं तितली, कोयल मन के बैना।

मो मन रूप बसंत धरो है, गलन–गलन बगरो है।
लगत उमंगन के झुमका नें, फूलन रंग भरो है।
मादक सांस करोंदी ले गई, सब मदहोश करो है।
प्रेम पगो सब रस हिरदे कौ, महुअन में बगरो है।

– राजमहल के पास, टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देल राजाओं के यशकीर्ति विषयक छंद

- उदय शंकर दुबे

बुन्देलों का इतिहास शौर्य, पराक्रम एवं आत्मबलिदान का इतिहास है। विन्ध्यवासिनी देवी के आशीर्वचन से विजयश्री पाने वाले हेमकरन (वीर पंचम) और उनके वंशजों ने जिस भू–खण्ड पर शासन किया उसे बुन्देलखण्ड का अभिधान दिया गया है। लगभग सात सौ वर्ष तक बुन्देलों का शासन इस भू–भाग पर बना रहा। इस वंश में एक से एक पराक्रमी वीर पैदा हुये जिन्होंने अनवरत संघर्ष कर अपनी स्वतंत्रता को बनाये रखा। उनकी वीरता, दानशीलता तथा जनहित के लिये किये गये कार्यों का कवियों ने समय–समय पर वर्णन कर उनकी कीर्ति को चिरस्थायी बना दिया है।

बुन्देल राजाओं की यश:कीर्ति विषयक छंद प्रस्तुत करने के पूर्व बुन्देलों की प्राप्त वंशावलियों की संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है। बुन्देले अपने को सूर्यवंशी मानते हैं और अयोध्या को अपना मूल स्थान। सभी वंशावलियों में उनको सूर्यवंशी माना गया है। यद्यपि वाशावलियों में राजाओं का नाम और उनका क्रम कहीं–कहीं अलग अलग मिलता है। उदाहरण के लिये डॉ. राम नारायण शर्मा द्वारा लिखित ''ओरछा राज–वंश का इतिहास''[1] ग्रंथ में भसनेह ग्राम के ठाकुर बच्चू राजा के संग्रह में प्राप्त बुन्देलों की वंशावली और पद्माकर भट्ट के पौत्र गदाधर भट्ट द्वारा विजय ब्रज विलास[2] ग्रंथ में दी गई वंशावली में पर्याप्त अंतर मिलता है। गदाधर भट्ट दतिया के राजा विजय बहादुर के दरबार में थे। संवत् १९१४ वि. में उन्होंने विजय ब्रज विलास नामक ग्रंथ की रचना की थी।

भसनेह की वंशावली[3] में गहरदेव को काशी आने का उल्लेख मिलता है जबकि गदाधर भट्ट ने लिखा है कि रामदेव अयोध्या से काशी आये ओर काशिकाधिराज कहलाये। गदाधर भट्ट द्वारा लिखित विस्तृत वंशावली का कुछ अंश विचारार्थ हम यहां दे रहे हैं। अयोध्या के राजा सुमित्र के पूर्व राजाओं को छोड़कर सुमित्र से ही प्रारंभ वंशावली इस प्रकार है –

पद्धरी – छुद्रक महीय ता कनक लेख।
नरनाथ सुरथ ता तनुज देख।
भूपति सुमित्र ता सुभ चरित्र।
इक्ष्वाकु वंत यह आती पविच।।

–विजय व्रजविलास, चतुर्थ सर्ग छंद १३

सुमित्र के बाद अयोध्या के राजा प्रहलाद देव हुये –

छप्पय – अवधिपुरी मति पाल भये प्रहलाद देव वर।
परमभक्त प्रहलाद सत्यव्रत धर्म धुरंधर।
करत प्रजा प्रतिपाल नीति विधि सौ बहु भोतन।
रक्षत लक्ष प्रतक्ष देव द्विज धेनु सभा तिन।
जज्ञेस पुरुष बहु जग्य रचि किय प्रसन्न पूरनि सबनि।
खंडिय विपक्ष दंडिय दुवन मंडिय जस अतुलित अवनि।।

दोहा – श्री भूपति प्रहलाद कै सुत हमीर दे देव।
भये वीर विक्रम अतुल करत सकल नृप सेव।।

चामर – हमीर देव कै महीप बुद्ध देव जानियै।
सुधीर देवता महान महेन्द्र देव मांनियै।
तनुज वीर रामदेव तासु धीर लेखिये।
सु छोड़ि औधि कासिकाधिराज देखिये।

–विजय ब्रज विलास, पंचम सर्ग, छ. ३–५

महीप रामदेव के अनंत देव वीर है,
त्रिदेव देवता गनौ गुविंददेव धीर है।
नृपाल लाल देव ता तनुज दोय जानिये।
सुभार्त्तसाह आसकर्न कर्न से प्रमांनियै।
सुवीर साम्लदेव कै अभै करन्न काम के।
सु जैतकर्न ना तनुज देवदास नाम के।
भये महीप ता कुमार पंच पंच पंड से।
रहे प्रताप फैल ता प्रचंड मारतंड से।।

सोरठा – रामसिंह महिपाल मोहनसिंघ सु मान सिंघ।
दान सिंह जस भाल हेम करन पंचम विदित।।

– विजय ब्रज विलास, पंचम वर्ग छं. ६–८

गदाधर भट्ट ने सुमित्र के पूर्व के राजाओं की वंशावली पुराणों के आधार पर प्रस्तुत की है। सुमित्र के बाद जितने राजाओं का नाम दिया है उसका भी कोई न कोई आधार अवश्य रहा होगा गदाधर भट्ट के अनुसार जैतकर्ण का पुत्र दिवोदास (देवदास) हुआ। उसके पांच पुत्रों में से पांचवां हेमकरण या जो पंचम के नाम से विख्यात हुआ। ऐसा भी कहा जाता है कि देवदास (दिवोदास) हरिभिद्र के नाम से प्रसिद्ध था। उसके पुत्र हेमकरण से बुंदेलों का इतिहास प्रारंभ होता है। गदाधर भट्ट ने हेमकरन का शासन काल संवत् १२२८ वि. सन् ११७१ ई. दिया है –

दोहा –हेमकरन पंचम विदित साउन दसमी सेत।
८ २ २ १
वसु कर भुज ससि सरत मैं रतज करत जस खेल।।

जबकि इतिहास ग्रंथों में हेमकरन का समय संवत् ११०५ (सन् १०४८ ई.) से लेकर संवत् ११२८ (सन् १०७१ ई.) तक मिलता है[4] इस संवत् को मानने पर यह प्रश्न उठता है कि क्या हेमकरन चन्देल राजा परमाल के बहुत पहले उस क्षेत्र का राजा बन

गया था। या वह चंदेलों का करद था। उस समय इस क्षेत्र पर कीर्तिवर्मा जैसे चंदेल राजा का शासन था। हेमकरन के शासन काल में अवश्य कहीं गड़बड़ है। पर्याप्त साक्ष्य के अभाव में कुछ निश्चित नहीं किया जा सकता।

यहाँ पर हम बुन्देल राजाओं के आश्रित कवियों द्वारा समय-समय पर लिखे गये छंदों को प्रस्तुत कर रहे हैं। इन छंदों में किसी में कवि का नाम मिलता है तो किसी में नहीं। यह अवश्य है कि इन छंदों में बुन्देल राजाओं की वीरता और उनकी कीर्ति का वर्णन मिलता है। ये छंद ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हैं। प्रस्तुत लेख में हम राजा वीरभद्र से लेकर मधुकर साहि तक ज्ञात अज्ञात कवियों के छंदों को दे रहे हैं क्योंकि उनके बाद के राजाओं के विषय में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है।

१. महाराज वीरभद्र – वीरभद्र का युद्ध का वर्णन

छूटल निसान के फरारा अत्र धारा बीच,
गैयर तरल तेज मारू धन गाजै तै।
चलत चमू के भार भै करि भुयंगम के से .
कर सर सयात धूर व्यौम रवि छाजै तै।
भारी भट जोटदार छोड़ि क़िले कोटन कौ
वैरी गन पूछत बचै जू कहा भाजै तै।
वीरन समेत वीरभ्रद भद्रकाली सम,
निभ्रक नचै जू रनवीर भद्र साजै तै।।

२. महाराज वीर पंचम (हेमकरन) – कवि हरिवंश ने वीर पंचम द्वारा दिल्ली के बादशाह के साथ युद्ध का वर्णन किया है–

दिल्ली कौ साहि भागौ तखत पातिसाही छोडि,
अटक उतर गयौ पाइ पर पीर की।
साहि आगै साति ठाडो कपत डरन ताके,
दोइन भगन करौ सिंध पैले तीर के।
कवि हरिबंस सुन राक्षस डगन लागे
भगन लागे नौका तमाम साडे नीर के।
कंपा भभीषन यारो झंपा सौ परत देखौ,
संकापुर लंकाभई ड़ंका सुनि वीर की।।

३. महाराज कर्न – किसी अज्ञात कवि ने महाराज कर्न की प्रभुता का वर्णन किया है –

जय कौ अजय पाल दीपति दिलीप कैसी,
रघु की रहनि पछि पूरन सरन की।
संगर सगर हू सौ भासनि भगीरथ की,
प्रभुता पुनीत नीत नागर नरन की।
प्रथ सौ प्रतापी परमारथ कौ पारथ सौ,
पंचम प्रचंड पान लाज है घरन की।
करन करी ती और कर न सकत कोऊ,
करन करै को जैसी करनी करन की।।

४. महाराज अर्जुनपाल – प्राप्त छंद में अर्जुनपाल की वीरता का वर्णन है। इस छंद में अंग्रेजों और फ्रांसिसियों के किले का उल्लेख है जिससे ज्ञात होता है कि यह छंद उन्नीसवीं शताब्दी के किसी कवि ने लिखा है –

सैयद सपूत सेष मुगल पठान लयै,
संग सहजादौ जौम संगर की सौ गुनी।
फरासीस गोल अगरेजन के कोट बधे,
तिनिमै गरूर नूर साहिब हतौ गुनी।
हिंद हदवारे नृप छोड़ि प्रन भागे डर,
भये रद साहस पटैल पांन औगुनी।
अर्जुन समान गही पहुमी पगनि जानै,
अर्जुन नरेस करी अर्जुन तै चौगुनी।।

५. महाराज सोहनपाल – प्राप्त छंद में सोहनपाल द्वारा गढ़कुंडार पर आधिपत्य करने का वर्णन है –

वास महौनी कियोमन मोद सौ बंब सुतौ पर भुंमि ब
खंगनि खेत खगार हनै जग वैरिनि की वर वांन लजा है।
पंचम धर्म धरा पर थापि अधर्मिन की लखि लीक भजी है।
साहन लै पति साहिन कौ नृप साहनपाल कुंडार सजी है।

६. महाराज सहजइंद्र (सहजेन्द्र) – सहजेन्द्र की वीरता और प्रजावत्सलता का वर्णन करते हुये कवि (अज्ञात) ने लिखा है –

जाकी छत्र छाती पाइ आनंद प्रजा को होत,
कोक जौ असोक मारतंड के उदोत सौ।
रोवै अरि अंगना न खोवै सोक संका,
उर जोवै पति आनन न सोवै कहू ओत सौ।
बाजत नगारे से न गाजत गयंदन के,
गहै को क्रवांन राउ पंचम के गोत सौ।
साजत सहज इंद्र वृंद वीर वैरिन के,
मंद होत जैसे अरिवृंद चंद जोत सौ।।

७. महाराज नौनिक देव – किसी कवि ने नौनिक देव की वीरता का बखान करते हुये लिखा है –

दिस दक्खिन उत्तर पूरब पच्छिम वैरिन के घर अैल परै
लखि सेस महेस सुरेस कपै कहू दौरि न लोकनि रार करै
गिध्धिन मोद भरै घन आनंद जबहि नृप पाइरे पाउ धरै
गढ़ देत किवार भभीछन संकत नौनक देव न आइ लरै।।

८. महाराज प्रथीराज – प्राप्त छंद में पृथ्वीराज की वीरता का वर्णन है–ठोक भुजदंड भयौ ठाढ़ौ नौनिक दे नंद,

अैच गजदंत सुंडा डरे भूप फरकै।
श्रोनिध पनारे बहे खेलत अखारे भैरो,
चौचन सौ मुंड गोडै गीद धीर धरकै।
हारौ जौनु कैत भागौ घोसिला जुझार तासौ,
गैल गोट मारौ मल्ल कैयो दाउ करकै।

डटहै न प्रथीराज पंचम प्रचंड यारौ,
सुरपति भागै सबु साहन गज भरकै।।

९. रामसिंह – पृथ्वीराज की ही भाँति रामसिंह की वीरता का वर्णन मिलता है –

केंधौं छीर सागर की महिमा मिरजाद छोडी
केंधौं बलिन्द्र महाभारतु मचायो है।
कंपै मेंहपाल देस देसन के सुरग पताल
अंधकाल सम छायो है।
रामसिंह वर सौ प्रलंकर प्रलै की धार,
हा हा कार देवनर किन्नर सुनायो है।
नरवदा बचायौ मैं खांडती पुरी कौ,
जैसै ब्रजराज ब्रज बूड़त बचायौ है।।

१०. राईसैन – रामसिंह के बाद कुंडार की गद्दी पर रायसेन (राईसैन) आसीन हुआ था। यह भी बहुत शक्तिशाली था –

छोड़ि दिये देस कोऊ पेस दै नरेस सब
चेरस को उडैया अमरेस हू न तिनकी।
जेर करै सूबा वर वीर हेरि सेगर मैं,
सेरनि के सामै समसेर बहै किनकी।
तरनी समान डगै धरनी नगारे होत
करनी न पावै गनि गरिमा कविन की।
सेन के सजै तै महाराजा रन राइसैन,
सत्रन के रैन होति रैनि होत दिन की।

११. रामचंद्र – यह राय सैन का पुत्र था। यह कवि पंडितों का का आश्रयदाता था। कवि प्रेम निधि ने रामचंद्र की बहुत प्रशंसा की है–

दुजनि पुरान दये कविनि गुनान उक्त,
धन संजुग्त महा जग जस कीबे कौ,
कामिनि को कोक दयौ सूरन कौ सुरताई,
छत्रसस्त्र दीने पति वैरिनि की लीबे कौ।
करन के पीछे कुम्हिलात जांनी प्रेमनिधि,
कीरति की बेलि बई चारू जुग जीबे कौ।
राइ सैन नंद महाराजा राजा रामचंद,
कलपतरोवर सौ दान दिन दीबे कौ।।

१२. महाराज मेदनीमल – प्राप्त छंद मेदनीमल की वीरता का वर्णन है –

पंचम प्रचंड अंत मलमेदनी के चडै,
मेदनी डगी है भूम भैरो किलकंत है।
बाज की झपेटहू लौ बाग लै चपेटे बाज
वाहन कृवांन वांन जोधा बलवंत है।
मारे रन तुरक पनारे बहे लाल–लाल
भारे भट भीम से विचारे जिय जंत है।
वीर कुल वारे लै पवारे खग्ग श्रोनित सौ,
विरचि अखादे में उखरे गजदंत है।।

१३. राजा अर्जुनदेव – यह भी मेदनीमल के समान वीर योद्धा था–

दान कृपान प्रवान समोदत भूमि चहू दिस मंगल मंडे।
दीन करे दिगपाल दुनी पर छीनि वजीरन के रन झंडे।
खग्गनि जीति अजीत नरेसनि दंड लै देस अंदडनि छंडे।
अर्जुन सो नृप अर्जुन देव अदेवन के दल दीह विहंडे।।

१४. राजा मलखान – अर्जुनदेव के बाद गढ़कुंडार की गद्दी पर उसका पुत्र मलखान आसीन हुआ। यह भी रण बांकुरा था –

प्रगट पुनीत प्राची दिपत प्रताप पूरौ,
समता न जानै सुर संगर के ठान की।
पछिम छिपत छत्रधारी छितपाल,
छपानाथ ज्यौं विलोके गति ग्रीषम के भानु की।
दै करि दरेरे दल दखिन दवाई दये,
मानत है संक सुर उत्तर कृपाल की।
वीर कुल वांन वारी सकल दिसांन भरी,
खांन सुलतानन पै आंन मलखान की।।

१५. राजा रुद्रप्रताप – रुद्रप्रताप (प्रतापरुद्र) एक शक्तिशाली राजा था। इसने मुस्लिम बादशाहों से भी युद्ध किया था। इसने गढ़कुंडार को छोड़कर ओरछा को अपनी राजधानी बनाया –

प्रगट रुद्र परताप तासु परताप रुद्र सम।
क्रुद्ध विरुत्त समर अमर संकत सु सेस भ्रम।।
राज वर्ष इकतीस सार भाडौ गढ़ किन्नव।
बहुरि औडछे नग्र आइ अवनी सुख दिन्नव।
पुर वर्न धर्म सत कर्म थापि धवल धाम सुन्दर वगर।
जनु प्रथम अकस करिकै नृपति दुतिय रचिव कासी नगर।।

हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत–कवियों ने भी प्रताप रुद्र के कार्यों की प्रशंसा की है।

१६. महाराज चांद पहार (भारतीयचंद) – प्रतापरुद्र के बाद भारतीचंद ओरछा की गद्दी पर बैठे। भारतीचंद उदार प्रकृति के थे–

संपति साथ विपत्ति संघातीय आधै अधै दुख सुख बटैया।
ऊनी परे तहां दूनी करै हठ राजा हो राव हो जुध्ध जितैया।
अंगवै एक अनेकन कौ उमराव अमीरन के मुरकैया।
कैसे घटै तह राज की बाजू भुजा जाके चांद पहार सौ मैया

१७. राजा मधुकर साहि – राजा मधुकर साहि के विषय में बहुत से कवियों के छंद मिलते हैं। यहां तक कि नाभादास ने अपने भक्तमाल में राजा मधुकर साहि और उनकी रानी गणेश दे की प्रशंसा की है, कवि गंग ने भी मधुकर साहि की वीरता का बखान किया है।

काबली औ खुरासान के सूर महाजुद्ध लरन्न की गौं।
कवि गंग कहै उतै रुद्र बचा झपटौ मनौ वाज दमार की धौं।
रहे न सके भ्रम भूल रहो सु कढी तरवार लगी ऐसी दौं।

मुगलानि कहैं मीर काहे भगे सो लरे क्यौं न साह मधुकर सौं।।

समय–समय पर कवियों द्वारा बुन्देल राजाओं के विषय में लिखे गये इन छंदों का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन नये तथ्यों को प्रकाशित करने में सक्षम है बुन्देले राजाओं की वंशावलियों में थोड़ा अंतर नाम और समय का मिलता है किन्तु इतना तो निश्चित है कि वीर पंचम (हेमकरन) काशी के राजघराने का था जो अयोध्या से काशी आये थे। इसे दैव संयोग ही कह सकते हैं कि चन्देले और बुन्देले दोनों काशी के राज घरानों से संबंधित थे। कई बुन्देल राजा अपना अंतिम समय काशी में ही बिताये। विस्तारभय से हम कवियों के छंदों पर विशेष टिप्पणी नहीं दे पा रहे हैं। अनुसंधित्सुओं के लिये ये छंद अध्ययन योग्य हैं।

– ग्राम करेरुआ, पो. खमरिया मिर्जापुर – २२१३०६

संदर्भ –

१. द्रष्टव्य – ओरछा राजवंश का इतिहास – लेखक डॉ. राम नारायण शर्मा, प्रकाशक – डॉ. सुशीला शर्मा, रामायण – ६९५/३, सिविल लाइन्स, झांसी उ.प्र.

२. यह ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित है।

३. ओरछा राजवंश का इतिहास पृ. १४

४. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास पृ. ११९, गोरे लाल तिवारी

५. १. इस लेख का आधार दतिया म.प्र. से प्राप्त एक प्राचीन पाण्डुलिपि है जिसमें राजा वीरभद्र से लेकर दतिया के राजा पारीछत से संबंधित छंद संगृहीत हैं। राजा पारीछत का शासन काल संवत् १८५८ वि. से लेकर संवत् १८९६ तक था। अत: यह प्राप्ति इसी कालावधि में किसी समय तैयार की गई होगी।

□

लँगड़ा लयें अंदरा हां कईंयाँ

– आशाराम त्रिपाठी

चइंयाँ मइंयां गोल बटइंयाँ।
राजन के घर कोउ नइयाँ।
उजयारौ एसौ फैलो कै है हर दिया तरें अंदयारौ।
कलई बायरें पुत रई भीतर किचकंदे सें भरो उसारौ।।
खोंपें सांप बरोठें बिच्छू
मंगरें मंगरें लगीं ततईंयाँ।।
घर की बड़मंसई का कयें म्याउर में मूसे लेत कुलाटें।
आन पुरा हां न्यौते दै रये घर के लरका पतरीं चाटें।।
होत भोर सें ऐसौ लग रओ।
पूरब में दिन भओ डुबईंयाँ।।
मैनत कीं आंखें आजीं पिटभरू अमीरी मसमोटू नें।
खालें ऐसी तंगी पसरी लगरये हर त्यौहार बिहूनें।।
मूंड़ कंगूरे मटका रये
हैं नीं के पथरा गट्टापईंयाँ।
मन की मौज मना रई चैंथी में आंखें बुदिया मौ बावै।
पिटत मुनादी न्याय भले की अंदरू पीसै कुत्ता खावै।।
कैसें टूटत गैल कंटीली
लँगड़ा लयें अंदरा हां कईंयाँ।

– एफ–१०८/१२, शिवाजी नगर, भोपाल म.प्र.

संस्मरण –

सरल स्वभाव डॉ. गुप्त

– डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी

पहले डॉ. गुप्ता के प्रति किसी कारण से मेरे मन में कुछ खटास थी। जब मैंने बुन्देली अकादमी द्वारा सन् १९९५ में आयोजित बुन्देली संवाद के बारे में पढ़ा तो उनसे फोन पर, कुछ रूखी भाषा में कहा कि उसमें क्या होगा? कुछ भाषण होंगे कुछ, सम्मान आदि होंगे, बुन्देली के लिए ठोस क्या होगा? बुन्देली पर जबलपुर से लेकर उरई तक में कम से कम आठ दस जगह काम हो रहा है, परन्तु सब अपने यहाँ की बुन्देली को ही बुन्देली का मानक रूप मान रहे हैं। इस तरह बुन्देली कभी प्रतिष्ठित नहीं हो पायेगी। तो उन्होंने मेरी रूखी भाषा का बुरा नहीं माना और छतरपुर में आयोजित दो दिवसीय कार्यक्रम में एक सत्र 'बुन्देली का मानकीकरण' भी रख दिया और मुझे तथा श्री गुण सागर सत्यार्थी को इस विषय पर पेपर पढ़ने के लिए आमंत्रित कर लिया। कोई सार्थक बात कोई कहे तो उनका अहम उसे मानने में कभी आड़े नहीं आता था।

दूसरी घटना है – मैंने 'बुन्देली लोक साहित्य में लोकोक्तियाँ तथा मुहावरे पुस्तक लिखी।' वस्तुत: यह लोकोक्तियों तथा मुहावरों का संकलन संपादन एवं व्याख्या का है। बुन्देली लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं में इनकी क्या स्थिति और महत्व है, इसके लिए भूमिका के रूप में एक थोड़ा लम्बा लेख दिया।

मैंने सोचा छपने के पहले पुस्तक डॉ. गुप्ता को दिखा ली जाये। मैं उनके पास गया तो वे पुस्तक का नाम सुनते ही बोले "इनका नाम तो आपने ऐसा रखा जैसे कोई शोध कार्य हो" मैंने कहा आप इसकी भूमिका पढ़ लीजिए फिर आप जो नाम सुझाएँगे वह रख दूंगा। मैंने उन्हें पढ़कर भूमिका सुनाई तो उन्होंने कहा "नहीं यही सबसे उपयुक्त नाम है। मैं व्याख्या और सम्पादन भी देखना चाहता हूँ।" मैंने पाण्डुलिपि उनके पास छोड़ दी। सोचा कल ले जाऊँगा। श्री सुरेन्द्र शर्मा शिरीष के पुत्र की शादी में मैं गया था। उन्हें भी उनके यहाँ आना था। रात को पाण्डुलिपि लेकर और उसके साथ एक बढ़िया सम्मति पत्र स्वयं लेकर वहीं पहुँचे। जबकि पक्का भोजन करने से उन्हें परहेज था। लड़के को भेजकर भी शादी में शामिल होने की औपचारिकता की पूर्ति कर सकते थे, परन्तु पाण्डुलिपि देने और उस पर मौखिक विस्तृत चर्चा करने वे स्वयं चले आये। चर्चा कल भी हो सकती है। मुझे बहुत संकोच हुआ। वह भी उनके सरल स्वभाव का एक नमूना था।

– पुरानी नजाई, टीकमगढ़ म.प्र.

□

बुन्देली बच्चों के खेल

- डॉ. आर.बी. पटेल 'अनजान'

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में प्राचीन काल से ही खेलकूद प्रतियोगिताओं का आयोजन होता चला आ रहा है चाहे वह ग्रामीण अंचल हो चाहे नगरीय सभी स्थानों पर बच्चे रात में तथा दिन में विभिन्न प्रकार के खेलों में मस्त रहते हैं। वर्तमान समय में दूरदर्शन के कारण बच्चे अब अपने पूर्वजों के खेलों को भूलते जा रहे हैं। बड़े बड़े शहरों में तो अब लोग इनके नाम भी भूल गये हैं। अर्थात अपनी प्राचीन संस्कृति के अंग को विस्मृत करते दिखाई दे रहे हैं। लेकिन ग्रामीण इलाकों में आज भी ये खेल लगन के साथ बच्चों द्वारा भाव विभोर हो खेले जाते हैं जिनका वास्तविक आनन्द इन खेलों में भाग लेकर लिया जा सकता है। बुन्देलखण्ड की ग्रामीण प्रतिभाओं को उजागर करने के उद्देश्य से ही बुन्देली ग्राम बसारी जिला छतरपुर में प्रतिवर्ष बुन्देली उत्सव नामक पर्व का आयोजन बुन्देली विकास संस्थान बसारी में किया जाता है जिसमें तरह तरह के खेलों का प्रदर्शन ग्रामीण कलाकारों द्वारा किया जाता है। यहाँ ग्रामीण बुन्देली बच्चों के कुछ खेलों की विवेचना प्रस्तुत की जा रही है। यथा –

१. **कुश्ती** – प्राचीनकाल से ही बुन्देलखण्डवासी कुश्ती के बड़े शौकीन थे। वे प्रत्येक घर से बड़े बुजुर्ग लोग अपने बच्चों को आपस में कुश्ती लड़ाते थे। कजली पर्व (सावन) में ही लगभग सम्पूर्ण बुन्देलखंड के कोने–कोने में कुश्ती के अखाड़ों का आयोजन किया जाता है जहाँ दूर दराच के पहलवान भी अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करते पहुँचते हैं। इन कुश्तियों में आयोजनकर्ताओं द्वारा इनाम भी रखा जाता है। जीतने वाले पहलवान को यह इनाम की राशि ससम्मान प्रदान की जाती है।

यह खेल छोटे बच्चों से लेकर बड़े बड़े लोगों द्वारा भी खेला जाता है। इस खेल से बच्चों का शारीरिक सौष्ठव सुधरता है तथा चेहरा कांतिवान दिखाई देने लगता है और कार्य करने की क्षमता में अभूतपूर्व वृद्धि होती है।

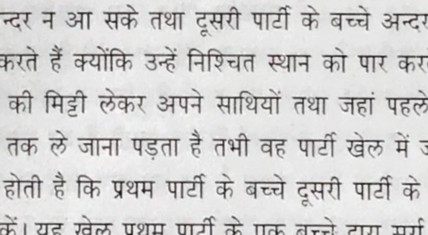
२. **कबड्डी** :– बुन्देली बालकों का यह गरिमापूर्ण खेल है। इस खेल की एक पाली में पांच से दस बच्चे और दूसरी पाली में भी प्रथम पाली के अनुसार बच्चे खड़े हो जाते हैं और खेल की शुरुआत कर देते हैं। दस–बीस अंक पर विजयी घोषित किया जाता है। अधिक अंक हासिल करने वाली पाली के खिलाड़ियों को जीता घोषित किया जाता है तथा दूसरी पाली को हारा मान लिया जाता है। कामकाजी बच्चे या जवान लोग तो रात में कबड्डी का खेल खेलते हैं। यह बालक–बालिकाएं सभी बड़ी चाव के साथ खेलते हैं। बुन्देलखण्ड के ग्रामीण इलाकों में इस खेल में हराने की होड़ा होड़ी लगी रहती है तथा तरह तरह के बुद्धि कौशल का प्रयोग करते हुए एक दूसरी पाली को हराने का प्रयास करते हैं। इन खेलों से आपसी मैत्री भाव बच्चों में जागृत होता है तथा शारीरिक बलिष्टता का भी विकास होता है। कई बार तो इस खेल में खिलाड़ियों के हाथ–पैर तक टूट जाते हैं। किन्तु वे एक दूसरे से वैमनस्य नहीं बनाते बल्कि एक दूसरों के प्रति सहिष्णुता पूर्वक व्यवहार करते हैं।

३. **घोड़ा कबड्डी** – यह खेल भी प्राचीन बुन्देलखण्ड का प्रमुख खेल है जो वर्तमान समय में लुप्त होता जा रहा है। इस खेल में छः से बीस खिलाड़ी तक भाग ले सकते हैं इन खिलाड़ियों को बराबर–बराबर दो भागों में बाँट दिया जाता है जिसमें प्रथम पाली के बच्चे अपने किसी एक साथी को घोड़ा बनाकर पाले से कुछ दूरी पर बैठा देते हैं तथा दूसरी पाली के बच्चे उस घोड़ा को चारों तरफ से घेरकर खड़े हो जाते हैं। तब प्रथम पाली का एक खिलाड़ी कबड्डी बोलता हुआ अपने घोड़ा को छूकर दूसरे पाली के साथियों को दौड़कर मारता है। यही क्रम तब तक चलता है जब तक घोड़ा पाले (निश्चित स्थान) तक नहीं पहुंच जाता है। यदि वह घोड़ा को सुरक्षित निकाल ले जाता है तो वह पाली जीत जाती है यदि नहीं निकाल पाते तो वह पाली हारी घोषित की जाती है और यही क्रम घण्टों चलता रहता है।

४. **सुर्रा** :– यह खेल बड़ा मनोरंजक तथा सतर्कता भरा होता है इसमें आठ खिलाड़ी ही खल सकते हैं। चार–चार खिलाड़ियों की पार्टी बनती है। प्रथम पार्टी वाले चार बच्चे अपने–अपने निश्चित स्थानों पर दूसरी पार्टी के बच्चों को छेंकते हैं कि वे अन्दर न आ सके तथा दूसरी पार्टी के बच्चे अन्दर जाने का प्रयास करते हैं क्योंकि उन्हें निश्चित स्थान को पार करते हुए दूसरी तरफ की मिट्टी लेकर अपने साथियों तथा जहां पहले खड़े होते हैं वहां तक ले जाना पड़ता है तभी वह पार्टी खेल में जीतती है शर्त यह होती है कि प्रथम पार्टी के बच्चे दूसरी पार्टी के बच्चों को छू न सकें। यह खेल प्रथम पार्टी के एक बच्चे द्वारा सुर्रा बोला जाता है तभी दूसरी पार्टी के बच्चे अन्दर जाने का प्रयास करते हैं। यह खेल घण्टों चलता रहता है।

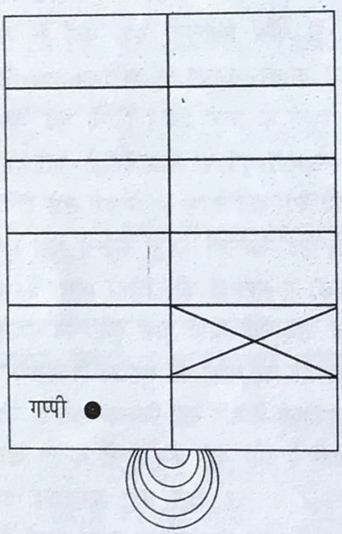
चित्र

मिट्टी

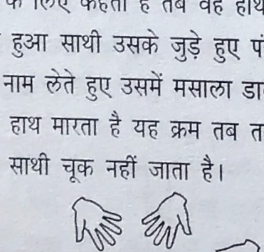


५. **लंगड़ी** – यह खेल बच्चियाँ अधिकतर बड़े चाव के साथ घण्टों खेलती रहती हैं। इस खेल में दो चार–पांच बच्चे एक साथ खेल सकते हैं। इसमें एक बच्चे द्वारा एक पत्थर निश्चित स्थान में डालता है तब वही बच्चा एक पैर ऊपर कर दूसरे पैर से चलता है और पत्थर वाले स्थान पर पैर नहीं रखता जबकि उसके आगे वाले स्थान पर पैर रखकर आगे बढ़ता हुआ पत्थर को उठाकर वापस पूर्व के स्थान पर आता है तब वह दूसरे साथी से कहता है कि ठड्ढा की बैठा। अगर वह कहता है कि ठड्ढ़ा तो उसको पत्थर खड़े होकर पीछे की तरफ फेंकता है जिस स्थान पर वह पत्थर रख जाता है वह राज कहलाता है। तथा वहां पर क्रास का चिन्ह लगा दिया है जिसमें खेलने वाले दूसरे साथी पैर नहीं रखते। इस प्रकार यह निरन्तर चलता रहता है।

साथियों के खड़े होने का स्थान

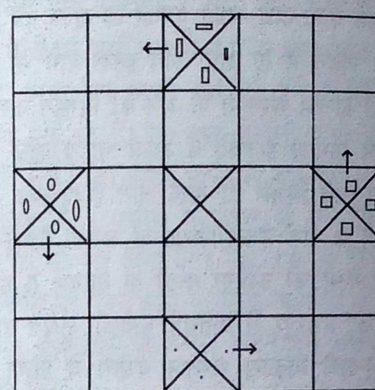


६. **हड़े हप्प** :– यह खेल चार–पाँच बच्चे खेलते हैं। इसमें बच्चे हड़े हप्प–हड़े हप्प बोलते हुए अपने हाथों के पन्जों को हिलाते हुए एक दूसरे के अंक (पांच, दस, पच्चीस आदि) पूंछते हैं जब सभी बच्चे एक दूसरे के अंक जान लेते हैं तब अपने–अपने पंजों को सामने जमीन पर रखते हैं। जिसके मांगे हुए अंक के अनुसार खुली हुई उंगलियां निकल आती हैं वह दूसरे साथी को हाथ फैलाने के लिए कहता है तब वह हाथ जोड़कर आगे बढ़ाता है जो जीता हुआ साथी उसके जुड़े हुए पंजे के ऊपर सब्जी के मसालों का नाम लेते हुए उसमें मसाला डालने का भाव करता है एवं पंजों में हाथ मारता है यह क्रम तब तक चलता है जब तक मारने वाला साथी चूक नहीं जाता है।

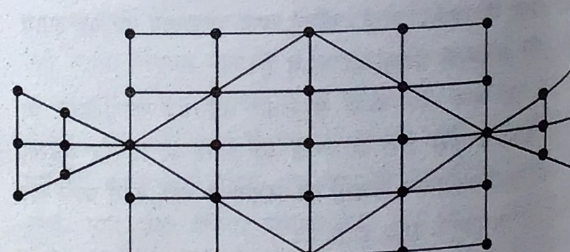


हाथ के पंजे

७. **चंदा पउवा** :– इस खेल में दो से चार बच्चे तक खेल सकते हैं। प्रत्येक बच्चा अपने पहचान की चार गोटें (पत्थर) रखता है और क्रमशः कौड़ी (एक प्रकार के पांसे) जमीन पर फेंकते हैं जितनी कौड़ी खुली पड़ती है उतने खाने पारकर वह अपनी गोट रखता है। ऐसा सभी बच्चे क्रमशः अपने–अपने दाव चलते हैं तथा गोटी चलते समय किसी दूसरे की गोटी यदि बीच में पड़ जाती है तो वह मर जाती है। तथा उसे पुनः उसके पूर्व के स्थान से आगे बढ़ना होता है। यह खेल चौपर के खेल का ही एक छोटा रूप है।



८. **अठारह गोटी** :– इस खेल में दो ही बच्चे खेलते हैं लेकिन यह खेल तत्कालिक बुद्धि एवं सतर्कता पर आधारित होता है। इस खेल में एक खिलाड़ी दूसरे खिलाड़ी की गोटों को मारता है क्योंकि इस खेल में बहुत सावधानी से गोटों को आगे–पीछे या अगल–बगल में रखना होता है। इसमें यदि गोटी के पीछे दूसरी गोटी नहीं लगी होती तो एक खिलाड़ी जो खिलाड़ी सबसे पहले दूसरे खिलाड़ी की अठारह गोटें जीत लेता है वही खेल जीत जाता है तथा निर्धारित दण्ड देना पड़ता है।



९. **आँख मिचौनी** :– इस खेल में पाँच से पन्द्रह बच्चे तक खेल सकते हैं। इसमें एक बच्चे की आंखें कपड़ा से बांध दी जाती है और शेष बच्चे उसके इर्द–गिर्द खड़े हो जाते हैं तब वह बच्चा उन्हें ढूंढ़ने का प्रयास करता है उसकी पकड़ में जो आ जाता है उस बच्चे की आँखें बाँधी जाती है और वह दूसरे बच्चों को पकड़ता है यही क्रम घण्टों चलता रहता है।

१०. **छुवा लुका** :– छुवा का खेल अधिकतर बच्चे चाँदनी रात में खेलते हैं। इसमें एक बच्चा किसी निश्चित स्थान को छूने जाता है तब तक खेलने वाले दूसरे साथी इधर–उधर छिप

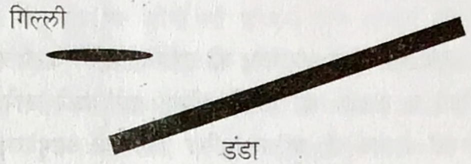
जाते हैं। इसके पश्चात् एक बच्चा छूने के लिये आवाज लगाता है तब वह बच्चा अपने साथियों को ढूढ़ता है जिसको पहले छू लेता है वह फिर उसी प्रकार से दूसरे साथियों को ढूढ़ता है और यह क्रम घण्टों चलता रहता है। इस खेल में शारीरिक व मानसिक मेहनत हो जाती है।

११. मूढ़ थपरिया :– जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि मूढ़ में थप्पर मारना। इस खेल में एक बच्चे की आँखें हाथ से दूसरा बच्चा बन्द कर लेता है तथा दूसरे साथी आँख बन्द वाले बच्चे के सिर पर एक–एक थप्पर मारते हैं। इसके पश्चात् उसे पहले थप्पर मारने वाले साथी का नाम बताना पड़ता है यदि वह बता देता है तो उसकी आँखें बन्द कर सभी साथी थप्पर मारते हैं और यदि नहीं बता पाता तो पुनः आँख बन्द कर सभी साथी थप्पर मारते हैं। इस प्रकार से यह खेल भी काफी समय तक चलता रहता है।

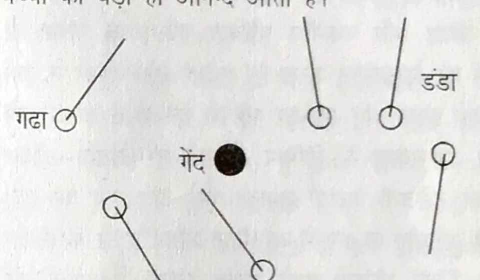
१२. सिलोर डण्डा :– यह खेल अधिकतर लड़के खेलते हैं क्योंकि इसमें कई बार बच्चों को चोटें भी आ जाती हैं। इस खेल में बच्चे किसी बड़े पेड़ की तलाश करते हैं जिसकी डालियाँ जमीन की ओर झुकी हुई होती है उन्हें आसानी से बच्चे नीचे से पकड़कर ऊपर चढ़ सकते हैं। इस खेल की शुरुआत एक डण्डे को कुछ दूर फेंककर किया जाता है जब तक एक साथी उस डण्डे को उठाकर पेड़ के नीचे रखता है तब तक सभी साथी पेड़ के ऊपर चढ़ जाते हैं छूने वाला साथी डण्डा रखकर पेड़ पर चढ़ने का प्रयास करता है कि मैं दूसरे साथी को छू लूँ यदि वह नहीं छू पाता और दूसरा साथी पुनः उस डण्डे को उठाकर दूर फेंक देता है तब वह फिर डण्डे को उठाने जाता है और पुनः पेड़े के नीचे रखता है यह क्रम घण्टों चलता रहता है यह खेल बड़ा ही सतर्कता भरा होता है।

१३. विष–अमृत :– यह खेल छोटे–छोटे बच्चे अधिक खेलते हैं इसमें एक बच्चा दूसरे बच्चों को विष अमृत देता है जिस बच्चे को विष (यानी सिर पर हाथ रखकर विष या अमृत बोलना) दिया जाता है वह बच्चा जमीन पर बैठ जाता है वह तब तक बैठा रहता है जब तक कि उनका दूसरा साथी उसे अमृत नहीं दे देता और अमृत मिलने पर वह दौड़ने लगता है। इस प्रकार से ये बच्चे घण्टों विष–अमृत का रोचक खेल खेलते रहते हैं।

१४. गिल्ली–डण्डा :– यह खेल बच्चे बड़े उत्साह के साथ खेलते हैं इसमें दो से पाँच छः बच्चे एक साथ खेल सकते हैं इसमें एक लकड़ी की गिल्ली होती है तथा एक डण्डा होता है पहले गिल्ली को ऊपर उछालते हैं और डण्डा नीचे से मारते हैं जितने बार गिल्ली में डण्डा टकराता है उतनी बार वह बच्चा गिल्ली में डण्डा मारकर निर्धारित स्थान से दूर हटा देता है तब दाँव देने वाला बच्चा गिल्ली उठाकर रखे हुए डण्डे में मारता है यदि गिल्ली डण्डे में लग जाती है तो दूसरा साथी दांव देता है और यह खेल घण्टों चलता रहता है। आज का क्रिकेट प्राचीन गिल्ली–डण्डा का ही सुखरा हुआ रूप है।



१५. गढ़ा गेंद :– इस खेल में आठ–दस बच्चे तक खेल सकते हैं। इसमें सभी बच्चों के पास एक–एक डण्डा होता है जिससे गेंद को मारते हैं। एक साथ दाँव देने के लिये गेंद को उठाकर गढ़ा (गड्ढा) के पास खड़े बच्चे में मारता है यदि गेंद जिस बच्चे में लग जाती है उसको दांव देना पड़ता है। इस खेल में सभी बच्चे उस गेंद को मार–मार कर दूर भगा देते हैं और अपने साथियों में मारता है। यह क्रम घण्टों चलता रहता है। इस खेल में बच्चों को बड़ा ही आनन्द आता है।



१७. पीपर का पत्ता :–

यह अधिकतर बच्चियाँ खेलती हैं। इसमें खेलने वाले सभी बच्चे घेरा बनाकर बैठ जाते हैं और एक बच्चा कपड़े का गुर्दा (गाँठ लगा कपड़ा) लेकर उन सभी बच्चों के पीछे घूमता हुआ गाता है – पीपर का पत्ता, हरा दुपट्टा, पीछे देखो मानसाई, घोड़ा दिवान साई। यह कहता हुआ किसी बच्चे के पीछे गुर्दा रख देता है यदि वह बच्चा उस गुर्दे को नहीं देख पाता तो घूमने वाला बच्चा पुनः उस गुर्दे को उठाकर उस बच्चे में गुर्दा मारता है जब तक वह अपने स्थान पर घूमकर नहीं बैठ जाता है और इस प्रकार यह खेल काफी लम्बे समय तक चलता रहता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्राचीन बुन्देलखण्ड के बच्चों के अधिकांश खेल लुप्त होते जा रहे हैं जिसके पीछे दूरदर्शन का महत्वपूर्ण योगदान है। क्योंकि आजकल अधिकतर बच्चे दूरदर्शन कार्यक्रमों को देखने में व्यतीत कर रहे हैं और अपनी प्राचीन संस्कृति के प्राचीन खेलों को विस्मृत करते जा रहे हैं। अतः प्राचीन बुन्देली संस्कृति के संरक्षण हेतु ग्रामीण खेलों को प्रोत्साहन देना चाहिए।

– शा.हा. स्कूल बमनौराकलॉ,
जिला छतरपुर म.प्र.

□

बुन्देलखण्ड की लोक कलाएँ

- डॉ. बृजेश कुमार द्विवेदी

बुन्देलखण्ड में जनचित्त को प्रभावित करने वाली स्थानीय विशेषताएँ न केवल वहां के निवासियों द्वारा पहने जाने वाली रंग–बिरंगी पोशाकें हैं, बल्कि विविध प्रकार के आभूषण, चित्र, मूर्ति, नृत्य आदि जिन्दगी की ठेठ सचाई को प्रतिपादित करने वाली कलाएँ सहृदय के चित्त को हमेशा लुभाती रही हैं। कला की सहजता एवं आत्मत्याग की उच्चता से इस क्षेत्र का सौन्दर्य अपने उदात्त स्वरूप में आँखों के सामने आ जाता है और मन इस रूपाभास से बहुत गहरे प्रभावित होता है।

गंगा, बेतवा और चंबल नदियों की परिसीमाओं को छूने वाला यह क्षेत्र आध्यात्म तथा आचरणगत वैशिष्ट्य से सामान्य जन को अनुप्राणित करता है। बुन्देली लोकजीवन में यहां का सांस्कृतिक प्रवाह और स्थानीय परिवेश की गौरव गरिमा से सामान्य जन को अनुप्राणित करता है। बुन्देली लोकजीवन में यहां का सांस्कृतिक प्रवाह और स्थानीय परिवेश की गौरव गणिका को सर्वदा देखा जा सकता है। विभिन्न अवसरों पर जातीय–जीवन की जड़ों को टटोलती कलाएँ अंततः वस्तु और रूप की एक मिली–जुली अंतर्धारा के रूप में आंचलित सौंदर्य प्रकट करती है। लोक कलाओं का सौन्दर्य अपने उदात्त स्वरूप में आँखों को लुभाता है। उत्सव और पर्वों में निहित भावोत्सव की प्रतीति के फलस्वरूप व्यक्त कलात्मकता में जनता की संलग्नता और सांस्कृतिक संपृक्ति निरन्तर उद्घाटित होती है। लोक जीवन और लोककला से यह गहरा जुड़ाव पिछड़ेपन का द्योतक नहीं है। न ही ठहरी हुई जाति विशेष के अधिवास से उकेरी गई किसी लोककला का प्रत्यांकन है। कहना पड़ेगा कि यह कला प्रेम लोकजीवन की ममता से अनुप्राणित भरे–पूरे सांस्कृतिक सौन्दर्य का गतिमान कथावृत्त है।

किंवदंतियों, लोक गाथाओं, लोकस्मृति और पर्वों–त्योहारों के अगोचर सत्य से परिचित कराती कलाकृतियाँ बुन्देली स्वभाव के अनेकयामी प्रेम और सौन्दर्य के रूप का परिचय है, जो सर्वोत्तम से हमें जोड़ती है।

'लोक' की विशेषता है विविधता से एक उदार आंतरिकता। जहाँ आम आदमी में अपनी भाषा, अपने देश–प्रदेश के प्रति एक गहरी आसक्ति तो होती ही है – उसकी लोकश्रयी यानी लोकसंगीत, लोककलाएँ, लोकचित्रांकन, लोकनृत्य आदि के माध्यम से व्यक्त संवेदना में लोकमानस का उल्लास व्यक्त होता है।

विभिन्न अवसरों पर प्रत्येक चित्रकल्प में निर्मित आनन्दमय गहनता स्थानीय रंग को जीवंत करती है। भावनात्मक स्तर पर यह लोककलाएँ एक तरह से उस प्रयोजन की ओर इंगित करती हैं। जो सदियों से क्षेत्रीय ममत्व को संजोए हैं।

वैदिक काल से लेकर पुराण, बौद्ध, जैन, मौर्य, गुप्त, हूण, कल्चुरी तथा चंदेल काल तक बुन्देलखण्ड की रागात्मक कलाओं का प्रभाव मौजूद है। इस अंचल की अनेकवर्णी प्रकृति नदी, पहाड़, तालाब, पेड़ खेत आदि का सौन्दर्य बेहद जीवंत और आकर्षक है। प्रागैतिहासिककालीन चित्रों में तत्कालीन मानव के वास्तविक जीवन और प्राकृतिक सुरम्यता की छाया स्पष्ट होती है। घुमंतू जन–जीवन की प्रामाणिक गाथा का बयान करते आदिम चित्रों में युग जीवन के समूचे परिदृश्य साकार होते हैं। शैल–गुफाओं की छतों, दीवारों और बड़ी–बड़ी शिलाओं पर खनिज रंग उत्कीर्ण चित्र समाज की अनुभूतियों उनके उत्साह और तड़प तथा मिलना–जुलना उसकी गति, काम की तलाश, शिकार आदि को व्यक्त करते हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर जिस असीम आनन्द की अनुभूति आदिमजनों को हुई होगी; जिन दृश्यों, जीव जन्तुओं का आकर्षण गहरे पैठ गया होगा और उपयोगी हुआ उसे आदिम घुमन्तू परिवारों ने आते–जाते प्रस्तरों में उकेरा है। पशुओं में मोर, नीलगाय, बैल, सांभर, हिरण, बाघ, हाँथी आदि के चित्र प्राप्त होते हैं।

देवरा (छतरपुर) नरयावली, आवचन्द (सागर) पांडवप्रपात (पन्ना), मानिकपुर (बांदा), बाघाट (झांसी) आदि बुन्देलखण्ड के पर्वतीय गुफाओं में लोककला के यह प्रमाण मिलते हैं।

मानव की सभ्यता के विकास के साथ भावनाओं संवेदनाओं में निहित लोकमंगल की कामना ने वैदिक और पौराणिक पात्रों की उपासना की। ग्राम्य जन उनकी कृपा तथा करुणा पाने के लिए घरों में दरवाजों और भित्तियों में देवी–देवताओं के चित्र अंकित करने लगे। गजेश और अन्य देवी–देवताओं के चित्र घड़ा लिये सौभाग्यवती नारियों के चित्र, शुचि और शुभ मूल्यों से जुड़ी आस्था को प्रकट करते हैं।

इन देवी–देवताओं और राज–काज से जुड़े आख्यानों का सौन्दर्य बुन्देली लोक संस्कृति का पारंपरित मूल्य बन गया। भित्तिचित्रों ने उल्लिखित गजारोही और अश्वारोही, राजा आदि के चित्र लोकहृदय की परख को जीवंत करते हैं।

प्राचीनकाल से ही लोकमानस में दुर्गा पूजा की प्रमुखता थी। ऐसी धारण थी कि दुर्गा पूजा से पृथ्वी उर्वरा होती है और नए शस्य से भंडार भरता है। बुन्देलखण्ड में दुर्गापूजा का अत्यधिक महत्व है। नवदुर्गा के समय कुँवारी कन्याओं द्वारा चबूतरों पर

'सुअटा' उसके अगल–बगल सूर्य और चन्द्र की रेखाकृति के माध्यम से धरती और नारी दोनों की रक्षा एवं अशुभ पर शुभ शक्ति की विजय की कामना है। बुन्देली लोकमानस ने शरद–ऋतु की हरीतिमा का भी खूब स्वागत किया है। हलछठ अमावस्या (श्रावण की अमावस्या) इसे हरियाली अमावस्या भी कहा जाता है के दिन गेरू अथवा गोबर के द्वारा छठी रख कर वंश और अन्न की वृद्धि के लिए देवी–देवता की आराधना की जाती है। बुन्देलीजनों में बहुत से देवी–देवताओं का सम्बन्ध भय से है। दुःख एवं भय की आशंका से बचने के लिए नागपंचमी के दिन नाग की पूजा की जाती है और दीवाल पर दरबाजे के दोनों ओर गेरू या अन्य स्थानीय रंग से नाग की आकृतियाँ बनाई जाती हैं। स्थल–स्थल पर पंख फैलाए मयूर के चित्रांकन सर्प–भय से अभय की कल्पना का भी परिणाम है, पर्वो–त्योहारों से जुड़े अनेक मानवीय संदर्भों को आत्मसात कर स्थानीय निजता के रंग में रंगे अनेक चित्रों की उद्भावना इस अंचल में हुई है। ये रेखा चित्र गहरे रूप में जातीय वैशिष्ट्य को उद्घाटित करते हैं। दीपावली के पर्व पर अलंकृत विविध चित्र ज्ञान एवं संस्कृति की महत्तम परम्पराओं के आलोक में 'स्थानिकता' को प्रतिबिंबित करते हैं। त्रिदेवों के चित्र, सत्रह पुतरियाँ (आइ दिक्पालों ओर नौ ग्रह के रूप में) हुरसा, बेलन, ककई, ककवा, मोर, तुलसा, घरूआ, स्वस्तिक, गणेश, घैला, करवा, फूल, स्याऊ, शीतलादेवी आदि बहुत से चित्र विभिन्न सन्दर्भों से जुड़े हैं।

लोकपर्वों में प्रस्तुत रंगों के महत्व का सामाजिक पड़ताल करें तो अन्य जातीय स्वरूप भी प्रकट होते हैं। करवाचौथ की पूजा के लिए दीवाल पर गोबर से लीपकर चावल के घोल या रंगों द्वारा बनाया गया 'करवा चौथ' का चित्र दाम्पत्य जीवन में नारी की निर्णायक भूमिका को दर्शाता है। कठिन घड़ियों में नारी का धैर्य और त्याग की कहानी कहती इस पर्व की कला–कृतियाँ उस वास्तविकता का हिस्सा बन जाती हैं जिससे व्यक्ति ममत्व के स्तर पर अपनी अर्थक्ता का अहसास पाता है। प्रकाश स्रोत सूर्य और चन्द्र के चित्रों में मानवीय संवेदना की सचाई निहित होती है। सूर्य, चन्द्र के चित्र तमाम विसंगतियों के बीच सद्भावना, ज्ञान और सत्य के साक्षी बनकर प्रयोजन की सार्थकता को पुष्ट करते हैं।

सूर्य और चन्द्र को लोकगीतों में साक्षी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उदाहणार्थ गाय सिंह से बचनबद्ध होकर बछड़े को दूध पिलाने जाती है और फिर सिंह के पास वापस आ जाती है। यथा –

गाय – ''चंदा सूरज मोरे साख सखनियाँ
वनस्पति जवान हो माय।
सिंह –चंदा सूरज दोऊ अधीन राजा
वनस्पति झर जाए हो माय।
गाय –पृथ्वी के देवता साख सखनियां
हनुमत लाल जवान हो माय।।''

चौक–सुरेती – बुन्देलखण्ड में पूजा, व्रत, त्योहार, वर्षगांठ, आदि अवसरों पर चौक या सुरेती की संरचना शुभ सौन्दर्य की प्रतीति कराती है। इन लोकछवियों को अपनी–अपनी लोकशैलियों के अनुरूप नयी–नयी आकृतियों में धरती में बनाया जाता है। गाय के गोबर से लीपकर आटे के द्वारा चतुष्कोणी आकार में इसका अंकन होता है। इस चतुष्कोण के सौन्दर्य को अधिक आकर्षक और सुन्दर बनाने के लिए हल्दी, अबीर, गेवरी, पीरोठा और चावल आदि को बीच–बीच में भरा जाता है। रूपाकृति का यह कौशल अपनी अनुपमा छटा में आस्था और विश्वास का सज्जित चित्रपट ज्ञात होता है। इस चौक पर रखा कलश प्रेम और सौन्दर्य से स्निग्ध आत्म–सम्मान से दीप्त मंगलघट प्रतीत होता है। यहां लोकपरक आस्था के धनीभूत उमंग तथा उल्लास से परिपूर्ण चौक और कलश अपनी बहुरंगी छवि में लोकजीवन में प्रशस्त प्रपति भावना को भी प्रगट करते हैं।

रंगोली और चौक से भिन्न बुन्देलखण्ड में 'सुरेती' का रेखांकन महत्वपूर्ण है। सुरेती का आकार गोल, चौमुखी और चक्राकार होता है। सुरेती अंकन के समय विभिन्न रेखाओं को बड़ी सावधानी से खींचा और मिलाया जाता है। धन के आकार को गणना कर रखना सुरेती की शुद्धता के लिए सुविधाजनक होता है। सुरेती अदृश्य देवता का प्रतीक होती है। आस्था का आकार ग्रहण करती है। इस माध्यम से स्थिति और आकार के द्वारा विभिन्न देवी–देवताओं की आकृति उरेही जाती है और शुभ मंगल चिन्हों के द्वारा सुरेती को विशिष्ट रूप दिया जाता है। सुरेती का अंकन प्रायः पूजा–स्थल की दीवालों में होता है। हल्दी, रोरी, पीरोठ, गेवरी, सेंदुर, चावल और आटे को घोल आदि के रंगों का प्रयोग इनके अंकन में होता है। बनावट में अन्तर होने पर भी शिल्प–शैली से प्रतीत होता है कि जैसे मंदिर के भीतर देवता की मूर्ति स्थापित की गई है। श्रीकृष्ण जन्म के समय श्रीकृष्ण लीलाओं पर केन्द्रित 'कन्हैयाजू का पद' का चित्रांकन भी बुन्देली लोककला का एक आयाम है।

सुख, समृद्धि, अभय और मंगल की संभावनाओं से परिपूर्ण पर्वों, त्योहारों में बनाए जाने वाले चित्रों का निरूपण करने पर ज्ञात होता है, कि इन चित्रों के विविध आशय कथ्य और शिल्प, सोच और संवेदना दोनों स्तरों पर प्रायः सवर्णों की जीवन्त आस्था और वैचारिक परम्परा को मुखरित करते हैं। छोटी जाति के लोगों में अंशतः इनका रूप देखने को मिलेगा। बुन्देलखंड की विविध लोककलाओं को पल्लवित और पुष्पित करने में केन्द्रीय तत्व रही हैं वहां की अन्य विभिन्न जातियाँ। इनकी कुशलता और सर्जनात्मक प्रतिभा के परिणाम–स्वरूप बहुतेरी कलाएँ लोककला

का प्रतिमान बन गई। तत्कालीन कलात्मक चेतना और वर्तमान संदर्भों के अनुरूप इनमें परिवर्तन परिवर्धन होता रहा है। इसीलिए लोकजीवन में इन कलाओं की स्वीकृति और सराहनीय सौन्दर्य जनता की जुवान पर चढ़ गया। लोक गीतों में इन कलाओं का सौन्दर्य बार–बार मुखरित होने लगा। आस्था, प्रेम और सौन्दर्य से अभिभूत बुन्देली–जन, अंग–प्रत्यंग में अभीष्ट माधुर्य और समग्र छवि को अंकित कराने का अवसर कला के माध्यम से पा लि। 'गोदना' आभूषण आदि में विभिन्न चित्रों की आकृति का अंकन प्रायः इस कला–मर्म का परिणाम है। गोदना बुंदेलखंड का चर्चित कला प्रवाह है। यह चित्रण सामान्यजनों में अधिक प्रभावी है। महिलाएँ पीड़ा सहकर भी 'गोदना' गुदवाती हैं। लोकगीतों में गोंदना की संवेदना का भी वर्णन मिलता है। उदाहरणार्थ –

''बड़े गठिन के गुदना बाई गुदवाये ते उदना से,
भींज गई अंसुअन सारी।
मैने भौतऊ करे बहाने,
मेरे मात–पिता खिसयाने जे ना मोंह तनक पुसानें।
पूरी ललक भई गुदनन की बहिंया दिपन लगी प्यारी।।''

गोदना एक कला व्यवसाय है। व्यवसायी चित्रकार 'मोची' कहे जाते हैं। गोदना के माध्यम से विभिन्न फूल पत्तियों के चित्र अंकित किये जाते हैं। हिरण की आकृति और मयूर आदि का चित्रांकन गोदना के मुख्य विषय हैं। पुतरिया, वंशीधर श्रीकृष्ण, शिव आदि आकृतियाँ प्रायः हांथ में गोदी जाती हैं। सतियों की छोटी–छोटी आकृति भी गोदने से अंकित होने वाले विषय हैं। इसी तरह प्रेम और सौन्दर्य से मण्डित नारी के मन का साक्षात्कार भारतीय साहित्य में अत्यधिक मिलता है। श्रृंगारी कवियों ने नारी के शिख–नख का कमनीय वर्णन किया है। महज प्रेम की लौकिक भाव–भूमि में सौन्दर्य विन्यास महत्वपूर्ण है। अंगों में विभूषित विविध आभूषण नारी की आभा में निखार लाते हैं। आभूषण धारण कर नारी के अन्तर्मन में गौरव का भाव जगता है। बुन्देलखण्ड के गीतों और विविध कलाओं में आभूषणों का महत्व है। अनेक स्थलों पर तो गहनों की मांग को लेकर नारी मन के बहुत भावुक चित्र मिलते हैं। लोक कवि ईसुरी ने बुन्देली जेवरों की झलक प्रस्तुत की है। उदाहरणार्थ –

''जिदना रजऊ पैरतीं गानो, जियरा जात बिरानो।
सरमाला लल्लुरी बिचौली, मोंहरन हार सुहानो।
पावन पोस पैजना बोरा, जानक जिया लुभानो।
ईसुर देत बदन अति सोभा जब चोली बंद तानो।।''

जेवर बनाने का कार्य सुनार जाति के लोग करते हैं। नख से शिख तक पहनने वाले बुन्देली जेवरों की संख्या कम नहीं है। जेवर बनाने की तकनीक में अद्भुत कौशल दिखता है। इनका पूर्ण निरूपण करने हेतु पूरे अध्याय की आवश्यकता होगी। उनकी पूरी चर्चा यहां संभव नहीं। अस्तु इतना ही।

बुन्देलखण्ड में मूर्तिकला का लालित्य महत्वपूर्ण है। यह कला सहज ही लोकमानस द्वारा परिकल्पित देवी–देवता, आदि के विग्रह के रूप में विकसित होती गई। धर्म और आस्था में स्थापित चेतना मूर्ति का अंग बन गई। मंगल, सुरक्षा और अभीष्ट प्राप्ति हेतु इन मूर्तियों की पूजा की जाने लगी। पाषाण और धातुओं के अतिरिक्त मृत्तिका से बनी देवी–देवता, हांथी, घोड़ा आदि की मूर्तियां, व्रत, उपवास, पूजा, अनुष्ठान आदि के अवसरों पर पूजी जाने लगीं। लोक कथाओं को आधार मानकर आटा और गोबर की पुतरियों को भूत प्रेत का मान देकर बुन्देली जनजातियां उन्हें भी पूजती हैं।

'गुड़िया घुल्ला' शक्कर से बना एक खिलौना है। बुन्देलखंडी रीति–रिवाज की यह एक अनूठी कृति है।

मूर्तियां, बर्तन, जेवर आदि ढालने या बनाने का काम प्रायः, तमेर, लुहार, और सुनार जाति के लोग करते हैं। व... कला में कुशल बढ़ई जाति के लोग अधिक होते हैं। इसी प्रकार मिट्टी के बर्तन, मूर्ति और खिलौने आदि कुम्हार जाति के लोग बनाते हैं। बांस के द्वारा बनाई जाने वाली घरेलू वस्तुएं बसोर जाति बनाती हैं। मिट्टी और बांस से बनी वस्तुओं की लोकाभिमुख कला भी कम प्रभावकारी नहीं होती।

'अक्षय तृतीया' में कन्याओं के पूजने के लिए मिट्टी के बने (गुड्डा–गुड़िया) और पत्तियों बेलों, मोर आदि की आकृति से सजे मृदभांडों का सौन्दर्य बुन्देलखण्ड के प्रमाख्यान को प्रकट करते हैं। लोकपक्ष से संपृक्त अकुंठित प्रेम का स्वरूप यहां की कलाओं से कम नहीं मिलता है। प्रेम और दाम्पत्य के जीवन व्यापी प्रभाव से परिचित बुन्देली कलाकार कला के माध्यम से भावनात्मक स्तर पर एक तरह से साहचर्य के प्रयोजन का परिदर्शन प्रणयी–युगल की प्रीति की सरसता को लक्ष्य करते हुए कराया है। काम–कुंठाओं से मुक्त, प्रेम की मनोदशा और प्रणय–प्रसंग की विविध क्रीड़ाओं का विवाह के अवसर पर खुलकर उल्लेख किया जाता है। नारी और पुरुष के जननांग का वर्णन इस अवसर के लोकगीतों में आम–बात है। होली के अवसर पर भी पुरुषों द्वारा होलिकोत्सव की भूमिका में इन दशाओं का वर्णन होता है। वर–वधू के बैठने के विशेष उपयोग में लायी जाने वाली पालकी में कामकुंठाओं से मुक्त चित्र उत्कीर्ण होते हैं। डॉ. श्यामसुन्दर दुबे ने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है ''होली के अवसर पर दीवारों पर बनायी गई मृत्तिका आकृतियों में पुरुष के जननांग का उत्थित रूप प्रदर्शित किया जाता है। ऐसी मृदा आकृतियां प्रायः स्त्रियों द्वारा निर्मित होती हैं। विवाह के अवसर पर आटा से बनाई गई मूर्तियों में भी ऐसा विधान मिलता है। बुन्देलखण्ड में विवाह के अवसर पर वर और कन्या के घरों को एक दूसरे के यहां से

पकवान और मिठाइयाँ भेजी जाती हैं। जिस पात्र में रखी जाती है उसे 'टिपारा' कहते हैं। इसे समरौती कहा जाता है। पकवान के साथ आटा का एक पुरुष बनाकर रखा जाता है। इस पुरुष का ननगांग लाल मिर्च खोंस कर बनाया जाता है। या फिर आटा से ही उसका स्वरूप बनाते हैं। आटा की यह आकृति समधिनों के बीच हास्य, विनोद का वातावरण निर्मित करती है और अशुभ का तिरोहण भी करती है। अवदमित कामभावना का निस्सारण करती ये कलाकृतियां बुन्देलखण्ड की अपनी तरह की लोकवृत्ति की परिचायक हैं।''

अपनी मिट्टी अपने अंचल और भाईचारा तथा हास-विनोद का संभार लिए बुंदेली लोककलाएँ उन स्थापनाओं और धारणाओं को व्यक्त करती हैं जो प्रणय-प्रवण हृदय की कामना रहती है। प्रवृत्तियों के परिष्कार, संस्कार, सुख वैभव और जीवन की उन्नति के लिए कला की परिपाटी और बुन्देली प्रकृति के अनुकूल लोक-कथाओं के अनुरूप भी कलाकृतियों का चयन लोक कलाकार करते रहे हैं। कारसदेव तथा हीरामन की प्रशस्ति और लाल हरदौल की मनौती में प्रस्तुत मिट्टी के घोड़े तथा झूमर आदि इनकी पूजा का अंग बन गए। शादी-ब्याह होने पर या मनोकामना पूरी होने पर हरदौल के चबूतरे में उक्त वस्तुओं का समर्पण आवश्यक हो गया। इसी प्रकार लोकदेवता की पूजा भी बुन्देली जन बड़ी श्रद्धा से करते हैं। सिद्धबाबा, नदी के देवता, घटोई बाबा, खैरादेव, ब्रह्मदेव, बूढ़ेबाबा, मैकासुर आदि लोकदेवता के स्थापना-स्थल पर लोककला की विविधता देखी जा सकती है।

लोकजीवन का सबसे सुदृढ़ और केन्द्रीय तत्व है परिवार। जहाँ तमाम नाते-रिश्ते बड़ी मर्यादा में मिलते हैं और परस्पर कृत्रिमता से दूर हृदय की मार्मिक अनुभूति को प्रकट करते हैं। लोक जीवन में मिलन का यह समय शादी-ब्याह या सांस्कृतिक त्योहार आदि होते हैं। इन्हीं दिनों सामान्यजन भावों का आदान-प्रदान करते हैं और लोकप्रिय आख्यान को आधार बनाकर ढोलक की थाप पर समूची रात गाते और नाचते हैं। उनका भाईचारा, विश्वास और रिश्ते की निकटता का समूचा सर्वांगपूर्ण सौन्दर्य गीत के स्वरों और नृत्य में परिभाषित होता है। लोकमानस और उसके परिवेश से जुड़े, मिथक, किंवदंतियाँ तथा आस्थाएँ लोकगीत के बोल एवं लोकनृत्य की मुद्रा को अधिक कमनीय बनाते हैं। लोकनृत्य बुन्देलखण्ड की महत्वपूर्ण कलात्मक विधा है इसकी रचनात्मक उपलब्धि का अंदाज इसी से होता है कि इस अंचल के लोककलाकारों ने पूरे देश में अपनी कलात्मकता के प्रतिमान निर्धारित किए हैं।

बुन्देली लोकनृत्य में वस्तुपक्ष के सहारे कलापक्ष आगे बढ़ता है। इसलिए इस कला के रूप में एक साथ कई स्तर व्यक्त होते हैं। आस्था और भावुकता को लक्षित कर नृत्य की प्रभावक्षमता में वृद्धि का प्रयास होता है। सामाजिक धारणाओं, संस्कारों और घटित व्यवस्थाओं के अर्थ को भी विभिन्न संदर्भों में जोड़कर लोकनृत्य के माध्यम से उन्हें प्रकट करना इनकी खूबी है। स्वाँग आदि इसी भावभूमि से जुड़े होते हैं। सामाजिक संदर्भों के बृहत्तर परिदृश्य को उभारते अलग-अलग संज्ञा के लोक नृत्यों को अलग-अलग जातियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। संक्षेप में उनका नाम निरूपण निम्नलिखित है शैला नृत्य, शैताम नृत्य, करमानृत्य, सैरा नृत्य, दिवारी-नृत्य, राई नृत्य, कांडरा नृत्य, रावला नृत्य, ढिमरया नृत्य, अहीरों का नृत्य, चमारों का नृत्य, लाकोर नृत्य, चीकट एवं बहू उतारने का नृत्य, मेला नृत्य, देवी नृत्य, हिंजड़ों का नृत्य आदि।

इस प्रकार बुन्देली लोककला में जीवन के सहज उल्लास, यौवन के आवेग का वर्जनाहीन चित्रण अद्वितीय है। लोकजीवन की चेतना और उनकी प्रखर सामाजिक चिंता के निरूपण का आधार भी कलारूप रहे हैं। प्रेम के यौवन के उल्लास का जितना रूप उभरा है, प्रायः कथात्मकता के साथ शुद्धतम भाव के रूप में प्रकट हुआ है। जिसे बुन्देलखंडी ही नहीं देश के किसी भी भाग में रहने वाला भारतीय पूरी शान के साथ स्वीकार करता है। शुद्धतम भावना से व्यक्त लोकसंस्कृति की झांकी में वीरता और बलिदान की मिसाल है तो प्रेम और सौन्दर्य की कमनीय संवेदना भी है। लोककला के सन्दर्भ में निहित उसकी ईमानदारी लोकसंस्कृति की चित्रशाला की सज्जित छवि है। जीवन की जरूरी सुविधाओं से भी वंचित उपेक्षित शोषित-जन लोककला के प्रतीकात्मक मूल्यों को सहर्ष वरण करते हैं। इन लोक कलाओं में लोकजीवन की कामना, खुद्दारी और संजीदा बेबाकी आदि के संयत चित्र देखें तो समूची बुंदेली लोककला प्रीतिकर हो जाती है। मानवीय सत्ता के साथ जन-जीवन की संलग्नता और विविध रूपाकारों के माध्यम से उनकी सक्रिय हिस्सेदारी इन कलारूपों से सुस्पष्ट होती है। लोक छवियों में गतिशील मूल्यों को साधु संत और मनीषियों ने भी स्वीकारा है। मानवीय मूल्यों के निर्माण में इनका महत्वपूर्ण योगदान है। लोकजीवन की स्थानीय वैशिष्ट्य से संश्लिष्ट कला की जीवंतता और सामुदायिक चेतना को व्यक्त करने हेतु तुलसी का कथन समाचीन ज्ञात होता है।

''चहत न कहूँ सो, न कहत काहू की कुछ
सब की सहत उर अंतर न ऊब है
तुलसी को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के,
राम की भगति भूमि मेरी मति दूब है।।''

– सर्वेक्षण अधिकारी
महाकवि केशव अध्यापन एवं अनुसंधान केन्द्र,
अ.प्र.वि.वि. रीवा

□

कालिंजर के बुन्देल शासक रुद्र प्रताप की संस्कृत प्रशस्ति

बुन्देली इतिहास पर नवीन प्रकाश

- वीरेन्द्र बहादुर खरे

यह निर्विवाद सत्य है कि बुन्देली संस्कृति की वृद्धि में उसके निर्माण में एवं एक निजी पहचान देने में चंदेलों के बाद सबसे अधिक योगदान बुन्देलशासकों का है। १२५७ सन् ई. के लगभग अपने लिये नये राज्य की तलाश में पंचम बुन्देला के वंशज सोहनपाल ने गढ़कुंढार के खंगार राजा हुरमत सिंह को सुनियोजित योजना द्वारा उसके सरदारों एवं परिजनों के साथ मारकर खंगार सत्ता को पलटकर, बुन्देलशासन की नींव डाली। इसकी समाप्ति १९४८ में स्वतंत्र भारत में शांति पूर्ण विलय के पश्चात हुई। आधुनिक बुन्देलखण्ड की धरती की संस्कृति एवं भाषा बुन्देलों की ऋणी है।

यह भी सच है क्रि बुन्देली अस्मिता की पहचान होने पर भी प्रारम्भिक, बुन्देला शासकों और खासकर कुंढार के बुन्देला सोहनपाल, सहजेन्द्र, नौनक देव, पृथ्वीराज, रामचंद्र मेदिनीराय, अर्जुनदेव मलखान एवं यहां तक रुद्र प्रताप देव के बारे में गम्भीर एवं शोधपूर्ण कार्य नहीं हुआ और नहीं उनके बारे में प्रमाणिक जानकारी देने वाले ग्रंथ लिखे गये। इन शासकों के बारे में जानकारी देने वाले मूल स्रोतों को न खोजा गया न ही कोई गम्भीर चर्चा की गई। सोहनपाल से मलखान तक के बुन्देल शासकों का कोई पुरातात्विक प्रमाण–महल, मंदिर, साहित्य हमें उपलब्ध नहीं है। उस युग के तुर्क सुल्तानों के इतिहासकारों के वर्णन में भी इनका नाम प्राप्त नहीं होता है। इनके बारे में जो भी जानकारी हमें प्राप्त हुई वह महाकवि केशवदास के ग्रंथ कवि प्रिया, वीरसिंह देव चरित्र, जहांगीर जस चन्द्रिका, रत्न वावनी एवं महाकवि लाल द्वारा रचित छत्रप्रकाश से प्राप्त हुयी। कवि कृष्ण ने भी एक ग्रंथ चम्पत प्रकाश का उल्लेख किया जिसके लेखक कवि जगदीश स. १७२० के हैं। ओरछा के राजा रुद्र प्रताप से पहलेतक तुर्क सुल्तानों के निशाने पर ग्वालियर और कालिंजर ही रहे। आधुनिक इतिहासकारों ने मान लिया उस समय तक बुन्देलशासन, और गौणशक्ति या स्थानीय शक्ति ही थे। जबकि जनश्रुति छत्रप्रकाश एवं केशव के ग्रंथों में उन शासकों के शौर्य की प्रशंसा की गई है।

शोधपूर्ण ग्रंथ ''बुन्देलखण्ड के विशद इतिहास के लेखक के.पी. त्रिपाठी रुद्र प्रताप के बारे में लिखते हैं ''उन्होंने (रुद्रप्रताप ने) इब्राहीम लोदी के समय सवा करोड़ रुपये का विशाल बुन्देला गज्य स्थापित कर लिया। जो कालिंजर से कालपी तक फैला था।'' पे. ३६

श्री कृष्ण कवि 'बुन्देलखण्ड का इतिहास ओरछा खण्ड' में लिखते हैं ''बाबर की चढ़ाई के समय लोदी बादशाहों की गड़बड़ी के काल में रुद्रप्रताप ने खूब उन्नति की। और अपने बंधुओं के सहयोग से महोबा से चंदेल राजा कीर्ति सिंह और कालिंजर के बघेल शासक को करद बनाया। हुमायूँ स्वयं लगातार एक साल (१५३०–३१) तक असफल प्रयत्न कालिंजर विजय के लिये करता रहा अंत में हताश होकर जोनपुर की ओर वापिस चला गया। पृष्ठ ९४१ ओरछा नरेश रुद्रप्रताप और उनके पुत्र भारतीय चन्द्र को ओरछा गजेटियर और Eastern states (Bundel Khand Gazetiear Volume VI A Text. द्वारा केप्टेन सी.एफ. लॉड १९०७ पेज १२६ में कालिंजर का अधिकारी माना है।''

महाराजा रुद्र प्रताप का देहावसान होने पर भारती चंद्र राजा हुआ। इसके समय में वि.स. १६०२ में (१५४५) में शेरशाह सूर ने कालिंजर पर चढ़ाई की उस समय उसका आक्रमण रोकने के लिये राजा भारतीय चंद्र ने अपने भाई मुधकर शाह को भेजा पर कुछ भी लाभ न हुआ। किला मुसलमानों के हाथ चला गया।'' इन विद्वानों के कथन को क्षेत्रीय प्रेम से प्रभावित माना गया और आधे अधूरे मन से इसे स्वीकार किया। बहुत से विद्वान अब भी इन कथनों पर भरोसा नहीं कर पा रहे हैं। उन्हें यह कथन अतिरंजित लगता था वे भारतीयचंद्र और रुद्रप्रताप को कांलिजर के स्वामी मानने को तैयार नहीं।

आखिरकार कांलिजर के किले में १९७७ में श्री कृष्णकुमार ने कालिंजर दुर्ग स्थित पुरावशेषों के २८ मई से २० जुलाई १९७७ तक अभिलेखीकरण के दौरान रुद्रप्रताप द्वारा तैयार की गई संस्कृत प्रशस्ति खोज निकाली। यह संस्कृत की प्रशस्ति रुद्रप्रताप ने गोरखपुर के पास भगलपुर निवासी श्री ज्ञानदास के पुत्र दुर्गादास द्वारा विक्रम सम्वत १५४३ सन् १४८६ में तैयार कराई। प्रशस्ति १८७ से.मी. लम्बे, ९२.५ से.मी. चौड़े, एवं १२ से.मी. मोटे बलआ लाल पत्थर पर उत्कीण है। यह पत्थर कालिंजर दुर्ग में कोटि तीर्थ नामक तालाब के पूर्व उत्तर कोण में बनी पथर महल मस्जिद के भीतरी भाग मेम्बर के नीचे सकरे मार्ग की दीवार पर चुना है। इसका बड़ा भाग फर्स पर चुना है। कुछ भाग नमी के कारण नष्ट हो गया है। इस प्रशस्ति में ४० श्लोक हैं इनमें १० श्लोक ही पूर्ण हैं शेष ३० श्लोक अधूरे हैं।'' यह कृति निःसन्देह उत्तर मध्यकालीन संस्कृत काव्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यद्यपि अपूर्ण पाठ के आधार पर प्रशस्ति के साहित्यिक महत्व का समुचित आकलन असंभव है किन्तु उपलब्ध आंशिक पाठ भी कालिंजर तथा बुन्देलखण्ड के मध्य कालीन राजनैतिक, सामाजिक , आर्थिक, धार्मिक, इतिहास पर कुछ नवीन प्रकाश डालने में

१८. तर स्यामपि कुण्डलीश्च। देशानवाच्याम (न) पि वारमत्या: प्राच्यामसिर्यस्पददाति दृष्टिम् ।।३२।। कांचिद्वक्र विलोकनैरमयतें समां सुधा मुग्धयावाचा कामपिकाम सुन्दर तनु: कांचिद्रसालिंग नै:।।३३।। इत्या नन्दितनन्द नन्दन इव।।

१९. त्य शाला सुविशाल नेत्रोल्लसन्मुखी पाणिपदप्रचारै:।आनीयते चन्द्रमखंजरीट विराजि राजीवबनस्य शोभा।।३४।। कोशं मुंचत्य सम समरे निष्कृपेयत्कृपाणे दूराद्दूरादपि रिपु नृपास्त्यक्र कोषाभवन्ति।।३५।। सहर्ष...।

२०. ष्ठं प्रतिकोटितीर्थ लहरी सोपान वीथी पथे प्रस्थानं दधत: विभु: सफलयन्नाज्ञां हरेर्भक्तित:। प्रासादेऽत्र सुवर्ण वृष्टि विधिना श्री वल्लभं स्थापयन्सोऽयं रुद्रमही महेन्द्र तिलक: पायात्सदा मेदिनीम्।।३६।। भुक्ति मुक्ति मुरुषार्थक...।

२१. या ।।३७।। श्री गोरक्षपुरस्य पश्चिम दिशि श्री मंगलाख्यपुरं तस्मिन् माधवसेवकोऽस्ति करण: श्री ज्ञानदासो बुध:। दुर्जा (र्गा) दास कविस्तरीय तनय: क्षोणिन्द रुद्राज्ञया निर्दोषाकुरुते प्रशस्ति ममुनाराज्ञा (सदा सत्कृत:।।)।।३८।।

२२. ल्पी। तत्सुनुनाऽन्यून कामदेवेन देवालय एषचक्रे।।३९।। दत्वा शासन भूमिं देवार्च्चायां प्रभाकरो विप्र:। माता (त्) त्रिलोकदेव्या राज्ञा रुद्रण चाज्ञप्त:।।४०।। वह्निवेद शर चन्द्र बोधिते विक्रमार्क्क नराथ वत्सरे।

२३. संवत् १५४३ अ (आ) ग्र ह (हा) (य) ण वदि ५ गुरु पुष्ये (ये)। महाराजाधिराज श्री प्रतापरुद्र देवेन माता (तृा) त्रिलोक्यदेव्या कृताशीर्व्वदिव कृतं लक्ष्मीनारायण स्थापनमत्र प्रासादे।। ।हरिहृदिरमते सा या वदम्भोधि जैयं विहरति चहरार्देधयावदद्रीश (कन्या)

२४. जूडेदामू प्रभृति शिल्पिभिरुत्कीर्ण वर्णेयं प्रशस्ति:।। महोवीय भमराज नामा निजवर्ग्जे (र्गे) ण सह कर्मण्य वासीत।। सातननामा लौहकारश्च।। कान्होऽत्र कर्म्मणि कोटवार:। नारायण नाम शिल्पिना लक्ष्मी नारायण मूर्ति निर्माण कृतम्।। ।। महा...

संदर्भ – भारतीय इतिहास के कुछ पहलू पृ. ३१६–३१७

□

कैसें करौं किसानी?

– शंकर दयाल खरे 'शंकर'

कैसें करौं किसानी भैया? पग–पग पै हैरानी।
नदियाँ सूकीं, तला सूक गए,
कुअँन बचो नइँ पानी।
खाद–बीज सब माँगे हो रए,
बिजली अलग रिसानीं।।
कैसें करौं किसानी भैया? पग–पग पै हैरानी।
साउकार सैं करजा काड़ो,
करी भौत नाँदानीं।
'दस के बीस' बना लए चुपकइँ
भेद खुलो जब जाँनी।।
कैसें करौं किसानी भैया? पग–पग पै हैरानी।
पुटया–पुटयां कैं करजा दओ,
करन लगो मनमाँनीं।
'करिया अच्छर भैंस बरोबर'
मैं मूरख अंज्ञानीं।।
कैसें करौं किसानी भैया? पग–पग पै हैरानी।
रओ 'अंगूठा छाप' जनम भर,
स्याँनन–सीक न माँनीं।
का होबै अब पछताये सैं,
'सिर सैं कड़ गओ पानी।।'
कैसें करौं किसानी भैया? पग–पग पै हैरानी।
नौं ठउआ मौंड़ा–मौंड़ी हैं,
उर हँम दोऊ प्राँनीं।
पैलाँ तो रइ मजा–मौंज पै,
अब आ गई गिरानीं।।
कैसें करौं किसानी भैया? पग–पग पै हैरानी।
ब्याव लाक मौंड़ा हो रए हैं,
मौंड़ीं भई सियानी।
भुँनसारे सैं किल–किल होबै,
मचबै खींचा–ताँनीं।।
कैसें करौं किसानी भैया? पग–पग पै हैरानी।
टूटे डरे 'बखर–हर' सबरी,
भुसा बचो न साँनी।
लगत असाड़ै बैला मर गओ,
भैंस डरी अर्रानीं।।
कैसें करौं किसानी भैया? पग–पग पै हैरानी।
'घर में ''भूँजी–भाँग'' बची नाँ,
बचो न दाँना–पानी।
तीन साल सैं सूका पर रओ,
बरसत नइयाँ पानी।।
कैसें करौं किसानी भैया? पग–पग पै हैरानी।

–समीप अवस्थी बंगला, दूल्हाबाबा मार्ग, नौगांव, छतरपुर (म.प्र.)

गौ भक्त महाराज पहाड़ सिंह

– सी.एम. खरे 'अविनाश'

बुन्देलखण्ड की माटी कीं गरिमा का वर्णन करते हुए कवियों की कलम थक सकती है, किन्तु इस माटी के कण कण में रमा बसा गौरव और यश का अन्त नहीं हो सकता है। महान ओरछा नगर, इस बुन्देलखण्ड का एक ऐसा वृक्ष है, जिसकी सुगंध का स्वाद प्रत्येक कवि की कलम ने चखा और चख कर उस सुगन्ध की महिमा को शब्दों में पिरोकर अमर बना दिया है। उसी ओरछा नगरी में सर्वप्रथम महाराजा मधुकर शाह एवं उनकी रानी कुँवरि गणेश की चर्चा त्रेता युग के महाराज दशरथ एवं महारानी कौशिल्या के रूप में की जाती है। इन्हीं महाराजा मधुकर शाह के पुत्र वीरसिंह ने मथुरा जी में विक्रमी सम्वत १६७१ में विश्राम घाट पर इक्यासी मन सोना दान कर उस बुन्देलखण्ड की गरिमा को अमर बनाया था।

महाराजा वीर सिंह के तीन विवाह हुए थे। दूसरी रानी गुमानकुंवरि से दुर्लभ गुण सम्पन्न, निष्कलंक, निर्मल चरित्र, प्रशंसनीय अनुकरणीय, देव तुल्य दिमान हरदौल का जन्म हुआ था। जिनकी पूजा अर्चना किये बगैर बुन्देलखण्ड में किसी कन्या का विवाह सम्पन्न नहीं होता है। इन्हीं महाराजा वीर सिंह देव की प्रथम पत्नी की कोंख से पहाड़ सिंह कुंवर पैदा हुए थे। दिल्ली के मुगल शासक शाहजहां ने विक्रमी संवत १६९८ में राजकुमार पहाड़ सिंह को ओरछा का शासक नियुक्त किया था। महाराजा पहाड़ सिंह गौ धर्म पालक थे। इनके समय गौड़वाने में हृदय शाह नामक राजा राज्य करता था। जिसके राज्य में गौ माता हल में जोती जाती थी। एक भाट ने ओरछा आकर महाराजा पहाड़ सिंह को गौ माता की तरफ से एक पद सुनाया था –

"पड़ी है पिशाचन बीच जोतत है आठोयाम,
सुध हूँ न लेत पापी तृण हू के खाने की।
कान्ह जू की कामधेनु करती है विलाप गैय,
कपिला की जात कहूँ भाग नहीं जाने की।।
रोज उठत करत अरज भोर भये जू सों,
फौज चढ़ आवे केशव राव जू के घराने की।
वीर सिंह जू के कुँवर पहाड़ सिंह जू,
तेरी राह हेरती हैं गायें गौंड़वाने की।।"

कवित्त सुनते ही महाराजा पहाड़ सिंह की भृकुटि टेड़ी हो गई, भुजायें फड़कने लगीं। उनका दाहिना हाथ तलवार की मूंठ पर चला गया और वह भावुक होकर साहस पूर्ण वाणी से बोले जब तक गायों को जुतने से मुक्ति नहीं दिला दूंगा, तब तक अन्न जल ग्रहण नहीं करूंगा, सेनापति गौड़वाने पर चढ़ाई की तैयारी की जाए। सेनापति काफी समझदार था। गौंड़वाने के सुदृढ़ गढ़ एवं वहां के सैनिकों की वीरता से पूर्ण परिचित था। अतः सेनापति ने विचार कर महाराजा पहाड़ सिंह से निवेदन किया कि महाराज की आज्ञा सभी को शिरोधार्य है। किन्तु आपने जो अन्न–जल ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा की हे, उसमें मेरा अनुरोध है कि आप जहां एक गोबर का गौंड़वाना बनवा कर उस पर विजय प्राप्त कर अन्न जल ग्रहण करें। फिर सेना संगठित कर गौड़वाने पर धावा बोलें। इस प्रकार महाराज को एवं सैनिकों को सब प्रकार की सुविधा प्राप्त हो सकेगी। सेनापति का परामर्श मानकर महाराजा पहाड़ सिंह ने नगर के बाहर छारद्वारी नामक स्थान पर गोबर का गौड़वाना निर्मित करवाया एवं उस गोबर से निर्मित गौड़वाने पर धावा बोला। ओ... राज्य की सेना में एक गौड़ भी सैनिक था उसने अपने गौड़वाने के गढ़ की रक्षा हेतु तलवार खींच कर दो घंटे तक भयंकर युद्ध किया, जिससे भयभीत होकर बुन्देली सेना भागने लगी। अंत में महाराजा पहाड़ सिंह द्वारा वह सैनिक मारा गया।

कुछ समय बाद महाराजा पहाड़ सिंह ने पूरी तैयारी के साथ गौड़वाने पर चढ़ाई कर वहां के राजा को वीरतापूर्वक परास्त कर विजय प्राप्त की तथा गायों की हल से मुक्त कराया। गौंड़वाने के हनुमान जी की प्रसिद्ध प्रतिमा को लेकर महाराजा पहाड़ सिंह ओरछा लौटे और हनुमान जी की उस प्रतिमा की स्थापना विक्रमी संवत् १७०१ में उस स्थान पर कराई जहां कि गोबर का गौड़वाना बनवा कर युद्ध किया गया था। वह मंदिर ओरछा में आज भी छारद्वारी मंदिर के नाम से विख्यात है। बुन्देला वीरों की इन अमर गाथाओं से बुन्देलखण्ड भूमि हमेशा हमेशा गौरवान्वित रहेगी।

– हनुमान टौरिया के पीछे, छतरपुर (म.प्र.)

□



दिवारी – नीरज सोनी, छतरपुर

श्री माधव शुक्ल 'मनोज' की कविताओं पर एक टिप्पणी -

यथार्थ की भूमि पर – बुन्देली कविता

– जगदीश पाठक

हिन्दी एवं बुन्देली के जाने–माने कवि माधव शुक्ल मनोज को मध्यप्रदेश साहित्य परिषद भोपाल द्वारा किया ईसुरी पुरस्कार–सम्मान और उनका विशुद्ध बुन्देली बोली में प्रकाशित काव्य पुस्तक ''धुन की रुई पे पौआ'' बुन्देली काव्य धारा में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। मनोज का यह काव्य बुन्देली काव्य में नये लेखन के प्रति बोध कराता हुआ अपने नये शिल्प की ओर आकर्षित करता है। कविता मर्मज्ञ कवि–समीक्षक श्री त्रिलोचन शास्त्री ने कवि और उसके संग्रह की कविताओं के सम्बन्ध में कहा है – मनोज, अन्वेषी गहरे सम्वेदनशील कवि हैं। उन्होंने बुन्देली कविता को कविता की ही तरह उजागर किया है। वे बुन्देली के मौलिक कवि हैं। प्रसन्नता की बात यह है कि वे बुन्देली कविता में आधुनिक हिन्दी कविता के भावों से भिन्न स्वतंत्र–अस्तित्व स्थापित करते हैं। मनोज ने काव्य रचना को बुन्देली में वह स्तर दिया है, जो कोई अनुभूति चेतन कवि दे सकता है।

मनोज का कवि अपने रचना संसार में आज की यथार्थ भूमि को खोजता विचारता है। भावों को दुहराना या फिर अपनी भाषा में किसी के भाव को व्यक्त करना मनोज को नहीं सुहाता। इस ओर उसकी सतर्कता प्रशंसनीय है। वे अपनी नयी शैली का प्रयोग करते हैं। बुन्देली में कहे और सुनाये जाने वाले अटके और लटके जैसी विधा को जो लुप्त होती जा रही है। उसे जीवित कर एक नयी ताजगी देते हैं और उसमें अपनी मौलिक भाव विधा प्रस्तुत करते हैं–

गुप्प–गुप्प
डुप्प–डुप्प
डुबका सो खात हैं।
सिकन्दर के बेटा=
कीचड़ की तलैया में।

और लटके जैसी शैली में एक नयी भाव–भूमि दर्शाते हैं जैसे –

नंग धुरंगे लरका आ गए
कैसें ढांकें/का पहिरावे
बोऊत अबई कपास खेत में
तिन्न.....तनातन....
रुई धुनकत हों।

बुन्देली साहित्य के मर्मज्ञ श्री नर्मदा प्रसाद गुप्त ने मनोज के काव्य का विश्लेषण करते लिखा है कि ''बुन्देली कविता अपने पुराने ढर्रे और बासी अभिव्यक्ति से उबर नहीं पाई, पर आज मनोज ने नयी लीक पर चल कर अपने विविध प्रयोगों से यह सिद्ध कर दिया कि बुन्देली कविता हर तरह से सक्षम है।''

आज की कविता जनमानस की कविता है। आज का पाठक या श्रोता कवि की पंक्तियों पर तैरना चाहता है – उसमें डूबना नहीं? डूबना तो अधिक गहराई में जाना होता है। पाठक–श्रोता को इतनी फुरसत समय कहां कि वह कब तक या यूं ही मोती खोजता रहे। आज के जीवन और संघर्ष में छटपटाता तनाव उसकी समस्यायें उसे झकझोरती हैं। उसे तो एक क्षण में सान्त्वना देने के लिये एक छोटी सी भाव भरी लहर चाहिये, जो क्षण भर में ही उसे सराबोर कर उसके दग्ध अन्तःकरण को नहला कर चली जाय और उसे शीतलता प्रदान करें। ऐसी ही लहरें, उनकी हलचलें मनोज के काव्य में – लहराती नजर आती हैं। तभी विद्वान विचारक श्री कान्तिकुमार जैन ने मनोज के इस संग्रह के बारे में अपने विचार इस तरह व्यक्त किये –

'मनोज की कविता में हमारे राजनैतिक–सामाजिक जीवन के दौर की हलचलों का आभास मिलता है। ये हलचलें सामान्य जन जीवन को छूने वाली हलचलें हैं। आज के सामान्य जन को हमारे लोकतंत्र ने जो आशायें प्रदान की हैं और देश की राजनीति ने उसका जो मोह भंग किया है मनोज की कविता में उन सब का साक्ष्य है''।

मनोज ने अपनी बुन्देली कविता में अतुकान्त शैली का भी प्रयोग किया है, जो आज के दौर में प्रभावशाली भावात्मक सशक्त है:–

दुख–तकलीफें,
खतियों सी फिदकीं।
खाज सी खुजानीं।
और हम...
फोड़ा–फुन्सियों से रिसे।
जिन्दगानी भर चकिया से चले...
गेहूँ से पिसे।

अतुकान्त शैली की कविताओं में विशेषतः गेहूँ से पिसे/रात की कुठरिया में, कुलबुलात सपनों/जी में जी की रय गई/बेजोड़ अपनी ओर आकर्षित करने वाली कवितायें हैं। उनके जीते जागते व्यंगात्मक छत्तीस छक्के अपना ओजस्वी निराला प्रभाव छोड़ते हैं। आजादी और राजनैतिज्ञों की तह में पहुंचकर कवि सच्चाई को बड़ी सरलता से उजागर करता है।

अपनो प्यारौ लोकतंत्र है,
ओर छोर में कहूँ अन्त है,
तू भी राजा–मैं भी राजा
गोल चका सो एक यन्त्र है।
झाड़ा–फूंकी–अंट–संट सब–
जादूगर देखो स्वतंत्र है।

गीत विधा में उनके सरस नयी अभिव्यक्तियों से परिपूर्ण गीत जन मानस और आज के दर्दीले वातावरण को झकझोरते हैं जैसे –

आशा सें लगौ,
रातों सें जगौ,
सपनों जो ऊँचो अटा सौ–
फिर कौ जो भां रओ मठा सौ।

और फिर राजनीति के मैदान में हो रहे, खेल का देखता हुआ कवि चुप नहीं रह पाता। वह कह ही उठता है –

मटयारे हते–कजरारे हते
इकदम दिया से उजर गओ।
बादर में हँसे–बिजरी में हंसे
पानी से नेचें–उतर गओ।
अंगुरी खों दिखा–मुंदरी खों दिखा
धीरे से कोंचा पकर गओ।
जीवन की तरी–उखरी में डरी
मूसर से होकें कुचर गओ।

अन्त में समीक्षक श्री कान्ति कुमार जैन के शब्दों का समर्थन करते हुए मैं कहूँगा कि सचमुच मनोज ने एक नयी विधा अभिव्यक्ति देकर बुन्देली कविता का प्रतिनिधित्व किया है। मैं चाहूँगा कि महाकवि पदमाकर, ईसुरी के आगे नये किनारों को छूती–बढ़ती–मुड़ती हुई माधव शुक्ल मनोज की बुन्देली काव्य धारा पर शोध होना चाहिये।

माधव शुक्ल 'मनोज' की दो बुन्देली कविताएँ –

कछू तो कव...

कोऊ सें कछू तो कव?
रूख की तरां
पानी–आँधी–इंदियारे में–
चुपचाप काय बनें रव।
कोऊ सें कछू तो कव?

जो कछू टूट–फूट गओ है
सो ऊखों टूट जानदो
कौ कैत है अपने टूटे ठाट पै बैठ
विवश हो नेंची मूड़ करें खपरा छव।
कोऊ सें कछू तो कव?

सूखे पत्तों से झरत रये
डगालों से झुकत रये
नमक की ढेली और चटनी संग
सूखी रोटी खात रये
छाती में गदकौ मार
बिना बोलें–मन मारें
सब कछू काय सव।
कोऊ सें कछू तो कव?

रीझ–बूझ कछू नईयाँ
कौ है–कहाँ–की–कौ–को है
इते सें उते–उते सें इते
कौ आव–कौ कहाँ गव।
कोऊ सें कछू तो कव?

विवशता खों गरे में पहिरें
मनई–मन रुई सी धुनकत
देखत रय अपनी दशा
सोचत–समझत रय
जो होने हतौ सो भव।
कोऊ सें कछू तो कव?

वे टोरो चाहत हैं
कच्चो–रोठा फल
उनके हाथों में तुम
डगाल सी गूँगी हो
पंखा से झुलत–झुकत हो
उनकौ देखत रहत हो
मनमानों–करतव।
कोऊ सें कछू तो कव?

पराई पसीना की कमाई
वे ठाट से खात–पियत हैं
तुम मेदरे घाई काय दुबकत हो
तुम आनाकानी काय नहिं करत
ऊंसई कहत जात हो –
बेर–बेर हव।
कोऊ सें कछू तो कव?

अरे–अबै लौ तुम
माटी के गोंदा से
गोबर गनेस काय बनें बैठे हो
समय खों देखो–परखो
आँधियों के संग चलो–तूफान बनो
अधमरे होकें जिये तो का जिये
गिनती–गिनों और गुनों
कौन सें तुमने का लव का दव।
कोऊ सें कछू तो कव?

वे आहें दिन–कोनऊँ दिना
एक ऐसो लैकें उजयारो
सब चकचौंधिया जे–हें
बदल जेहे जा आज की दुनिया
ओकी बेडोल–हुलिया
और फिर सब कछू
"कल" हो जेहे नव।
कोऊ सें कछू तो कव?

उमर पांव–पांव

देह फूल सी खिली
पत्ता सी झर गई।
उमर–पांव–पांव
पगडन्डी होकें
न जानें–कहाँ खों –
चुपचाप निकर गई।

अगरबत्तियों सी सुलग
राख होकें रह गई
जी में जी की तपन
खाली हाथों में होऊत रही
मन की हवस–
कब सें हवन।

फूँकत रय शंख
बजाऊत रय गरुड़घन्टी
उतरत रई आरती
सुरसुरात रह गई
सांसों में हवा।
स्वाहा होत रय–
दुख के तिल–सुख के जवा।

– टी–४७ एक्सटेंशन–I, सेक्टर–२,
अवंती विहार, तेलीबांधा, रायपुर छ.ग.

□

कहावतों में अंतर्निहित कथाएँ

– सुधा रावत "क्षमा"

लोक साहित्य अनूठा और अपार है। ज्यों–त्यों विद्वजन इसे खोजते जाते हैं। उतने ही नवीन तथ्य उजागर होते जाते हैं। मौखिक होकर भी यह लिखित साहित्य से ज्यादा सुरक्षित है। कण्ठ–दर–कण्ठ प्रवाहित होती यह सरिता निरन्तर बहती रहती है।

लोक भाषा का उदय कब हुआ? इस प्रश्न का सीधा सा उत्तर यही हो सकता है कि जब मनुष्य ने बोलना सीखा, प्रकृति के साथ उसका प्रथम परिचय हुआ और आपसी संवाद की आवश्यकता महसूस की गई। तब मनुष्य ने अपने आसपास की वस्तुओं की उपयोगिता को देखते हुए उन्हें अलग अलग नाम दिये होंगे और एक दूसरे की देखा–देखी सम्बोधन का सिलसिला चल पड़ा होगा धीरे धीरे इन शब्दों ने अपना जाल फैलाया और जन्म हुआ बोलियों का और यही बोलियाँ आज क्षेत्र विशेष की पहचान बन गई हैं।

ये सच है कि बोलियों का निर्माण करने वाले लोग पढ़े–लिखे न सही पर विवेकशील और बुद्धिमान अवश्य थे। तभी तो उनकी हर बात उनका हर वाक्य इतना सटीक और सशक्त है कि युगों पश्चात् आज के आधुनिक युग में भी हम उनके द्वारा दिये गये नाम की सार्थकता पर प्रश्न चिन्ह नहीं लगा सकते हैं।

हिन्दी का प्रादुर्भाव तो बहुत बाद में हुआ। दूसरे शब्दों में कहें तो हिन्दी इन्हीं लोकांचलों की विभिन्न बोलियों का सुधरा या सुघड़ रूप है। ध्यान दें तो हम पाते हैं कि लोक बोलियों के कुछ लोक शब्दों का विकल्प हिन्दी में भी नहीं खोजा जा सका और उन्हें यथावत् हिन्दी में सम्मान के साथ महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

भाषा हो या बोली कहावतें–मुहावरें उसे चुटीला, आकर्षक और भावपूर्ण बनाते हैं। इसी कारण मुहावरे–कहावतों को भाषा का श्रृंगार कहा जाना न्याय संगत है। कठिन से कठिन वाक्य और जटिल से जटिल घटना को स्पष्ट करने का कार्य कहावतें बहुत ही सहज ढंग से करती हैं और लोक जीवन तो पूरी तरह इन कहावतों मुहावरों के आसपास ही घूमता है। यूं तो लोक जन–मानस में व्याप्त उक्तियां ही लोक्तियां हैं किन्तु विद्वानों का कथन है लिखित साहित्य में भी इनके प्रमाण मिलते हैं वैदिक काल में भी इनका प्रचलन माना गया है।

हर बोली की अपनी एक लटक, लोच और लय होती है। वही बोली को माधुर्य प्रदान करती है। बुन्देली इन मामलों में सबसे सम्पन्न और समृद्ध बोली है। खासकर मुहावरे–कहावतों में बिना यहाँ के लोगों का काम ही नहीं चलता, ये अहाने–कहाने बुन्देली बोली की जान है। वह बुन्देली ही क्या जिसमें बात–बात में अहाने–कहाने न हों? यही तो बुन्देली लटक और कहन का रसदार पहलू है। उदाहरण स्वरूप देखें बातचीत –काय भौजी "खीर में सोंज महेरी में न्यारी" अकेले–अकेले लडुआ उड़ रये? भौजी–अरे लला "तुम काय रूखो खात" आ जाओ लेओ "जे लो मोरे पावने तुमाओई तौ आये" मसखरी समझकर देवर–देख लो भैया "जेइ खवावें खीर जेइ चलाये तीर" तभी पास बैठे भाई बोलते हैं एक आद लडुआ और लैलो काय सकचा रये "मन–मन भावे मूढ़ हिलावै"

अरे आहाँ भैया – "खावै बारे कौ मन तौ ऐन है परसनहारी कौ मन तो होवे" अब भाभी कहती हैं अरे भैया खूब खाओ हम से का डराने "हम तौ ऊटन में न लादन में"। देवर–अरे आहाँ भौजी "जो कोउ राखे मान, वो मोरो भगवान" तुम तो हमाई बड़ी हो जब चाय कान पकर लो।

इस तरह इस छोटी सी बातचीत में आपने देखा हर बात कहावत और मुहावरे में हुई ये बातें बुन्देलखण्ड के हर गांव के हर घर का प्रतिनिधित्व करती है। मजे की बात यह है कि न सिर्फ महिलायें वरन् पुरुष वर्ग भी इन कहावतों का अपने बोलचाल में भरपूर प्रयोग करता है। इसका मुख्य कारण एक तो कहावतों की अधिकता है दूसरे उनमें निहित जल और दर्पण के सदृश्य स्पष्टता जो मनुष्य को अपनी बोली में उन्हें शामिल करने पर मजबूर करती है।

इन सारगर्भित सजीली और चुटीली, हर जुबान पर चढ़ी लोकोक्तियों का जन्म कैसे हुआ होगा? ये कहावतें कैसे बनी इनमें ऐसा क्या है कि एक नहीं, दो नहीं सारा समाज इनके पीछे छुपे संकेतों को समझ जाता है। इन जिज्ञासाओं के समाधान के लिये इनके पीछे छुपी कहानी जानना आवश्यक हो जाता है। हर कहावत के पीछे कोई न कोई कहानी जरूर है। अपने पूज्य माता पिता और पूर्वजों से सुनी कुछ कहानियों का यहां उल्लेख कर रही हूँ। जिनसे जन्म हुआ लोकोक्तियों कहावतों यानी बुन्देली अहाने–कहाने का।

एक गांव में एक किसान पति–पत्नि रहते थे। गाँव में डाकुओं का आतंक था किसी भी घर में गहने पैसा व धन नहीं बचता था। किसान की पत्नी बहुत होशियार थी उसने अपने सारे गहने व धन एक मूसल की खोखला कर के भर दिया और घर के एक कोने में रख दिया। दिन में एक दो बार वह मूसल को उठाकर देख लेती और भार से अन्दाजा लगाकर निश्चिन्त हो जाती।

एक दिन उसकी अनुपस्थिति में एक साधू महात्मा उसके घर आया। संयोग से उसके पास भी एक वैसा ही मूसल था। बैठने से पहले उसने उसी मूसल के बगल में अपना मूसल टिका दिया। कुछ देर किसान के साथ बातचीत करके वह चलने को उठा और

धोखे में किसान का मूसल उठाया और अपना वहीं छोड़ा और चला गया। तभी किसान की पत्नी घर आई अपनी आदत के चलते उसने मूसल उठाया तो कम वजन पाया उसने पति से पूछा यहाँ कोई आया था? पति ने सारी घटना बताई पत्नि समझ गई और भागी–भागी महात्मा के पास गई और उनके पास मूसल देख कर समझ गई। वह चतुर तो थी ही तुरन्त महात्मा जी के चरण पकड़ कर बोली – मराज हम घरै न हतै आप पधारे अकेलें हम आपकौ स्वागत सत्कार नईं कर पायें। अब आप वापस घरै चलौ। महात्मा जी ने उसे बहुत समझाया पर वह नहीं मानी और वापस उन्हें घर ले आई। महात्मा जी ने फिर से उसी जगह मूसल टिका दिया और बैठ गये। किसान की पत्नी ने महात्मा जी का खूब आदर सत्कार किया। जब महात्मा जी खाने–पीने में व्यस्त हुये तो उसने धीरे से मूसल बदल लिया। और महात्मा जी ने जाते समय जो मूसल उठाया वह उनका अपना वाला था और वे उस दम्पत्ति को आशीष देते हुए चले गये। कुछ दिनों बाद महात्मा जी फिर उसी गांव में आये तो उन्होंने उसी किसान के दरबाजे पर जाकर अलख जगाया। किसान ने देखा तो पत्नी से बोला – वेई मराज आये हैं भीतर बुला लें? पत्नी बोली थोड़ौ सौ चून दैकें टिरकाऔ। कैसी बातें करतीं हौ महराज का सोचें साधू महात्मा आयें कऊँ नाराज हो गये तौ? पत्नि तुनक के बोली – काल होत ते सो आज हो जायें नाराज ''हमें कौन उनसें मूसर आ बदलाउने''

इसी तरह एक धोबी के यहां एक कुत्ता पला था वह बड़ा ही स्वामी भक्त था। जब धोबी कपड़ा धोने घाट पर जाता तो वह उसे साथ जाता और धोबी की पत्नि खाना लेकर घाट पर आती और जब वह वापस घर जाने लगती तो वह रोटी की लालच छोड़ उसके पीछे–पीछे घर तक आता क्रि रास्ते में वह अकेली न रहे। पत्नि घर आकर खुद खाना खाती पर कुत्ते को खाना नहीं देती वह सोचती कि वह धोबी के साथ तालाब पर खा कर आया होगा। धोबी सोचता कि इसने घर पर खाना खा लिया होगा। इसी तरह चलता रहा और एक दिन भूख से व्याकुल होकर वह कुत्ता मर गया। तब उस धोबी के पड़ोसी ने कहा – धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का।'' और तभी से यह कहावत प्रचलित है।

इसी तरह एक और मजेदार कहावत का जन्म हुआ कुछ ऐसे – एक परिवार में दो भाई थे दोनों के पत्नियाँ थी बच्चे थे। पर जो भी काम करते थे वे मिलजुलकर करते थे। एक दिन बड़े भाई ने छोटे को बुलाकर कहा –

बड़े – छोटे काय न एक भैंस लई जाये?

छोटे – हओ बिल्कुल लइ जाये, अकेले बांदी जाये उसरा में

बड़े – आँ हाँ उसरा में नईं दालान ठीक है।

छोटे – ठीक है दालान में बंध जैहै। अकेलें ऊ खों दो है हम बड़ी बाल्टी में।

बड़े – नईं बिल्कुल नईं भैंस तौ दोहैं हम और बाल्टी में नईं दूध तौ गगरा मै दोव है।

छोटे – हओ दो लइयो अकेले मठा हमाई घरवारी भाँहे वई नैनू निकार है?

बड़े – कैसें निकार है तुमाई घरवारी तुमाई भावी भाँहै मठा वा सबसे बड़ी है और उसकों मठा बांटहै भी बई! ऐसें भर–भर कें!

छोटे – ऐसें कैसें सबरो मठा तौ तुमाये हिस्सा में चलो गओ हमे तौ तनकऊ नईं मिलौ लेओ जी हमने भैंस को खूंटा उखार दओ।

बड़े – तुमने भैंस कौ खूंटा काय उखारो भैंस हिरा गई अब काँ से मठा दूध आ है।

और इस तरह से दोनों में लड़ाई होने लगी और पहले हाथापाई और फिर लाठियाँ तन गई। थोड़ी देर बाद गाँव के सभी लोग एकत्रित हो गये और पूछा कि भाई क्या बात है क्या हो गया? वे दोनों एक दूसरे पर आरोप प्रत्यारोप लगाने लगे। पहले ने कहा – ई ने हमाई भैंस हिरा दई। दूसरा बोला – इनने मठा लै लओ, एक बोला भैंस यहां बंधेगी दूसरा बोला – नईं वहां बंधेगी तब गांव वाले न पूछे कि भाई पहले तो ऐ बतलाओ कि भैंस है कहाँ – वे बोले अबै कां है भैंस तो अबै लैने हैं। तो गांव के मुखिया ने माथा पीटा पर कहा ''भैंस न मठा, लठौ लठा'' तब से यह कहावत चल पड़ी।

प्राचीन काल में ब्याह शादियाँ नाइयों द्वारा ही तय कर दी जाती थी।। लड़की लड़का तो दूर घर परिवार के लोग भी लड़की–लड़का देखने नहीं जाते थे। इसीलिये विकलांग भी ठिकाने लग जाते थे। नाईयों की चतुराई तो प्रसिद्ध थी ही। उसका एक सटीक उदाहरण है –

''तुम जानत हम बड़े सियाने। बिन्नू के टेंट दिखियो भ्याने।''

कहावत की कहानी इस प्रकार है– एक लड़का था उसके कूबड़ निकली हुई थी। उसके माँ बाप शादी के लिये बहुत परेशान थे। उन्होंने अपने खबास कक्का को यह समस्या बतलाई उसने कहा आप चिन्ता न करें आपकी समस्या कोई बहुत बड़ी नहीं है। मैं उसकी शादी करवा दूंगा उसने एक दूसरे नाई की सहायता से उस लड़के का रिस्ता तय करवा दिया और लड़के की कूबड़ वाली बात उस नाई को भी नहीं बताई। जब शादी होने लगी और भाँवर के लिये दूल्हा मण्डप में गया तो वर पक्ष का खबास बोला –

हमाई चतराई काम कर गई। मड़वा नैचें कूबड़ गई।

तब वधु पक्ष का खबास कुछ इस तरह बोला –

तुम जानत हम बड़े स्याने। बिन्नू के टेंट दिखियो भ्याने।

और इस तरह एक और कहावत का जन्म हुआ। हमारे सामने जब कोई कठिन या बहुत उलझा हुआ काम आता है तो हम बरबस कह उठते हैं ये तो बड़ी टेड़ी खीर है। खीर का टेड़े होने से क्या सम्बन्ध है? खीर तो खाई जाती है और इतनी सीधी सादी होती है

कि जिस बर्तन में डाल दो उसी का आकार तक ग्रहण कर लेती है फिर खीर टेढ़ी कैसे हो गई? देखते हैं अगली कहानी में।

दो दोस्त थे। जिसमें से एक अन्धा था। दूसरा दोस्त अपने अन्धे दोस्त को सारी चीजों के बारे में बताता था। एक दिन दोनों बैठे हुये बातचीत कर रहे थे। बातों–बातों में खाने पीने की बात चल पड़ी और अन्धे के दोस्त में बताया कि आज वह खीर खा कर आया है अंधे दोस्त ने पूछा खीर कैसी होती है।

दोस्त बोला – सफेद–सफेद होत है।

अंधा बोला – सफेद–सफेद कैसी?

दोस्त बोला – सफेद यानी बगुला जैसी

अंधे दोस्त ने बगुला भी नहीं देखा था इसलिये बोला बगुला कैसौ होत। अब दोस्त की समझ में आया कि वह तो अन्धा है इसलिये बातों से इसको समझाना मुश्किल है। अब उसने अपने हाँथ से बगुला की आकृति बनाकर कहा – तुम हमाओ हाँत छू कै देखौ बगला ऐसौ होत। अन्धे ने उसके हाथ की आकृति टटोल कर कहा – ''अरे जा तौ बड़ी टेड़ी खीर है।'' और इस तरह टेढ़ी खीर कहावत का प्रचलन हो गया। आगे एक और कहावत के पीछे की कहानी पर दृष्टिपात करें?

एक गाँव का राजा बहुत ही कलाप्रिय था वह समस्त कलाकारों का सम्मान किया करता था। राजदरबार में अक्सर ही आयोजन होते और कवि कलाकार व संगीतज्ञ सम्मानित होते हैं। उसी गाँव में एक अतिनिर्धन व्यक्ति रहता था न तो वह कवि था कलाकार मगर चाहता था उसे भी राजदरबार में जाने और सम्मान पाने का अवसर मिले। उसकी पत्नि चतुर थी उसने एक लकड़ी का टुकड़ा लिया उसमें कुछ धागे बाँध कर उसे अपने पति को देकर कहा लौ जै साज और तुम राजदरबार में जाओ करे इै सें तुमाओ कलाकार बनने कौ सपनो भी पूरो हो जै और घर के लाने कछु धन भी मिल जैहै। पति बोला – पागल हो गईं का? राजा पूंछहैं कै जौ कौन सौ बाजो आय तो हम का कै हैं? और अगर उनने कई बजाओ फिर हम का करहैं?

पत्नि बोली – का कैने? कै दइयो कै जौ सामलबाजा आये जो सबके संगै बजत है? अकेले न बजहै पहले तो वह असमन्जस में पड़ गया फिर वह सोचा कि जो होगा सो देखा जायेगा। उसने अपना वाद्ययंत्र उठाया और राजा के दरबार में पहुंच गया। सबने अपनी–अपनी कला का प्रदर्शन किया जब इनका नम्बर आया तो राजा ने पूछा – ''हाँ भाई तुम क्या बजा रहे हो?'' बोले – ''हुजूर समिलबाजा'' राजा बोला ये कौन सा वाद्ययंत्र है? जरा बजाकर सुनाओ।

व्यक्ति बोला – मराज ई कौ नामई सामिलबाजा है जौ अकेले नई बज सकत। जे सब जने अपने अपने बाजे बजावें सौ हम ई खों बजायें देत'' राजा की आज्ञा से सभी वाद्ययंत्र बज उठे उनके साथ–साथ उसने भी वाद्ययन्त्र बजाने का अभिनय किया और अन्त में राजा से सम्मान और पुरस्कार लेकर घर लौटा और फिर वह राज दरबार का स्थाई कलाकार बन गया। और कहावत चल पड़ी ''हम तौ सामिल बाजा आयें''।

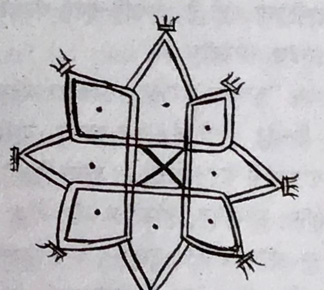
ऐसे ही एक गरीब किसान था उसकी झोपड़ी की छत टपकती थी। जब भी पानी गिरता उसकी झोपड़ी में रखा सारा सामान भीग जाता। इस कारण वह बहुत ही दुखी रहता था। हर समय उसे एक ही खटका लगा रहता, कहीं पानी न बरस जाये। एक दिन आसमान में बादल छाये हुये थे, वह इसी उधेड़ बुन में था और बार–बार झोपड़ी से बाहर आकर देख रहा था कि कहीं पानी तो नहीं बरसने लगा। तभी उसे लगा कि उसकी बछिया बाड़े में घूम रही है पत्नि शायद उसको बांधना भूल गई। उसने उसे पकड़ा और खूंटे से ले जाकर बांध दिया और वापस आकर कुटिया में बैठ गया रात भर उसे नींद नहीं आई। सुबह जब उठा तो घर के आगे भीड़ देखकर हैरान रह गया पूरा गांव उसके दरबाजे खड़ा था और शेर–शेर चिल्ला रहा था। उसने देखा तो खूंटी से शेर बंधा, उसे याद आया उसने रात में बछिया समझकर जिसे बांध था वह तो शेर है। लोग पूछने लगे – भैया तुमने इतनो बड़ो शेर बांध लओ कऊँ जौ तुमें खा जातो तौ का होतो? तुमें शेर से डर नई लगो?'

किसान बोला – भैया ''उतनों डर शेर को नइयाँ जितनौ टपका कौ है।''

इस तरह हर कहावत के पीछे कोई न कोई रोचक ज्ञानवर्धक या मनोरंजक किन्तु शिक्षाप्रद कहानी अवश्य है। आज भले ये कहानियाँ बिसरा दी गई पर इनसे जन्मी लोकोक्तियां, कहावतें, मुहावरे आज भी न सिर्फ, जीवित हैं बल्कि प्रासंगिक भी हैं। लोकोक्तियों का इतिहास बहुत पुराना हो सकता है पर इनकी सार्थकता न कभी कम हुई है न आगे हो सकती है जब तक लोक जीवन रहेगा तब तक इनका अस्तित्व और प्रचलन रहेगा।

– श्री हरिहर निकुंज,
एफ–७, गीत बंगले फेस-II, दुर्गेश विहार
जे.के. रोड, भोपाल

☐



कलश चौक **– नीरज सोनी, छतरपुर**

कहावतें : लोकजीवन का नीति शास्त्र

– अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'

समाज के अनुभवों के आधार पर कहे गये विशेष कथनों में प्रत्येक स्थिति तथा अवसर के अनुकूल विचार, सारगर्भित शब्दों में समास शैली में मिल जाते हैं। इन्हें ही सामान्य भाषा में कहावत कहा जाता है। जब हम ऐसे दोराहे या चौराहे पर खड़े होते हैं, जहां निर्णय के लिये अनेक विकल्प खुले हों तब सही मार्ग चुनने के लिये लोकज्ञान के यह चिन्तन सूत्र हमारे मार्गदर्शक और सहायक सिद्ध होते हैं। इनमें व्यावहारिक जगत का तत्वज्ञान है। यह जनसागर के दीप्तिमान रत्न हैं। अपनी सरस शैली, नुकीलेपन, चुटीलेपन तथा अनुप्रासिकता (तुकसाम्य) के कारण यह मानव मन पर ऐसे छा जाते हैं कि इनका विस्मरण सम्भव नहीं होता हैं

यह कहावतें ग्राम्य–कथन का ग्राम्य साहित्य नहीं हैं। यह लोक जीवन का नीतिशास्त्र है। यह संसार के नीतिसाहित्य का विशिष्ट अध्याय है। विश्व–वांगमय में जिन सूत्रों को प्रेरक, अनुकरणीय तथा उद्धरणीय माना गया है, उनका सार तत्व प्रकारान्तर से इनमें मिल जायेगा। समान अनुभव से प्रसूत इन कहावतों के अधिकांश सूत्र सार्वभौमिक सत्य होते हैं। कुछ सूत्र स्थानीय या आंचलिक वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालते हैं।

यह कहावतें जनमानस के लिये आलोक स्तम्भ हैं। इनके प्रकाश में हम जीवन के कठिन क्षणों में, लोकानुभव से मार्गदर्शन प्राप्त कर सफलता का मार्ग ढूंढते हैं यह वह चिनगारी है – जिसमें अनन्त ऊष्मा है, जो जनमानस को मति, गति और शक्ति प्रदान करती है। हम किसी भी प्रसंग की चर्चा छेड़ दें, उससे जुड़ी कहावतें लोगों की जुवान पर आ जाती हैं। यही इनकी लोकव्याप्ति का प्रमाण है। इनका साम्राज्य विस्तृत है। इन्हें पढ़कर इनके गढ़ने वालों की सूझबूझ, सूक्ष्म पर्यवेक्षण क्षमता तथा वाक्विदग्धता पर आश्चर्य होता है। वे सचमुच जीवनदृष्टा थे।

यह कहावतें नदी के उन अनगढ़ शिलाखण्डों की तरह हैं जो युग युगान्तर काल के प्रवाह में थपेड़े खा खाकर शालिग्राम बन जाते तथा शिवत्व को प्राप्त करते थे। इनमें लोक का बेडौलपन है, छन्दों की शास्त्रीयता नहीं है, तथापि इनमें काव्य का सा सहज प्रवाह है, ये सहज स्मरणीय हैं।

सर्वप्रथम ''कहावत'' शब्द पर विचार करना आवश्यक है। इसकी संधि–विच्छेद होती है, कह+आवत–यानी ''कहते आते हैं''। अर्थात परंपरा से कहते आये हैं। इससे मिलते जुलते कुछ भी शब्द हैं – सूक्ति, सुभाषित, लोकोक्ति और लोक सुभाषित। सूक्ति का अर्थ है, सु+उक्ति अर्थात, सुन्दर कथन। सुभाषित का अर्थ है सु+भाषित, अर्थात सुन्दर रूप में कहा गया। यह भी सूक्ति का पर्यायवाची हुआ। सूक्ति या सुभाषित प्रायः व्यक्ति या कृति विशेष का कथन होता है। जब यह कथन व्यक्ति की लेखकीय सीमाओं के ऊपर उठकर, पीढ़ी दर पीढ़ी अर्जित लोकानुभव तथा लोकज्ञान से परिमार्जित होता जाता है, काल की अग्नि में युग–युगों तक तपता है, तब कुन्दन बनकर इसका नाम हो जाता है लोकोक्ति। इस प्रकार लोकोक्ति तथा कहावत समानार्थक है। लोक–सुभाषित भी इसी कोटि का शब्द है। लोक साहित्य के मनीषि डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने कहावत, मुहावरा पहेलियाँ, खुन्स तथा औटपाय नामक लोक विधाओं को ''लोक सुभाषित'' में ही परिगणित किया है। इसमें ''खुन्स'' तथा औटपाय'' प्रकारान्तर से ''कहावत'' या लोकोक्ति के अंतर्गत रखना ही उचित है। ''बुन्देली लोक साहित्य के शोधकर्ता डॉ. रामस्वरूप श्रीवास्तव ''स्नेही'' ने इन तीनों को एक ही कोटि में रखा है।

कहावतों का जन्म कब कैसे हुआ – यह जिज्ञासा सदैव पाठक–मन को कुरेदती रहती है। कहावतों की यह परंपरा अत्यन्त प्राचीन है। यह विश्व के बुद्धि साहित्य, जिसे नीतिमूलक साहित्य भी कहते हैं, का ही एक अंग है। विद्वत्वर डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार भारत वर्ष में बौद्ध काल और उपनिषद युग से विकसित हुई नीति साहित्य की यह परंपर कौटिल्य–सूत्र तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र से अपेक्षाकृत अधिक संपन्न हुई। वैसे तो चाणक्य सूत्र सूक्तियों से भरा पड़ा है, किन्तु कहावतों के संदर्भ में, चाणक्य–सूत्र के दो सूत्र उल्लेखनीय हैं –

(१) श्वः सहस्रादद्य काकिणी श्रेयसी।

अर्थात – (आनेवाले) कल के हजार के आज की कोंड़ी श्रेष्ठ है। यानी उधार के हजार से नगद की कोंड़ी श्रेष्ठ है। (कोंड़ी उस समय न्यूनतम मुद्रा थी)

(२) श्वो मयूरादद्य कपोतो वरः।

अर्थात् आने वाले कल के (मँहगे) मोर से आज का (सस्ता) कबूतर श्रेष्ठ है।

इन सूक्तियों से नकद की श्रेष्ठता तथा उधार की हीनता निरूपित की गई है। वात्स्यायन के ''कामसूत्र'' में इसी बात को इस प्रकार कहा गया –

''वरः सांशयिकान्निष्कात् असांशयिकः
कार्षापण इति लोंकायतिकाः।

अर्थात् खटके वाले निष्क (सुवर्ण मुद्रा) से बिना खटके वाला कार्षापण (रजत–मुद्रा) अच्छा है।

उक्त सिक्के ईसा पूर्व पाँचवी शताब्दी में प्रचलित थे। इससे यह

निष्कर्ष निकलता है कि उक्त सूक्ति लगभग ढाई हज़ार वर्ष पुरानी है। सभी क्षेत्रों में उधार की अधमता पर अनेक कहावतें मिलती हैं। निश्चय ही उन पर इस प्राचीन चिंतन, जो कालांतर में लोकचिंतन बन गया, का अभाव है।

कहावतें प्रायः किसी न किसी घटना पर आधारित होती हैं। लोगों ने जैसा देखा वैसी ही कथा कही, सुनी। वह कथायें लोक साहित्य तथा साहित्य का भंडार बन गयी। इनमें जातक कथायें, हितोपदेश, पंचतंत्र तथा कथा–सरित्सागर की कथायें भी सम्मिलित हैं। इन कहानियों का चरम वाक्य अथवा सूत्र–वाक्य ही ''कहावत'' का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार किसी विशेष प्रकार की घटना की प्रत्यक्ष अनुभूति इन कहावतों का 'उत्स' हैं। वैसी ही घटनाएं जब भी, जहां भी घटती हैं, वह सूत्र स्मरण हो आते हैं तथा कहावत जनमानस में गढ़ती चली जाती है। पाली भाषा में ''सिद्धि जातक'' नामक एक जातक कथा का सूत्र इस प्रकार मिलता है।

जीवकञ्च स्व मतं दिस्वा, धनपालिञ्च दुग्गतं।
पन्थकञ्च वने मूढं, पापको पुनरागता।

अर्थात् जीवक नाम व्यक्ति मृत दिखा, धनपाली नामक दासी को (कमाई न करने के कारण पिटती हुई) दुर्गति में देखा, पंथक नाम व्यक्ति को वन में रास्ता भटककर मूढ़ की तरह देख कर पापक फिर घर आ गया। इसकी कहानी इस प्रकार थी – पापक नामक व्यक्ति को लोग उसके नाम के कारण चिढ़ाते थे। वह नये नाम की खोज में लोकदर्शन के लिये निकला। वहीं उसे जीवन नामधारी मृत, धनपाली दरिद्रतापूर्ण दुर्गति में तथा पंथक द्रिग्भ्रमित मिले। उसे लगा कि नाम से कोई अंतर नहीं पड़ता है। नाम के अनुरूप व्यक्ति का जीवन लोक में नहीं मिलता ह। इससे वह अपने नाम को ही ठीक समझ कर वापिस घर लौट आया।

यही कहानी बुन्देली कहावतों में निम्न पाठान्तरों में मिलती है – एक महिला अपने पति ठनठनराय का नया नाम ढूँढने निकलती है –

लकरी बेचत लाखन देखे,
घास खोदतन धन धन राय,
अमर हते ते मरतन देखे
तुमई भले मेरे ठनठनराय।

दूसरी महिला को अपने पति का नाम छुछइयाँ अच्छा नहीं लगता है। किन्तु लोकदर्शन के पश्चात् उसने अपना विचार बदल दिया –

मरे अमरजू हमनें देखें
धनपत माँगें भीक।
लच्छमी कंडा बीनत फिरतीं
जाँसें अपयँ छुछइँयई ठीक।

इसी भाव की एक कहावत राजस्थानी में भी मिलती है। एक महिला जिसके पति का नाम ''लैटूरा था, उसके लिये अन्य कोई नाम ढूँढने निकली।

अमरों तो मैं मरतो देख्यों, भाजत देख्यौ सूरो,
चोटर तो मैं खुसती देखी, लाछ बुहारै कूड़ौ।
गोरां तो गोबर चुगै, खसम भलौ लैटूरौ।

कहने का तात्पर्य यह है कि अनेक प्राचीन ग्रंथों की कहानियाँ उन पर आधारित कथाओं तथा कहावतों के रूप में आज भी लोक में जीवित हैं। लगभग ढाई हजार वर्ष पुरानी यह जातक कथा आज भी कहावत के रूप में मिलती है। इससे कहावतों की प्राचीनता स्वयंसिद्ध है।

इन कहावतों में जो विशाल भावराशि समाहित है वह किसी व्यक्ति नहीं, लोक की प्रत्यक्ष अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का सारतत्व है। व्यक्ति का अनुभव किसी विशेष घटना के सापेक्ष उसकी अपनी मनस्थिति में परिस्थिति में घटित होने से एकांगी हो सकता है, किन्तु वैसा ही अनुभव जब अनेक व्यक्तियों के साथ घटकर लोक का अनुभव हो जाता है तब उसे ''कहावत'' में गिना जाता है।

बड़ी–बड़ी पोथियों, काव्यग्रंथों, कहानियों और लोकगाथाओं में जो बात विस्तार से कही जाती है, वही कहावत में सूत्र–रूप में, चुने हुये शब्दों में कही जाती है। सात काण्डों वाली विस्तृत रामकथा को यह कहावत में कितने संक्षेप में कहा गया है –

इक राम हते इक रावन्ना,
इक ठाकुर ते इक बामन्ना।
उननें इनकी नार हरी,
इननें उनकी मार धरी।।
बात हती बस एतन्ना,
तुलसी नें लिख दऔ पोथन्ना।।

यह तो हुआ–कथा का संक्षिप्तीकरण। उसका सारांश तो ''धरमी जियै, अधरमी नासै'' जैसे सूत्र में मिलता है।

कहावतें केवल विद्वानों के शोध प्रबंधों तथा पुस्तकालयों की ही शोभा नहीं हैं, वे लोकमानस द्वारा स्वीकृत तथा जनता की जिव्हा पर सदैव विराजमान जीवित–संदर्भ है। कच्छ की कहावतों के संग्रहकर्ता श्री दुलेराम कारणी का यह कथन अत्यन्त सटीक है। कि ''सुभाषित जहाँ एक दुकान पर चलने वाली हुण्डी है, वहाँ, कहावत एक ऐसा राजमान्य लोक–सिक्का है, जो रास्ता चलते बाजार में बेधड़क चाहे जहां चलाया जा सकता है'' (कच्छी कहेवतो, पृष्ठ ५ का हिन्दी रूपान्तरण)

विद्वत्तर डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल का यह कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है ''लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुये सूत्र हैं। अनन्त काल तक धातुओं के तपाकर सूर्य

रश्मियाँ नाना प्रकार के रत्न–उपरत्नों का निर्माण करती है। जिनका आलोक छिटकता रहता है। उसी प्रकार लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के धनीभूत रत्न हैं, जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है। लोकोक्तियाँ प्रकृति के स्फुलिंगी (रेडियो–एक्टिव) तत्वों की भाँति अपनी प्रखर किरणें चारों ओर फैलाये रहती है। उससे मनुष्य को व्यावहारिक जीवन की गुत्थियाँ या उलझनां को सुलझाने में बड़ी सहायता मिलती है।'' (पृथ्वी पुत्र–पृ. १११)

शिल्प की दृष्टि से कहावतें अनेक प्रकार की हैं। गद्य में भी, पद्य में भी। तुकान्तता इनका सहज लक्षण है। एक पदीय, दो पदीय, तीन पदीय, तथा चार पदीब छंदबद्ध भी मिलती है। इनके काव्य को शोक–शिल्पियों ने गढ़ा है, इसलिये काव्य शास्त्र के आधार पर उनका मूल्यांकन उचित नहीं है। वे छंद शास्त्र से परे हैं।

इसी प्रकार कहावतें इस अंचल के विचारदर्शन रीति–नीति तथा संस्कृति को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इनमें लोक नीति, समाज व्यवहार के अद्‌भुतसूत्र हैं – जिन्हें पालन करके हम जीवन सार्थक कर सकें। दूसरी ओर अनेक कहावतें यहां की सामाजिक परंपराओं तथा उसके वैशिष्ट्य को समझने में सहायक है। इनमें वर्णित सामाजिक आचार, विचार, आग्रह तथा निषेध के आधार पर किसी अंचल की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किया जा सकता है।

इन कहावतों में वाणिज्य का विशद ज्ञान और सूक्ष्म तथ्यों का विवरण मिलता है।

सकल वस्तु संग्रह करै, 'नौंन गाँठ कौ खाय।
ताकौ मारौ बानियाँ, जरा मूड़ सें जाय।।

अर्थात् – संपूर्ण वस्तुओं का संग्रह और व्यापार करने वाला वणिक यदि नमक अपनी गांठ से (अपने पास संचित धन से) खाता है, तो वह जड़ मूल से नष्ट हो जाता है। अर्थात् वणिक, को अपनी कमाई से खाना चाहिये, संचित मूलधन से नहीं।

भुख सूखै, माथौ पचै, भटकत पाँव पिराँय।
दुख उधार बौ जानिये, करन तगादौ जाँय।

अर्थात – उधार देने का दुख वही जानता है जो तगादा (धन वसूल) करने जाता है। तगादे के लिये भटकते भटकते पैर दर्द करने लगते हैं, भूख समाप्त हो जाती है और सिर दर्द करने लगता है।

भाई, भतीजौ, भानजौ, भुइयाँ उर भूपाल।
इन पाँचऊँ कौं छोड़कें, अन्त करौ व्यापार।

भाई, भतीजा, भानजा, जमींदार और राजा इन पाँचों को छोड़कर (व्यापारिक हितों से अलग रखकर) अन्यत्र व्यापार करना चाहिये।

रत्ती रत्ती सादै, तौ द्वारें हाती बाँदै।
रत्ती रत्ती खोबै, तौ द्वार बैठकें रोबै।

अर्थात् रत्ती रत्ती भर (थोड़ी–थोड़ी) भी बचत करें तो एक दिन वह अल्प बचत इतनी समृद्धि प्रदान करती है कि दरबाजे पर हाथी बांधा जा सकता है। थोड़ा थोड़ा खोदेने वाला या नष्ट करने वाला व्यक्ति दरबाजे पर बैठकर रोता है। यानी व्यापार में कोई भी वस्तु व्यर्थ न जाय, हर वस्तु का भले ही वह रत्ती जैसे न्यूनतम परिणाम की हो, उचित उपयोग करें।

इसी प्रकार स्वास्थ्य तथा पथ्यापथ्य संबंधी कहावतों से यहाँ के यहाँ के निवासियों के आहार–विज्ञानी होने तथा लोक स्वास्थ्य परंपरा विज्ञान सम्मत होने के संकेत मिलते हैं। उदाहरण के लिये –

निन्नें पानूँ जे पियें, हर्र भूँज कें खाँय।
दूदन व्यारु जे करें, तिन घर वैद न जाँय।

अर्थात – जो (प्रातःकाल) निराहार (बासे मुँह) जल पीते हैं। हर्र भूनकर खाते हैं तथा रात्रि के भोजन में केवल दूध का सेवन करते हैं – वे सदा निरोग रहते हैं। उनके घर में वैद्य नहीं जाता है

जाकौं मारें चाँइये, बिना धार बिन घाव।
चौमासिन भर ब्यारू बाखौं, घुइयाँ पूरी खुआव।

अर्थात – जिसको बिना धारदार अस्त्र से प्रहार करके तथा बिना घाव के मारना हो (प्राण लेना हो) उसको चातुर्मास (बरसात के चार महीना) में रात्रि के भोजन में घुइयाँ की सब्जी तथा पूड़ी खिलानी चाहिये। उल्लेखनीय है कि बरसात के दिनों में जठराग्नि मंद पड़ जाती है। जिससे रात्रि में घुइयाँ–पूड़ी भोजन के बाद श्रम किये बिना, पचेगी नहीं। प्रतिदिन यही क्रम चलेगा, जिससे व्यक्ति का मरना अश्वयम्भावी है।

जाँय कै न जाँय, तौ जाँय चइये।
खाँय कै न खाँय, तौ न खाँय चइये।।

जब यह द्विविधा हो कि शौच जाँय अथवा नहीं तो अवश्य जाना चाहिये अर्थात् शौचेच्छा नहीं रोकना चाहिये जब यह द्विविधा हो कि भोजन करें अथवा नहीं तब भोजन नहीं करना चाहिए। अर्थात् पेट का कुछ हिस्सा खाली बना रहना स्वास्थ्य के हित में है।

भाँग धतूरा अर निगुन्डी। इनकों सेवै तौ रोवै रन्डी।

अर्थात – भाँग धतूरा तथा निरगन्डी नामक जड़ी बूटियाँ के सेवन करने वाले के सामने रन्डी भी रोती है यह कहावत लोक में प्रचलित पौरुष–वर्धक जड़ी बूटियों की ओर इंगित करती है। आजकल बाजार में अनेक सैक्स–टॉनिकों की भरमार है। लोक जीवन में प्रचलित यह टानिक, अनुसंधान का विषय है।

लोक स्वास्थ्य परंपरा की ऐसी अनेक कहावतें आहार विज्ञानियों के लिये शोध की संभावनाओं का द्वार खोलती है। जाति संबंधी कहावतें अत्यंत रोचक होती है। किसी जाति विशेष के आचरण जब समाज द्वारा मूल्यांकित होते हैं, तथा एक का अनुभव अन्यों के उस जैसे अनुभव से जुड़ता चला जाता है, तब

यह कहावत का स्वरूप ग्रहण करता है। इसमें जाति पर आक्षेप करने वाली कहावतों की संख्या अधिक मिलती है। कुल मिलाकर यह कहावतें उस जाति के चरित्र अथवा उसके बारे में जन सामान्य की राय को उजागर करती है।

ऐतिहासिक एवं स्थान संबंधी कहावतों से उस स्थान के संबंधित ऐतिहासिक अथवा सामाजिक सूत्र तलाशने में सहायक होती है। स्थानवाची कहावतों की संख्या काफी अधिक है, उनमें अधिकांश अनर्गल आक्षेप करने वाली है। इसमें उन्हें स्थान नहीं दिया गया है।

पर्यावरण, ऋतु ज्ञान एवं लोक ज्योतिष से इस क्षेत्र के मनीषी विचारकों के प्राच्य विद्या ज्ञान और लोक में उनकी अभिस्वीकृति का पता चलता है। घाघ तथा भड्डरी की कहावतें सभी अंचलों में लोक व्याप्त हैं।

कहावतों में व्यक्त अनुभव किसी एक क्षेत्र के निवासियों के ही हों यह मानना भूल होगी। चूंकि, यह कहावतें प्रत्यक्ष घटनाओं पर आधारित हैं, तथा वैसी ही घटनायें अन्यत्र भी घटती हैं या घट सकती हैं, इसलिये समान अनुभव की दिशा में, वैसी कहावत का प्रचलन अन्य अंचलों में भी पाया जाता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि अनेक घटनायें सार्वभौमिक होती है, अतः उनके निष्कर्ष भी सार्वभौमिक हं। परिणामस्वरूप एक क्षेत्र की कहावतों के समानान्तर विचारों की कहावतें–अन्य क्षेत्रों में भी मिलती हैं। इससे यह निष्कर्ष निकालना उचित होगा कि अधिकांश कहावतों आंचलित बोली या भाषा में होते हुये भी, सर्वव्यापी होती है। उदाहरण के लिये बुन्देलखण्ड अंचल में एक कहावत मिलती है–

सौ में फुली, सहस में काना, एक लाख में ऐंचकताना
ऐंचकताना करी पुकार, मैं मानी कंजा सें हार।
कंजा मानें बासें हार, जाकी छाती जमें न बार
जी कें नई छाती में बार, बासें तुम रइयो हुसयार।

राजस्थानी में यही कहावत निम्न प्रकार कही जाती है –

सो में सूर, सबहस में कांणूं, सबसें खोटौ एंचाताणूँ
ऐंचाताणूँ करी पुकार, कंजा से रहियो हुसियार

(राजस्थानी कहावतें – डॉ. कन्हैयालाल सहल, पृ. २१६)

बुन्देलखण्ड में एक कहावत है –

ससरार सुख की सार, जो रहै दिना दो चार।
जो रहे मास पखवार, हाथ में खुरपी बगल में फार।।

यही कहावत राजस्थान की ''अधूरापुरा'' कहावतों में निम्न प्रकार मिलती है –

सासरो सुख वासरो, पण दिनां तीन को आसरो।
रैस्यां मास छा मास, देस्यां खुरपी, खुदास्याँ घास।।

(राजस्थानी कहावतों – डॉ. कन्हैयालाल सहल, पृ. २४३)

बुन्देलखण्ड में एक कहावत है

आठ गाँव के साव हैं, बीस गांव के राव।
अपनौ काम जौ ना सरै, तौ ऐसी तैती में जाव।

यही भाव गढ़वाल की इस कहावत में मिलता है।

चार गौं का सयाणो, अठार गौं के रो,
मेरा काम नि आओ त, ऐसि तेसी मा जो।।

(गढ़वाली भाषा और साहित्य – डॉ. हरिदत्त भट्ट शैलेष पृ. सं. ३६०)

बुन्देलखण्ड में एक कहावत है –

झांसी गरे की फाँसी, दतिया गरे कौ हार।
नहीं ललितपुर छोड़िये, जब तक मिलै उधार।।

इसी के समानान्तर एक कहावत कुमाऊँनी भाषा में मिलती है।

झांसी फाँसि, भुडंग हार।
चौखुटी नि छोड़ौ मिलौ उधर।।

(कुमाऊँनी भाषा और उसका साहित्य, त्रिलोकन पाण्डेय पृ. ३७)

इसी प्रकार बुन्देलखण्ड में एक कहावत है –

अधजल गगरी छलकत जाय।
भरी गगरिया चुपकें जाय।।

इसके समानान्तर मराठी में एक कहावत मिलती है।

उथल पाण्याला खल खली फार,
व दुबले माणसाला बदाई फार।

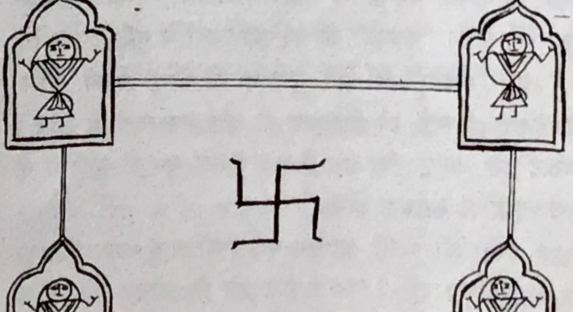
संस्कृत नीति साहित्य में यही कहावत (सूक्ति) निम्नप्रकार मिलती है।

संपूर्ण कुम्भो न करोति शब्दं
अर्द्धो घटो घोषमुपैति नूनम्
विद्वान्कुलीनो न करोतिगर्वम्,
गुणेविहीना बहुजत्पयान्त।

आवश्यकता इस बात की है कि देश के सभी अंचलों की लोक भाषाओं की कहावतों का तुलनात्मक अध्ययन करके राष्ट्रीय एकता के सूत्रों का अध्ययन किया जाना चाहिए।

– मण्डपम्, राठ रोड, उरई

□



कुन घुसूं पूनो

– नीरज सोनी, छतरपुर

उगतौ, उठतौ, उभरतौ, जौ नओ बुंदेली कवि : कल्याणदास साहू 'पोषक'

- वीरेन्द्र शर्मा ''कौशिक''

एक दिना हम घरै बैठे-बैठे नए उगते, उठते, उभरते और संवरते बुन्देली कवि चि. कल्याण दास ''पोषक'' के सद्य-प्रकाशित काव्य संकलन कौ अवलोकन-पठन कर रए ते। तबई हमाई नजर इन पंक्तियों पै पड़ी, जो हमें भौतई नौनी लगीं -

''साँसे अब फाँके करें, लाबर लड़ुआ खाँय।
चापलूस की का कबैं, मन्द-मन्द मुस्काँय।।
मन्द-मन्द मुस्काँय, बनें कलयुगी विधाता।
झूठ पाप छल-कपट, नीति सें गैरौ नाता।।
पोषक फैंके रोज, मामा शुकुनि से पाँसे।
चाल-बाज की चाल, समंझ सकवें ना साँसे।

सो हम जेई समझत कै आज के सामाजिक और राजनैतिक परिवेश कौ ऐसो चित्रण पढ़ कैं अपुन सोऊ तनक-मनक जरूर प्रभावित भए हुईओ। हम जा सोऊ सब जनन खों बताँय चाऊत कै डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त जैसे लोक-साहित्य के विद्वान ने ई संकलन के बारे में तौ यहाँ तक लिख दओ -

''मुझे बुन्देली की'' पोषक चेतना के प्रकाशन से ऐसा लग रहा है कि जैसे हमारी पीढ़ी में एक और बढ़ोत्तरी हो गई हो। कविवर कल्याण दास साहू 'पोषक' की रचना-धर्मिता निरन्तर प्रगति करती रहे। यही मेरी शुभकामना है।''

और विंध्यकोकिल भैया लाल व्यास भी जा कै उठे - ''पोषक चेतना के दर्शन करके मन में बुन्देली भाषा की सामर्थ समझ में आ रही है। बुन्देली मुहावरों, कहावतों का प्रयोग सहज, सजीली, सुरभित, शब्दावली, सटीक विचार प्रतिपादन, भावात्मक रूपों के विविध रूप में प्रतिपादन इस पुस्तक में हो सकता है। सुन्दर स्वाभाविक आत्मा से उभरी शब्दावली, उसका शाश्वत सत्य भरा प्रयोग ''पोषक'' जी की इस रचना में बृद्धि करता है। मैं श्री ''पोषक'' जी की बुन्देली के लिए उनकी लगन, श्रमशीलता, विचारों की विविधता के संग समरसता के लिए ध न्यवाद देना चाहूँगा। विश्वास है यह पुस्तक बुन्देली साहित्य के मूल्य-वृद्धि में सहायक होगी।''

ऐसी नौनी, प्यारी, आशीष भरीं बाणी अन्य अनेक विद्वानन की कलम सें कागज पै उतरती देख हम चि. पोषक खों अपनौ अशीष देवे के लानें चिठिया लिखे बिना न रै सके। ऊ चिठिया के मिलतनई उनकौ जुआव आगे लिखे शब्दन में मोय तुरतई मिलोः-

पृथ्वीपुर १०-१२-०२

परम श्रद्धेय पं. श्री कौशिक जी,

सादर प्रनाम।

आपकी आत्मीय दुलार और आशीर्वाद भरी पाती पाकैं हमाई छाती गज भर फूल गई। अपुन सबकी ऐसई किरपादृष्टि बनी रबै, सोउ हमाई नैया पार लग जै। इतनी खुशी हमें भई कै कतन नईं बनत। आपकौ आत्मीय स्नेहाशीष हमाये लानें वरदान के बराबर है।

अब तौ केवल आपके दर्शनन तथा चरन-रज माथे से लगावे की लालसा है, सो उतै के चुनाव निपट जाँय, ई के बाद आपकी सेवा में हाजिर होवे की कोशिश कर हौं। बैसें मैंनें तो फोन पै सम्पर्क करन चाओ किन्तु लैन खराब होनें सें लाचार होकें रै गओ। मैंने आपको नाव तौ सुनो हतो, किन्तु आप इतने महान हुइयो, जौ पतो चिट्ठी आवे के बाद लगौ।

आपके आशीष सें मैं अबै तक वंचित रओ। ई कौ मोय भौतई भौत पछताव हो रओ। सो मैं कौनऊ दिना फोन पै खबर दे कैं अपुन के दर्शनन खों जरूरई पोंचौं। ई चिठिया में कौनऊ गलती मोसें भई होय तौ लरका जानकैं माफ कर दइयो। हम नई जानत कछु, आपई हो सब कछु।

जै रामजी की, जै हिन्द। जै जै बुन्देलखण्ड।

आपको आज्ञाकारी सेवक

कल्याणदास साहू

जा चिठिया पाकें जैसई हमने चि. 'पोषक' खों फोन करके बुलाओ वे तुरतनई दूसरे दिना हमारे घरे आ गए और आउतनई जैसई हमाई उनसें भेंट भई, परिचय भओ वे झुककैं बोले - ''पांय लागूं। श्री कौशिक जू।''

''खुस रऔ, जुग-जुग जियौ। आऔ, विराजौ इतै ई कुर्सी पै। घर ढूंड़ने में कछु परेशानी तौ नई भई!''

''तनकऊ नईं। वौ टैक्सी वारौ सीधौ इतई तौ उतार गओ। को नई जानत अपुन खौं!''

''तुम ठीक आ गए। लो तनक सुस्ता लो, पानी पिऔ।''

''हओ साब! लै आऔ।''

बस! अब का हतो। हमनें जौन उद्देश्य सें 'पोषक' जी खों बुलाओ तो वौ पूरौ होत दिखानों। सो हमने उनसें कई कै आज अपुन-तपुन ई बैठक में आमने-सामने बैठ लें और कछु बतकाव

ऐसौ कर लें जी सें तुमाए जीवन व लेखन के बारे में जन–मन खों कछू बताओ जा सकै। वे तुरतई राजी हो गए और हमने बतकाव तुरतई ई तरां शुरू करो –

☐ ''अपुन पैंला तो जा बताऔ कै तुमाओ जनम् काँ भओ तो? जनम् तिथि, परिवार–परिचय, शिक्षा दीक्षा आदि को ब्यौरा संक्षेप में दइयो।''

उत्तर – ''मोरो जनम् डाँग के पिरथीपुर गांव में एक गरीब साहू परिवार में ३ मई सन् १९६४ खां भओ तो। दद्दा कौ नाव श्री घंसोले और बाई कौ श्रीमती ललतिया साहू हतो। हमाई तीन बैनें हैं, जो अपने–अपने घर की हो गई। मैं तो अपने भाई–बैनन में सबसें हलकौ हतो। सो सबकौ प्यार–दुलार मिलौ। दद्दा बचपन ई में राम खों प्यारे हो गए ते। सो मताई ने पालो–पोसो, पढ़ाओ–लिखाओ और सबके व्याव करे। उनकी मैन्त–मजूरी के बल–बूतें हम चारऊ भैया–बैन ठिकाने सें लग गए। बड़ी जिज्जी–जीजा ने सोऊ खूब मदद करी। भगवान की किरपा सें कक्षा ग्यारा की हायर सेकेण्डरी स्कूल सर्टीफिकेट परीक्षा पास करतनई झट्ट मास्टरी की नौकरी लग गई। व्याव भओ, जीवन–संगनी साजी मिल गई, जो डग–डग पै खूब सहारौ देत, दो लरका और एक बिटिया हो गए, एई बीच दसक साल में मैंने प्राइवेट बी.ए, एम.ए. भी कर लओ। रोटी–रोजी नौनी चल रई।

☐ लिखबौ कब सें शुरू भओ तो? पैली रचना कितै–कबै छपी ती? ऊकौ नाव?

उत्तर – लिखबौ सन् १९९० से शुरू भओ तो। बुंदेल भारती साहित्य परिषद, पृथ्वीपुर में पैली कविता पढ़वे कौ अवसर मिलो तो। झांसी के ''बुन्देलखण्ड मुक्ति मोर्चा'' नाम अखबार में पैली रचना २३ दिसम्बर १९९४ में 'बुन्देलखण्ड की महिमा' शीर्षक से छपी ती। लिखवे की प्रेरणा हमें ममियावरे सें मिली। हमाये झांसी वारे मामा श्री नाथूराम साहू बुन्देली के भौतई अच्छे कवि हैं। हमारे गुरुवर श्री रतिभानु तिवारी 'कंज' की बुंदेली रचनायें भी प्रेरक बनीं। पृथ्वीपुर की 'बुन्देल भारती साहित्य परिषद' ने भी मोय आगे बढ़ावे में खूब साथ दओ। हम जो कछु हैं, येई परिषद की बदौलत हैं।

☐ अबै तक कित्तौ लिखो? कित्तौ छपो? कित्तौ अनछपो रै गओ?

उत्तर – पैंला तौ खड़ी बोली में लिखत रए। फिर एक दार एक कवि–सम्मेलन में बुंदेली कविता पढ़ी, बा खूब सराही गई। बस तबई से बुन्देली में लिख रए। लिखौ तौ बिलात है, पै अबै तौ एकई किताब बुन्देली संकलन 'पोषक–चेतना' छप गई। माँ शारदा की कृपा रई और आप सब बड़े बुजुर्गन कौ आशीष बस। धीरें–धीरें जो लिखत जा रये, ऊयै छपवावे की कोशिश जरूर करत रैं।

☐ अपुन के साहित्य–सृजन कार्य में अपुनो दाम्पत्य जीवन कित्तौ साधक या बाधक रओ?

उत्तर – हमाये साहित्य सृजन–कार्य में दाम्पत्य जीवन पूरौ–पूरौ साधक है। काए कैं अगर आपकी बहू बाधक बनती तौ मोरी पैली पुस्तक 'पोषक चेतना' छपई न पाऊती। बा तौ हमाई हर कविता खौं पूरे ध्यान सें सुनत, मजा लेत औ खूब हलफुलयात है। बड़वाई सोई करन लगत।

☐ तुमें अपुनी कौन सी रचना खूब नौनी लगत?

उत्तर – रचनाकार के लानें तौ ऊकी सबई रचनायें नौनी होतीं। नौनी–बुरई रचना की पैचान तौ प्रबुद्ध वर्ग करतई। जौंन रचना। कृति की सराहना श्रोता या पाठकवर्ग करै समझ लौ बई कृति। रचना नौनी है। लेकिन आपनें प्रश्न करौई है, तौ बताउनें सोई आय। मोखों दो रचनायें भौत प्यारी लगतीं – पैली है 'गोरी धना किसान की' और दूजी है 'जाने कैसी हवा चली है' बानगी देखें–

१. भौतई मैनत करत रात–दिन गोरी धना किसान की।
सती सुलच्छन, छैल–छबीली, है बुन्देल महान की।।
लौलइंयन बा घर खौं लौटे, है बुन्देल महान की।।
लौलइंयन बा घर खौं लौटे, तोड़ हार न मानें।
साँदी करकै धरै रतेवा, सबई रखत के लानें।।
दुनियाँ भर कौ काम बटौरै नइयाँ फिकर थकान की।
भौतइं मैनत करत रात–दिन गोरी धना किसान की।।

२. जानें कैसी हवा चली है? उजरन लगी उनाई।
दसा देखकें आज खेत की आउत हमें न राई।।
हरे–भरे कछवारन में रुत जेठ मास–सी छा गई।
'पोषक' छटा बसन्तन की वा, जानें कितै बिला गई।।
कैसें पार लगत जा नैया? गुट्ट वीद गई ठाई।
दसा देखकें आज खेत की, आउत हमें न राई।।

☐ अपुन खौं अपने लेखन के काम में कभऊँ कछु दिक्कतें तौ आइअई हुइयें, उनें कैसें निनवारौ?

उत्तर – काम कौनउ होय, दिक्कतें तौ आउति अई हैं। लेखन में आई पै अपुन खौं धीरज और विवेक तौ दऔ भगवान नें। ऊसे सब ठीक हो जात। येइ के संगै आप सब बड़े–बूढ़न कौ आशीर्वाद सबई दिक्कतन खौं आसानी सें निनवार देत।

☐ अतीत की कौनऊँ महत्वपूर्ण बात? बीती बातें याद तौ आऊतीं हुइयें! कैसौ लगत उनें याद कर?

उत्तर – पैंला की का कानैं। ऊ बखत कौ समाज कछू औरई हतो। बुद्धिमान की बड़ी कदर हती। सबई जनें उनें बड़े आदर सें बैठारत ते। चार छै जनें बैठकें घण्टन तक ग्यान–ध्यान की चर्चा, अच्छी सी किस्सा–कानियों कात ते, नौनौ बतकाव कर ते। एक–दूसरे के सुख–दुख में शामिल होत ते और एक दूसरे को महत्व समझत

ते। अबतौ समव भौत बदल गओ। बदमाश आदमियन की कदर हो रई। सीदे–सच्चन खौं कोऊ पूंछत ई नइयाँ। का कइए, कछु नई कइ जात! सब ठीकई ठीक है। सब कछु बदल सौ गओ।

☐ अपुन लिखवे के लानें कौन सौ समव चुनत? रोज कित्तौ लिख लेत? बुन्देली पद्य के साथ–साथ का गद्य सोउ लिखत? रचना का शीर्षक या विषय चयन कैसें करत?

उत्तर – अब ऐसौ है, कै–जब जैसौ टेम मिलो सो थौरो–भौत ओई बखत् लिख लेत। बैसें भुंसरों और संझाबिरियाँ ब्यारी के बादई लिख पाउत। कभउँ–कभउँ तौ घर–गृहस्ती के कामन में ऐसे बीद जात कै हफ्ता के हफ्ता बीत जात और कछु नइं लिख पाउत। अबै तौ बुन्देली पद्यई पै कलम घिसत रात, गद्य–लेखन की ताँय अबै मन नईं गओ। फिर कभँऊ सोचें। रै गओ रचना के शीर्षक। विषय चुनवे की बात! सो बा ऐसी आय कै, मों शारदा की जैसी कृपा हो गई, जैसे भाव उठ गये, सो चला दई कलम।

☐ अपने जीविकोपार्जन और लेखन के समय में अपुन समायोजन कैसें बिठाउत?

उत्तर – देखौ हम आपखौं बतायँ – जीविकोपार्जन और लेखन, दोऊ काम एक तराँ से तपस्या के समान हैं। मोरी राय में तौ साहित्यकार बोई सफल मानोजात, जो दोइ कामन में समायोजन करत भए अपनौ काम सफलतापूर्वक कर लै।

☐ अतीत औ वर्तमान के लेखन में आए बदलाव के बारे में अपुन कौ मत का है? संक्षेप में बताव।

उत्तर – अतीत और वर्तमान के लेखन में भौत बदलाव आगओ। पैलाँ के कवि साहित्यकार गहन अध्ययन, चिन्तन–मनन करत ते। समुद्र में सें मोती खोज निकारत ते। अब तौ उनके पास समय कौ अभाव रात। गम्भीर अध्ययन, चिन्तन–मनन आदि के लानें उनके पास समय काँ है? वे तौ परस्पर टीका–टिप्पणी, व्यंग्योक्ति आदि में बीदे रात या फिर राजनेताओं के आगें–पीछें मड़रात फिरत। शायद कौनऊ पुरस्कार। सम्मान भटकवे कौ मौका मिल जाय। ईसें अबै के रचनाकार डूब कें कछू नई लिख पा रए। कछु जनें तौ सस्ती लोकप्रियता खौं मरे जा रए। वे लिख कम रए, दिखावा जादाँ कर रये। ईसें वे फिर कऊँ के नई रै जात।

☐ अपनौ मन उकेर कें ई भेंट वार्ता के बारे में जो कछु कैबौ चाउत हो तौ खुल कें कै डारौ। बड़ौ नौनो. लगौ।

उत्तर – ई भेंटवार्ता सें तौ हमें फायदाई–फायदा भयी। आपके दर्शनन की अभिलाखा हती सो वा पूरी भई। आमें–सामें बैठकें बतकाव करकें कौ सौभाग्य प्राप्त भओ। अच्छौ सत्संग भओ। मन की बात खुलकें कैवो कौ मौका मिलो। आशीर्वाद औ प्रोत्साहन मिलो। मोय तौ भौतई नौनो लगो।

☐ आज के लेखक/कवि/रचनाकार आदि पुरस्कार और सम्मान के काजें चाटुकारिता की हद तक जा रए, अपुन का कात?

उत्तर – जाना कइयो कि ऐसी काए कत? आज के कइयक रचनाकार पुरस्कार/सम्मान की फिराक में चक्कर काटतई रात। जादाँतर तौ जुगाड़ लगाकें सम्मानित भी हो जात। कछु जनन नें तौ साहित्य–साधना खौं रुजगार या धंधा ही बना लओ। ऊसें अच्छी कमाई सोई कर रए लेकिन वे आत्मसंतोष नइं पा पाउत। काए कै आत्मसंतोष है तौ सब कछु है। आत्मशांति सें बढ़कें कौनऊ सम्मान नंइयाँ। चाटुकारिता के बलन सम्मान पावे सें अच्छौ है कै बिना सम्मान के बने रवैं। जो व्यक्ति चापलूसी सें सम्मान पा भी लेत सो बाद में ऊकी बुरई गति होत।'' भगवान के घर देर है, अंधेर नइयाँ।'' अपुन तौ काम में विश्वास राखत, फल तौ ईश्वर के हाँत की बात है।

☐ अन्य कौनऊ बात, जो आप अलग सें कओ चाउत हों

उत्तर – हमाव तौ जोऊ कैबौ है कै आज समाज में जो नैतिक पतन हो रओ और अराजकता खौं जो बढ़ावा मिल रओ है, ऊमें सुधार जरूरी है। सबई जनें हिल–मिल कें रवैं। एक–दूसरे कौ महत्व समझवैं। देस की तरक्की में सबई जनन कौ सच्चे मन सें योगदान हो। युवापीढ़ी को सच्चे–सही मारग पै चलवे की सीख बड़न सें मिलत रय, अच्छे संस्कार मिलें। भ्रष्टाचार पै अंकुश लगै। विदेशी संस्कृति और कम्पनीनियन कौ करिया मौ करो जाय। हमाओ तौ जेऊ कैबौ है कै अगर ई देस की राजनीति और चरित्र सुधर जाय तौ पूरी देस सुधर जाय। वोटन और नोटन की राजनीति सें हमाए नेता कुट्टी कर लैहें सोई बिलात सुधार अपने देस कौ हो सकत।

अन्त में हमाई तौ सब जनन सें जेई विन्त बारी है कि मानव सेवा ही सबसें बड़ी पूजा है। ईसें साहित्य–सृजन ऐसो होवै जियै आम औ खास सबई जनें समझ सकें, अपने आचरण में ढाल सकें। गांधी दर्शन में भी येई बात पै जोर दओ गओ है। गोसाईं तुलसीदास ने सोऊ सदाचरण की शिक्षा दई। उनकी तौ एक–एक चौपाई में सीखई–सीखें हैं पै जन–मन पै कछू असरई नइ होत जबकि रोज घर–घर में रामायण यानी रामचरित मानस पढ़ो जात। पूज्य बापू महात्मा गांधी जी के ये शब्द ''साहित्य वह है जिसे हल जोतता किसान पढ़–समझ सकै तथा साक्षर जन भी।'' आजऊँ प्रासांगिक हैं।

हमाओ जौ बतकाव अबै बड़ाई रओ (समाप्त हो रओ) तौ कै भीतर सें स्वल्पाहार आगओ जिये पेट में डार हम दोई जनें विलग होकर अपने–अपने मारग पै चल दये।

– 'स्मृति'

१४३, कुरेंचानाका, मऊरानीपुर २८४२०४

☐

कैसे न्याय मिलै का कईये

- डॉ. जयप्रकाश मिश्र

हमाय राज में कछु दिनन से पंचायती राज लागू तौ हो गओ है। सोचो तो बड़ो नोनो भओ, अब तो सबरी योजनायें गाँवई में बन जाय करहै, और गाँव के सबई जनें बैठके समस्यन पर बिचार करकें उतई उन समस्यन हाँ निपटा लै हैं। पर ऐसो कछु नई भवो। ई पंचायती राज हाँ चलत भये दसक वर्ष होन चाऊत।

ई राज में इतनो तो भओ कै जो पंच सरपंची में अपनी बापौती बनायते, बा तो खत्म हो गई। कायसें सरकार ने हर जातन के संगे आदमन और लुगाईयन के लाने अलग-अलग वार्ड और पंचायतें तै कर दई। और जो तै कर बो भी जिलई से हो जात। ई सैं अब सबई जनें, जी की मंशा पंच सरपंच बनबे की होय ऊ बन सकत। ई व्यवस्था में आदमी जो सब कछु तो जानन लगे कि कौन वार्ड में की हौ चुनाव लड़ने हरिजन हाँ, कै पिछड़ा वर्ग के बारे हाँ कै हरिजन महिला हाँ लड़ने...। ओई हिसाब से फारम भरे जात। लेकिन का हो रओ के गाँवन के जो लम्बरदार हरे हैं। अपनी बापौती समझत न सरकार हाँ, वे अपने-अपने आदमन हाँ चुनाव लड़वाऊत। वे उनके आदमी या तो उनके हरवाये हुईयें या हरवाये की लुगाई हुईए, जीनें जीतबे के बाद उनई-उनई की चलबै, जितनो जो कछु पईसा सत्कार से पंचायतन हाँ मिल रओ, ऊ सब लम्बरदार खा लैबें। ऐसौ लो तो होत है कि हम हरवाये आएं, हम ओरें कोन कभऊ पड़न-लिखन आ गये। सो हमें पड़बो लिखबो तो आऊत नईयां हमाये लम्बरदार ने जा कई उतई ऊँठा लगा देत। काय में आ ऊंठा लगवाओ जो हमें कछु पतो नई रात आये। पूंछ हम सकत नईयाँ, वे तो जो कात कै इते आईये रे बसोरा, तनक ई पै ऊँठा लगा दईये, सो हम लगा देतते।

ऊतो का भओ कै एक दिना कोई की शिकायत पै कोनऊ अदकारी पूंछताछ करबै आओ तो कै कायरे बसोरा तैने इतनो पईसा ई काम कै लाने पंचायत सै निकारो तो, ऊ काम तो भवो नईयां, तै पईसा खा गओ है। तब मैने लम्बरदार से विनती करी कै मै तो पड़ो-लिखो हो नईयाँ आपई ने मोरो अंगूठा लगवाओ जाँ लगवाओ होय। अब तो अपुनई बताव इन अदकारियन हाँ कै का भओ। लम्बरदार ने जो कछु भी समझा बुझाके उने भेज दओ होय। वे गांव से चले गए। लेकिन मोय, अब नींद न आवे रात में, कै हे भगवान मैने ऐसे अंगूठा काँ-काँ लगा दये हुईएं, जीमें हम फंसे-फंसे फिरे?

जब हम रात कै जग रये तो सो हमाई लुगाई भी उठ बैठी, उर बोली कै कायै आ उठ बैठे। सो हमने अपनी लुगाई हाँ सब कछु सुनावो। हमाई लुगाई ने कई कै जो तो ठीक है। लरका-बारन की मारसीटें भी तो लम्बरदार लै गये ते बे काय हाँ लै गये तै। लुगाई की जा बात सुनके हम और घबरा गये। अब हम और सोच में पड़ गये। कै हे भगवान... हमाए लरका के संगे ई पुरा के तीन लरकन की मारसीटें और लम्बरदार ने मंगाई तो हती, पतो नईयां काय हाँ लई ती।

घोकत-घोकत हमाई लुगाई बोली कै तै ऐसो काम नई करत कै ऊँ जोन सैकट्री कहाऊत पंचायत को ऊसै काय नई पूंछ लैत, कछु पईसा-टका दे कें पूंछ तो ले। कै जै मारशीटे काय खाँ लम्बरदार ने लई ती। रात तो हमाई बरया कै निकरी, भुंसारे उठके मैं, सिकट्री साब के घरै पोंच गओ। सिकट्री साब हाँ जगाओ, सैकट्री साब बोले कायरे बसोरा कैसे भोर खाँ चलो आवो तै नींद खराब करबै। मैने सिकट्री साब कै तुरतई पांव बिनती करी और बैठ गओ। मैंने सिकट्री साब हाँ विनती करी कि साब ई बेर हमाये लो मूंग अच्छी हो गई आप लोगन की किरपा सें। सो हमने सोचीं कें आप ऊंसई बामुन देवता कहाऊत कछु दक्षणा दे आवों और आपको आशीर्वाद ले आओ जी में हर साल ऐसई पैदावार होत राबै। मूंग लैके वामुन देवता हमें कछु प्रसन्न से दिखाने, सो हमने तुरतई पूंछई लई काय सिकट्री साब मोए दो बातें पूछने तीं? सिकट्री साब बोले बोल बसोरा का पूंछने? मैने कई काय महाराज, वे अदकारी काय है आये ते? सैकट्री साब बोले तै लम्बरदार से न कईयै तो बताऊत, मैने कई काय हाँ बताहो। सो सैकट्री साब बोले के गाँव के पंचयन से और तो सें गाँव की सड़क बनवो जोन पईसा तुम औरन के अंगूठा से निकरो तो ऊकी सड़क नई बनी। लम्बरदार साब ने ओई पईसन की तो आ बा कार खरीद लई। ईसें कोनऊ ने शिकायत तो कर दईती ई सैं आबे अदकारी आये है। अबै तो लम्बरदार ने मना-मनु के उनै विदा कर दओं। लेकिन अब इन्क्वायरी तो हो तई है है। ऊमें तुम ओरें फस भी सकत।

इतना जैसई हमने सिकट्री साब के मों से सुनी हमाए नैचे की तो जमीन ई खिसक गई तै चिन्ता न कर हम ऊपर देख लैबी, ऊपर कै अदकारियन हाँ कछु लै-दै कें रफा-दफा करवा देवी। इतनी सुनकै हमें कछु राई में राई आई। फिर हमने सैकट्री साब सै कई कै अबै चार-पाँच मईना पैल, लम्बरदार साब हमाए मोड़ा के संगे-संगे तीन लरकन की मारसीटें सोई लै गये तौ कागजन पै दस्तखत कराके लरकन के। वे काय हाँ ले गये ते? सो सिकट्री साब बोले 'के अब बसोरा तो से का छिपावने है तो अब अपुनोई आदमी आय कईये न कोऊ सै। हरिजन-आदिवासिन हाँ एक स्कीम आई ती, कै हरिजन-आदिवासिन कै जोन लरका पड़े-लिखे बेरोजगार हैं उने चार लरकन पै एक मिनी बस चलावै कै लाने सरकार लोन दै सकत। जीमें कम ब्याज लगने और कछु छूट मिलने सरकार की तरफ सें। ऊके लानें लम्बरदार मारसीटें ले गये तैं। जोन लम्बरदार गाँव से शहर लो बा मिनी बस चला रये, बा बेई बस तो आये। सुनतनई हमाए काटो तो खून नई, ऐसी हो गई मोरी हालत। मैने सिकट्री साब सें पूंछी कै ऊको पईसा को चुका है? सो सिकट्री साब बोले कै लम्बरदार न चुकाहै तो तोरे लरका के संगे उन तीनऊ लरकन हाँ चुकावने आये हैं जी के नाम से मिनी बस हाँ लोन दओ गओ है। लम्बरदार हाँ तो काय हाँ चुकावने लोन, बे तो ऐई बात की रग रये एक कहावत है बसोरा कै जबलो ई धरती पै मूरख जिन्दा हैं तब लो पड़े-लिखन हाँ कोन भूखन मरने।'' इतनी सुनके मैं जैसई रुबायदो हो गओ। सो सिकट्री

साब बोले। तै घबरईये न, इन तीनऊ–चारऊ लरकन से कलेक्टर लौ चुपचाप एक अर्जी दिववा दे। कै हम ओरन के नाम पै चल रई मिनी बस पै लम्बरदार कब्जा करै है। तो कम से कम बा तुमाय लरका–बालन हाँ मिल सकत। ऊँ हाँ चलवाके ई को लोन को पईसा चुकाव जा सकत। नातर तो लम्बरदार हाँ सबरी योजनायें गाँव की पियत राने और संगे–संगे हरजनन हाँ मिलबे बारे फायदा भी ऐसई लेत राने। तुम औरन हाँ तो हरवाव को हरवाव बनो राने। संगे–संगे लरका–बारन पै इतनो करजा लद जाने कै ओई चुकाउत–चुकाउत जिन्दगानी निकर जाने।

इतनो सुनकें सिकट्री साब के पाँव छू के हमने चलबे की आज्ञा ले लई और सिकट्री लो से चल दये। गैल में सोचत–सोचत चले जा रये तै कै 'ई पंचायती राज में का सोची ती का हो गओ। इन लम्बरदारन के मारे काय हाँ न्याय मिलपावने, अदकारी सब इतई से मिलके खात–पियत रात। सरकार चाय जो कछु जनता के लाने करत राय। हमाई ओरन हाँ जब डरात राने और पड़ने–लिखने नईयाँ तो ऊ तो ऐसई होत राने। लम्बरदार की डेवढ़ी पै ऐसई जिन्दगानी हमाई और इन लरका बारन की निकर जानें।

— अम्बेडकर भवन के पीछे, किशोर सागर, छतरपुर

□

जड़कारे की जूड़ीरात

– भारतेन्दु अरजरिया 'इन्दु'

कबकी देत टिटई टिटकार,
जगारई सोये सूनें हार,
दिखावै कारे–घने पहार, जुँदइया कौ भओ उजयारौ।
कन्त गये हैं बसन्वारी खाँ, घर सूनों सारौ।
कोउ से नईं कइओ,
मनईं मन गुन लइओ,
हमाई सुन लइओ।
घरै हम नाँ रैबी, प्याँर में पर लैबी।
खाँसी सुनी डुकर की, मोंरी ऊँग उचट्टा लेबै।
कूकर भोंकत, देख बिलइया, खपरन कुर्रू देबै।
बिलारी खाँ नईं कोऊ खात,
चड़ाचड़ खपरा फोरैं जात,
समासई जड़कारे की रात, अटरिया सूनीं अँधयारौ।
कन्त गये हैं बसन्वारी खाँ, घर सूनों सारौ।
हार में तुम बसबे खाँ जात,
बसन्वारी नईं मोय सुहात,
न उन्ना लत्ता हमें जुहात।
काउ से नई कैबी, प्याँर में पर लैबी।।
जड़कारे की बड्डी रातें, मैं हौं परी अकेली।
कोउ न इतै परोसन गुइयाँ, नइयाँ नन्द सहेली।
जगनर होवै सब–सब रात,
बात जा मोखाँ नईं सुहात,
अकेलैं कये में लाज लजात; खटोली ढव्बा में डारौ।
कन्त गये हैं बसन्वारी खाँ, घर सूनों सारौ।।
हमाओ तन मन है कँप जात,
अँदेसौ मन में भारी रात,
हमैं जड़कारौ मारे जात
बसन संगै जैबी, प्याँर में पर लैबी।।
हमैं डार गये घरै अकेलौ, रखन्वारी में खोये।
जूड़ी रातन जुड़ा–जुड़ा कैं, हम सब रैन न सोये।
भइया आओ हमाओ लेन,
माव में कै दई जइयो ऐंन,
बड़ी है पूस–माव की रैन, काम खेती कौ अधका
कन्त गये हैं बसन्वारी खाँ, घर सूनों सारौ।
बिसर गई तुमखाँ अपनी बात,
अटरिया सूँनी खाट जुड़ात,
न कथरी बन पाये की स्यात,
जरावन धर लैबी, प्याँर में पर लैबी।।
दद्दा बरजै, बाई न आई, पर गओ कठिन कसालौ।
बर गये ई बूढ़े डुकरा कौ, चलो जात है चालौ।
अटरिया कै दै लये किवार,
कठिन कटबो ऐसैं दिन चार,
सुँगर, सेही से सूनें हार, तऊ तुम उठ–उठ ललकारैं।
कन्त गये हैं बन्वारी खाँ, घर सूनों सारौ।।
अविरथा तुम जुन्डी काँ जात,
भुंन्सराँ हरिया हाँके जात,
तुमईं खां, अब घर नई सुहात।
ताप कौ मिस लैबी, प्याँर में पर लैबी।।
साँकर खुली राखहै खिरकी, फेरा दै कैं लटकौ।
धुवाँ टपरिया काँ धर दइयो, आँख तरेर न हटकौ।।
हँस–हँस कात दिया की जोत,
तुमाऔ करो कछू नई होत,
विसादो हमखाँ कारी पोत, पैजना गरये पाँव डारौ
कन्त गयें हैं बसन्वारी खाँ, घर सूनों सारौ।
हँसी में हँसी–हँसी की बात,
ज टाठी परसी छोड़े जात,
'इन्दु' जड़कारौ जूड़ी रात!
बाँह हम गह लैबी, प्याँर में पर लैबी।

— २०, मैथिली शरण गुप्त मार्ग,
महोबा, (बुन्देलखण्ड)

□

बुन्देलखण्ड के भूले विसरे कवि

- कु. अन्नपूर्णा नामदेव

माननीय डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त ''बरसैया'' का एक शोध ग्रन्थ ''बुन्देलखण्ड के अज्ञात रचनाकार'' एक मील का पत्थर है। गत बीस वर्षों की गवेषणा व शोध का परिणाम है यह ग्रन्थ रत्न। इसमें परिशिष्ट के रूप में २८५ कवियों की सूची भी दी गई है। पर रत्नगर्भा वीरभूमि में ऐसे अगणित रत्न बिखरे पड़े हैं। माननीय श्रीनिवास जी शुक्ल के अनुसार खनिक बनकर ऐसे रत्नों को खोजना होगा। उनका परम सत्य है। स्वर्गीय पं. कृष्णदास जी (कृष्ण कवि) राज्य कवि बुन्देला दरवार पन्ना ने ऐसे करीब ८२ कवियों की सूची अपने साहित्य में दी है। यह आधार पन्ना राजमहल के सनद मानपत्रों व बीजकों के आधार पर हैं। माननीय श्री जयेन्द्र सिंह जी परमार भूतपूर्व प्रधानाध्यापक बुड़रख जो कि कर्मठ अन्वेषक हैं ने कई बार ऐसे अज्ञात कवियों का विवरण मेरे पिता श्री दीनदयाल को बतलाया है। इनका आधार पूर्णतः ऐतिहासिक है। इन समस्त ८२ कवियों का समय सन् १६४९ से लेकर १७५० तक का सम्भावित है। मूलतः यह बुन्देलखण्ड नर केशरी महराज छत्रसाल के समकालीन थे। इनकी छुटपुट रचनायें उपलब्ध हैं। इनमें से करीब ५२ कवियों को महत्वपूर्ण माना गया है। यह सभी जमीन से जुड़े कवि हैं जिनपर अन्वेषण होना अति आवश्यक है इनमें से कुछ का विवरण माननीय श्री लोकनाथ जी सिलाकारी ने अपने निबन्धों में दिया है। यह निबन्ध ''मध्यप्रदेश सन्देश'' के अंकों में उपलब्ध है। कुछ प्रसिद्ध, कुछ अज्ञात, कुछ विस्मृत रचनाकारों के बारे में जो भी तथ्य उपलब्ध हुये उनका विवरण प्रस्तुत है

१. भगवत भट्ट – महाराज छत्रसाल ने इन्हें झगरा ग्राम की जागीर दी थी, इनका साहित्य जगतराज भी यह पन्ना वालों के पास उपलब्ध है। शोध की आवश्यकता है।

२. मुरलीधर कवि – डौगरपुर के थे। इनके वंशज ग्राम डोगरपुर पन्ना में आज भी हैं।

३. देवराज कवि – देवपुर के निवासी थे छुटपुट साहित्य उपलब्ध है। इनके पुत्र रुद्रप्रताप भी कवि थे।

४. प्रहलाद कवि – ग्राम वनगांय के निवासी थे। इन्हीं के वंश में महाकवि मान उत्पन्न हुये।

५. हरिकेश कवि – जहागीराबाद के निवासी थे वाद में इन्हें मोधा में बसना पड़ा।

६. टेर कवि श्रीनगर के निवासी थे। महाराज छत्रसाल को इन्होंने एक दोहा पढ़कर सुनाया था वह इतिहास में प्रसिद्ध हैं। महाराज शिकार की आशा में श्रीनगर के पास ठहरे थे। एक भीलनी उनसे मिलना चाहती थी, सैनिकों ने मिलने नहीं दिया पर वहाँ पर कहीं से टेर कवि आ गये। वे अपने साथ भीलनी को मिलाने ले गये भीलनी ने बेर महाराज को खाने को दिये महाराज ने प्रेम से बेर खाये और भीलनी को माँ कहा, टेर ने एक दोहा रचा

''उत मथुरा इत श्रीनगर, उत सुदाम इत टेर।
छत्रशाल महराज जू, उत तन्दुल इत बेर।।

महाराज ने टेर को सम्मानित किया और भीलनी का अपने साथ पन्ना ले गये, उनके पुत्रों की रक्षा की।

७. बलभद्र कवि के पुत्र पंचम कवि को सम्मानित किया और घुरावली की बैठक लिख दी।

८. लालकवि – मढ़िया पिष्ठा के निवासी थे। इन्हें लालमणि भी कहते हैं यह ब्राह्मण कुल के थे।

९. विन्ध्य कवि – धरा ग्राम के निवासी थे थरा–बराचखेरा के समीप छत्रपुर जिले में ही है।

१०. रामदास – पलौठापुरा के निवासी थे।

११. छत्रसाल कवि – यह वंसेला पहाड़ी ग्राम के निवासी थे। एक बार छत्रसाल सें मिलने गये मिलने पर एक दोहा पड़ा –

''तू छतसल्ला नृपत है मैं छतसल्ला भट्ट।
तोह कम्पित दिल्ली धनी, मुहे सूमन को ठट्ट।

१२. गुलाब कवि – दर्जी जाति के यह कवि ग्राम दिलवारा टीकमगढ़ के निवासी थे। ऐतिहासिक पात्र नन्दन वैद्य (दर्जी) के यह भतीजे थे। नन्दन को छत्रसाल ''मम्मा जू'' कहते थे। यह सेना में वैद्यक करते थे। तथा महराज इन्हें पन्ना में ले गये थे। इनके पुत्र रामसेवक व हरीचरन थे। रामसेवक की जगतराज अपने साथ सूर्य मऊ ले आये थे वहाँ आज इनके वंशज पाये जाते हैं। पन्ना, नौगाँव, सागर, धमौनी, महाराजपुर, खरगापुर राजनगर तथा ओरछा में भी इनके वंशज थे।

१३. प्रचण्ड कवि – बम्होरी निवासी भट्ट समुदाय के थे सम्भवतः भट्ट थे।

१४. राजाराम – वमनी गांव के निवासी थे।

१५. रघुराज – धुराट ग्राम के निवासी थे।

१६. मण्डन – सुजानपुरा (खास) के निवासी थे।

१७. प्रहलाद दास – खड़गांय के निवासी थे।

१८. चिन्तामन – विल्हरा ग्रामवासी थे।

१९. मनोहर – ग्राम चिरौल के वक्सी थे

२०. मानकवि – ललितपुर उ.प्र. निवासी थे।

२१. मदनकवि – राठ उ.प्र. निवासी थे।

२२. मंजु कवि – ग्राम गढ़िया ग्राम निवासी थे।
२३. ज्ञानकवि – भाण्डेर (ग्वालियर) के वासी थे।
२४. प्रेम कवि – भटपुरा
२५. शिवराम – हिलगुवां के जागीरदार थे।
२६. शिवदयाल – पाटन निवासी थे।
२७. सेठमान – कदौल निवासी (संभवतः गुप्त)
२८. परमेश्वर – महोबा निवासी
२९. सुजान – सुजानपुरवासी प्रसिद्ध सुजान से अलग
३०. सुन्दर प्रसाद – रोगा निवासी
३१. घनश्याम – नयागांव निवासी
३२. नाथूराम – अजनर निवासी
३३. जालिम – बड़खेरा निवासी
३४. बृजकिशोर – हरदुआ
३५. बृजलाल – सम्पतई
३६. हरिकेश – मोदहा
३७. तुला राम – रोरा
३८. काशीराम – बुकर्रा
३९. दयाराम – जतारा
४०. मोहन कवि – जनवासा
४१. धनराय – लहार
४२. वंसी कवि – वंसरई
४३. देवमणि – देवगांय
४४. केशवराय – बड़ी मऊ निवासी थे।
४५. पंचम कवि – धुरावली निवासी थे।
४६. घासीराम – बर्हरा निवासी थे।
४७. निवास कवि – लौड़ी छतरपुर म.प्र.
४८. पान कवि – टुरया
४९. दानकवि – बसई
५०. हंसकवि – सिवड़ा
५१. जगत कवि – वार
५२. रघुराज – धुरा‌ट ग्राम

इसके साथ ही तीस कवि जिनके बारे में अति अल्प ज्ञात हैं, पर अन्वेषण से इनके बारे में अधिक जानकारी प्राप्त हो सकती है। इनमें से निवाज, पुरषोत्तम, विजयाभिनन्दन, हरीचन्द्र, गुलाल सिंह वक्सी, हिम्मत शाह, केशव कायस्थ, नरेश कवि, भानकवि जो मंत्री भी प्रसिद्ध थे। छत्रसाल के पिता के मित्र बखत बली भानशाल का जन्मांक बनाया था। बहुत से अज्ञात कवि प्रकाश में आयें वहीं मनोकामना है। माँ भारती का आंचल रत्नों से भरे यही अभिलाषा है।

– एम.ए. पूर्वार्द्ध,
महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर

□

अठवाईयाँ

– हरगोविन्द "विश्व"

पर पे करो भरोशो

जिया की का काऊ सें केंनें, चुप्पई चाप है रेंनें।
कोऊ दुखः बांटन को नैंयां अपनई खों सब सेंनें।।
उलटे बोलन मार डार हैं घाल कें अंकुश पेनें।
मूरखताई भई लो पर पें करो भरोसो तेनें।।
तन्नक सो जो जीवो विरथां का काऊ सें लेनें,
जे सें जो ले आये सबरो जईं को तई दे देंनें।।
एक घरी की बे ने मानें घरी जान लों गेंनें,
विश्व विचारे परे सोच में भौंरई से है मेंनें।।१।।

बुन्देलन के वंशज

बलम जू बैरी को शीश उतारो, जे ने बुरओ बिचारो,
जब देखों जब घुस आउत हैं सबरो बगीचा उजारो।।
मानत नैंयां बरसें हो गईं ज्वापई देव करारो
जो कऊँ अब ऊ रुआब दिखावे रन में जूझ पछारो।।
कच्छ कारगिर नेफा सीमा ने है तुमें पुकारो
तुम सन्नाने बैठे घरे हो जीरा जरत हमारो।।
बुन्देलन के तुम बंशज हो बड़ो है नाव तुमारो
विश्व किशोरी खों आज्ञा दो जो घर तुमई संभारो।।२।।

बिगरो भौत जमानो

सुसरो बिगरो जमानो कां लों ईये बखानों
प्रेम पंथ में सोई अड़चन है देख परख लओ जानों।।
नंग नंग रोंम रोंम बेईमानी नैया ठौर ठिकानो,
हर कोऊ हर खों ठगवे फिर रओ, सत्य फिरे भेरानो।।
सुन सुन के ई जग की बातें–मैं हो गओ दिमानो,
बिरथां भटके घरे सोऊते, साचो कड़ो अहांनो।।
जग के "छलीहाट" में हीरा माटी मोल बिकानो,
विश्व विचारे परे सोच में केवें किसा कहांनो।।३।।

रस की गगरिया

काय जू का मसकई कड़ जेहो, रामई राम ने लेहो
इत्ते अनचिनार हम हो गए, बिसरई बिलकुल जेहो।।
दो उंगरन सें पकर चुनरिया, घुंघटा नाहीं उठेहो,
खाके पान महोबा वारो तन्नक ने मुसकेहो।।
जेसे ऊ चंदा सरमावे, ऊ चंदा ने दिखे हो,
हम जैसे रूपयार सूदरे अंत किआऊँ ने पेहो।।
रस की भरी गगरिया सबरी की अंगना लुड़केहो
'विश्व' नीम से काय करये भये, अंतस की ने बतेहो।।

– मैथिल कुटी, ३१२, तिलकगंज, सागर

ओरछा राज्य की जागीर : भसनेह

- डॉ. रामनारायण शर्मा

विन्ध्येल क्षेत्र अति प्राचीन क्षेत्र माना जाता है। यहां प्राप्त पुरापाषाण काल के अवशेष इसके प्रमाण हैं। पूर्व में यह मौर्य, शुंग, गुप्त, वाकाटक, प्रतिहार, चन्देल, कल्चुरी एवं बुन्देलों के शौर्य एवं संस्कृति का क्षेत्र रहा। इतिहास में इसे चेदि, दशार्ण, जैजाकभुक्ति, जुझौति एवं विन्ध्येलखण्ड (बुन्देलखण्ड) आदि नामों से पहिचान मिली। जानकारी सीमाएं परिवर्तित होती रहीं किन्तु विन्ध्याटवी का यह एक अतिशय क्षेत्र ही बना रहा और विन्ध्येलखण्ड अथवा बुन्देलखण्ड के नाम से प्रख्यात रहा।

प्राचीन भारत में राजसत्ता गण—सत्ता समूहों में विभक्त रही जो एक स्वतंत्र राजसत्ता के सूत्रों के रूप में कार्य करते थे। इसके बाद मध्य युग के पूर्व केन्द्रीय राजसत्ता के सुचारू संचालन हेतु मंडलों की स्थापना हुई। चन्देलों के पूर्व प्रतिहार भी राजा बनने से पूर्व मंडलीक रहे। इनके पतन के बाद चन्देलों ने राज्य इकाई को मंडलों और विषयों (जिलारूप) में बाँट रखा था। इनकी नियुक्ति राजा स्वयं करता था। महाराजपुर (छतरपुर) का चामुण्डरा एवं सिरसागढ़ का मलखान एवं माहिल को उरई का सूबेदार व सामंत बनाने का इतिहास में उल्लेख है। इसके अतिरिक्त राज्य की रक्षार्थ विभिन्न किलों पर परमार्दि देव चंदेल ने किलेदारों को नियुक्त रखा था। जिनमें से गढ़कुंडार में शियाजू पमार किलेदार ने चौहानों से युद्ध किया और प्राणोत्सर्ग किया था। चंदेलों के चौहानों के युद्ध पर्यन्त पतनावस्था के कारण किलेदार ही स्वतंत्र राजा बन गये थे। गढ़कुंडार का नायब किलेदार खूबसिंह खंगार स्वयं यहां का राजा बन गया था जिसे युद्ध में मार कर सहनपाल ने खंगार सत्ता समाप्त कर अपने राज्य की कुड़ार को राजधानी बनाया। इस प्रकार चंदेलों के बाद बुन्देलों का विन्ध्येलखण्ड' में अविर्भाव हुआ। सहनपाल (१२३१–१२५९ ई.) के बाद आगे प्रताप रुद्र (सन् १५०१) राजा हुये जिन्होंने सन् १५३१ में ओरछा को राजधानी बनाया। इस प्रकार बुन्देलों का समस्त बुन्देला राज्य 'ओरछा राज्य' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रतापरुद्र का राज्य कालिंजर से कालपी तक फैला था। जिसके गौरव को आगे भारतीचन्द (सन् १५३१–५४) एवं मधुकरशाह ने बढ़ाया। मधुकर शाह (सन् १५५४–९२) के समय आगरा में अकबर शक्ति का केन्द्र था। ऐरछ, कालपी भांडेर, बिजपुर आदि क्षेत्र मुगलों के आधीन थे। मुगल बुन्देला राज्य की शक्ति को देख उसे विनष्ट करने की युक्ति में लगे रहते थे और प्रायः युद्ध होते रहते थे। पास पड़ौस के स्वतंत्र राज्य भी ओरछा राज्य का अतिक्रमण करते रहते इन परिस्थितियों का सामना करने हेतु सम्भवतः प्रथमबार महाराज मधुकरशाह ने अपने दरबार (जिसमें ८ दरवारी और अन्य होते थे) से विचार विमर्श कर अपने आठ पुत्रों में राज्य के सुचारू संचालन एवं रक्षा के लिये ओरछा राज्य को आठ जागीरों में बाँट दिया था। जिमें होरलदेव (पिछोर) इन्द्रजीत (कछौआ), वीरसिंह (बड़ौनी), हरसिंहदेव (भसनेह) प्रताप राव (कुचपहारी) रतनसिंह (गौरझामर) को जागीरदार नियुक्त किया था। रामशाह ज्येष्ठ पुत्र ओरछा के राज्याधिकारी थे। किन्तु कालान्तर में ये जागीरदार स्वतंत्र राजा बन गये थे। भसनेह को ओरछा राज्य की जागीर होने का गौरव प्राप्त हुआ था। जिसके विषय में इतिहासकारों ने अधिक उल्लेख नहीं किया। अतएव भसनेह और जागीर का उपलब्ध इतिहास व संदर्भ यहां देना ही उद्देश्य है

भसनेह — विन्ध्य श्रेणी की तलहटी में अवस्थित भसनेह ग्राम सुरम्य प्राकृतिक सौन्दर्य और अपने स्वर्णिम अतीत को समेटे असि और मसि के लिये प्रख्यात रहा। पर्वत मालाओं की चित्ताकर्षक हरीतिमा, करील, कैंथ, करधई के सघन वनों महुओं की मादक सुगन्ध युक्त यहां की बयार सभी को उन्मादित कर देती है। पोखरों के किनारे बैठे वकुल समूह, बगीचों में गुंजरित भँवरे, तालाबों में मौज मनाते चक—चकवा इस गाँव की छटा को द्विगुणित किये रहते हैं। तालाबों के तटों पर अपने अंडों और अंडजों की रक्षार्थ शोर मचाती टिहरी और रेंगते मगरमच्छ सृजन की पीड़ा और संहार की चिन्ता के दृश्य प्रस्तुत करते हैं। 'ग्राम भसनेह' के उत्थान एवं पतन की गाथा प्रस्तुत कर रहे थे। पहाड़ियों के नीचे निर्मित कच्चे—पक्के मकान हरी चादर में टकी जरी की गोटों के समान दिखाई देते हैं। कछौटा लगाए ललनाएँ, घूँघट के अन्दर के चन्द्रमुखी चेहरे, पथरीली गलियों के पत्थरों की चोटों से बेसुर बिछुओं को देख को सती हुई कहती है — ''बरजाय पथरया देस, हमारी कली मुरक गई बिछुअन की'' किन्तु सावन के झूलों पर हरदौल और अमान सिंह के राछरों की स्वर लहरी'' भलौ बुन्देला देसा के गुनगान के गीत भी मुखरित होते हैं सरसों और अरसी के पीले फूल फागुन के रंग बिखेरती हैं। वहीं पर ग्रीष्म की तपन, विजन वन इस ग्राम की उजड़ी व्यथा—कथा के अतीत का हगदर्शन भी आज कराते रहते हैं।

भसनेह ग्राम का अस्तित्व — बहुत पुराना है किन्तु इतिहास पटल पर इसका नाम ओरछेश महाराजा मधुकर शाह के समय उजागर हुआ। भू और राजस्व अभिलेखों में इस ग्राम का नाम अंकित हैं।

भौगोलिक स्थिति — भसनेह ग्राम मऊरानीपुर मार्ग के ३०वें कि.मी. पर एवं गुरसराय से ८ कि.मी. पूर्व २३° अक्षांस पर स्थित

टहरौली तहसील में अवस्थित है। झांसी के जिला हेड क्वार्टर ने मऊ मार्ग से लगभग ९५ कि.मी. तथा वरुआ सागर–धमना मार्ग से मात्र ७० कि.मी. दूर है। यही स्थिति वर्तमान ओरछा (म.प्र.) में भसनेह मार्ग की है।

पौराणिक संदर्भ – विन्ध्येलखण्ड अति प्राचीन खण्ड है। इसे आर्य एवं अनार्यों की स्थली के रूप में 'युद्ध–देश' के नाम से भी जाना जाता है। क्योंकि देवा–सुर संग्राम की यह भूमि रही। एक जनश्रुति है कि भसनेह दैत्यराज भस्मासुर की राजधानी रही। इसीलिये इसे ''भस्मदिह'' नाम मिला जो बाद में भसनेह से प्रसिद्ध हुआ (गजेटियर आफ इंडिया उत्तरप्रदेश पृ. ३३२) इस जनश्रुति को ठोस आधार पौराणिक इतिहास के वृतान्तों से मिलता है। सन् २३२ बी.सी. में अनार्य (आदिम) जातियों का यहां आधि पत्य माना गया। महिष कुल का महिसासुर इंदौर में महिष्मति से लेकर जबलपुर, बुन्देलखण्ड एवं मिर्जापुर के क्षेत्र का अधिपति था। जिसका वध विन्ध्यवासिनी देवी से हुआ था। भसनेह से २४ कि.मी. उत्तर में बेतवा तट पर स्थित ऐरच (एरकन्छ) हिरण्यकश्यप की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध है जिसका वध 'नरहरि' द्वारा बताया जाता है। देवासुर संग्राम के २–३ हजार वर्ष पर्यन्त तक बुन्देलखण्ड क्षेत्र में सुरासुरों के प्रभुत्व के प्रमाण पुराणों में देखने को मिलते हैं। ५–६ वीं शताब्दी ईसा पूर्व में भस्मासुर का राज्य विन्ध्याचल से उत्तरांचल तक होने का प्रमाण है। अलमोड़ा जिले में भस्मासुर का मंदिर और बुन्देलखण्ड में भैंसासुर की पूजा आदि व चबूतरे आज भी हैं। यही नहीं देव–शक्ति पीठ और आसुरी शक्तियों के बखान जनश्रुति की पुष्टि करते हैं। विन्ध्यवासिनी देवी (महिषासुर मर्दनी), रक्तदन्ता देवी सिद्ध नगर कोटरा (रक्त बीज हंता) भीम द्वारा वक्रदंत का दतिया में संहार, कुण्डेश्वर टीकमगढ़ में महादेव द्वारा वाणासुर मर्दन की कथाएँ इसकी पुष्टि करती हैं। अतएव भस्मासुर की राजधानी होने का सम्बन्ध 'भसनेह' ग्राम में जोड़कर देखना अतिशयोक्ति नहीं है यद्यपि वर्तमान में इसके प्रमाण नहीं हैं किन्तु मनियादेव मंदिर एवं कालिंजर कलुरस देत्यराज के स्थल आज भी हैं जो प्रमाण माने जा सकते हैं।

ऐतिहासिक संदर्भ – पौराणिक इतिहास के बाद आये जैन, बौद्धों के समय भसनेह ग्राम का उल्लेख अलग से नहीं है। किन्तु यहां से प्राप्त बौद्ध भग्नावशेष इसकी महत्ता दर्शाते हैं। चंदेलों के विस्तृत राज्य में भसनेह को विशेष स्थान अपेक्षित नहीं मिला भसनेह का नाम बुन्देला राज्य में देखने को मिला जो मधुकर शाह जू देव द्वारा इसे सं. १६३१ वि. में ओरछा की एक जागीर बनाने से प्रमुखतः से उभरकर सामने आया। इसी समय मधुकर शाह अपने गुरुदेव कन्हरदास को ३११ बीघा भूमि भसनेह मौजे में, पादारघ रूप में दिये 'ताम्रपत्र' से भसनेह प्रसिद्ध हुआ (कन्हरदास कृति पृ. १६) जिसका सही इस प्रकार है –

''श्रीन्हसिंहजू।। सही।।
श्री महाधिराज श्री महाराज श्री राजा मधकर साहि जू देव
ऐते पं. श्री गुरुदेव कन्हरदास कौ पदारथ दई मौजो
भसनैह मैं बीघा ३११ पायै जाहि कृस्नार्पण
स्वामित्र राई लिखत प्रमकुन्द सं. १६३१ वैसाख वदी ११ बुधे''

भसनेह जागीर – १६वीं सदी के पूर्वाद्ध में मुगलों ने बुन्देलखण्ड के राज्यों पर अपनी शक्ति संधान शुरू कर दिया था। अकबर को ओरछा राज्य की शक्ति एवं वैभव असहनीय थी। ओरछेश मधुकर शाह के धर्म–संस्कृति के आगे वह कई बार हतप्रभ हो चुका था। इससे अपमानित हो उसने मधुकर शाह को घेरने के प्रयत्न शुरू कर दिये थे। अतएव मधुकर शाह ने अपने राज्य की सुरक्षा के लिये पुत्रों का जागीरदार बना कर उन्हें सुरक्षा के दायित्व सौंपे। इसी प्रकार हरसिंह जू देव को सं. १६३१ वि. में भसनेह का जागीर नियुक्त किया था।

भसनेह जागीर के अन्तर्गत भसनेह, माधौपुरा, पलव... कई खेरे (छोटे–छोटे गांव) गुरसराय और उसके आस–पास के रियाँ, बामौर, पहारी ओर गढ़बई आदि गांव आते हैं। इन्हीं गांवों में उन्हीं दिनों निर्मित कल्यान राय जू का प्रभुत्व आज भी इन्हीं ग्रामों के मंदिरों पर है। गजेटियर आफ इंडिया उ.प्र. पृ. ३३२ पर हरसिंह जू देव के वंशजों द्वारा गढ़वई के किले का निर्माण कराने का भी उल्लेख है।

हरसिंह देव का प्रशासन – हरसिंह जू देव एक कुशल प्रशासक था। उसने भसनेह जागीर के उत्थान का भरपूर कार्य किया था। उसके राज्य में चहुमुखी प्रगति के साथ जन रक्षा और उचित राजस्व प्राप्ति हुई। उसको बाग–बगीचों के निर्माण तालाबों और कुँओं की खुदाई के निर्माण कार्यों का बड़ा शौक था। इसीलिये भसनेह की सुन्दरता द्विगुणित हो गई थी। इसी से ''चार तला चौरासी पोखर, बावन कुआ भसनेह के भीतर'' वाली कहावत तभी से चरितार्थ होती चली आ रही है। अपने पिता मधुकर शाह की भांति हरसिंह देव धर्म–निष्ठ और गौ–ब्राह्मणों का पुजारी था। भसनेह जागीर में उसने जगह–जगह हनुमान प्रतिमाओं की स्थापना की थी। जो आज भी ११ रूद्रों की भांति भसनेह की हर दिशा में रक्षा हेतु सन्नद्ध है। नृसिंह भगवान के मंदिर का निर्माण उसकी पितृभक्ति का प्रमाण है क्योंकि नृसिंह के मधुकरशाह मानने वाले थे। उनकी राजाज्ञाओं में 'श्रीन्हिसिंह जू' अंकित रहता है। वैसे वे कृष्णोपासक थे। यह मंदिर आज भी भसनेह में अपने पुरातन सत्य को लिये खड़ा है।

राउर (राजनिवास) – हरिसिंह देव ने पहाड़ी पर राज–निवास बनवा कर लगभग एक कोस के दायरे में परकोटा बनाया था। परकोटा के अन्दर राजपरिवार, दरबारीजन सम्भ्रान्त व्यक्ति रहते थे। परकोटा के बाहर कानकुन आदि रहते थे। 'राउर'

से नीचे आने का विशाल दरबाजा था जिसे कमानी कहा जाता था। इससे घोड़े पर सवार हरसिंह देव निकल कर जागीर की देखभाल करता था। राउर का आज नामोनिशान नहीं बचा।

हरसिंह देव की न्यायप्रियता – हरसिंह देव न्यायप्रिय था। वह प्रतिदिन जनता की शिकायतें सुनकर न्याय करता था। इसके लिये एक 'न्याय चबूतरा' बना था जो आज भी जागीर की स्मृति दिलाता है

सैन्यवल – ओरछा की भसनेह जागीर एरच में ऐची खां, भांडेर में नवाब और कालपी में अकबर का सूबेदारों से घिरी थी। अत: जागीर की सुरक्षा हेतु ५०० नियमित तथा अनियमित सैनिक, घोड़े, अस्त्र–शस्त्र से लैस सैन्यवल हरसिंह देव ने बना रखा था। वह स्वयं वीर–योद्धा था। इस प्रकार भसनेह जागीर दृष्टि से उत्तम थी ११९६१ एकड़ में फैली जागीर में २१४४ एकड़ कृषि योग्य भूमि थी। जिसका राजस्व ६४१९ रुपये था और जनसंख्या ११११ थी जिसमें सभी जाति वर्ग के लोग रहते थे।

समय के साथ मधुकर शाह की मृत्योपरान्त जागीरदार स्वतंत्र हो गये थे और ओरछा राज्य २२ स्वतंत्र सत्ता इकाइयों में बँट गया था। ओरछा का शासन रामशाह के दुर्बल हाथों में था। जिसके ऊपर मुगल बादशाह हावी हो गया था। ऐसी परिस्थितियों में वीरसिंह जू देव ने विद्रोह कर अबुल फजल का वध कर दिया था। इससे क्रोधित अकबर ने वीरसिंह देव को पकड़ने सेना भेजी। वह बड़ौनी से दतिया, भाँडेर होते हुये ऐरच आ गये। यहां हरसिंह देव ने ससैन्य उनका साथ दिया और शत्रु सेना के छक्के छुड़ा दिये थे। जिस की पराजय से वीरसिंह देव सकुशल घेरे से निकल गये थे। इसी बीच खड़गराय ने भसनेह पर आक्रमण कर उस पर अपना आधिपत्य कर लिया था। इसे सुन हरसिंह देव बची–खुची सेना लेकर भसनेह लौटा। युद्ध में हरसिंह सं. १६६० में वीरगति को प्राप्त हुआ। इससे क्रोधित वीरसिंह देव ने बाद में खड़गराय को लहचूरा के पास युद्ध में परास्त कर मार डाला और हरसिंह देव के पुत्र राव बसंतराय को राज्य सौंपा था। बसंतराय के नाम का उल्लेख चिरंजी लाल माथुर कृत वीरसिंह चरित (इंगलिश) मं दरबारी जनों में है।

नवीन संदर्भ – भसनेह की नवीन प्राप्त वंशावली से ज्ञात होता है कि इसके शासक 'राव' पद धारक बने जो राजा पद के बराबर माना गया। बसंतराव के बाद राव मन्नाजू, राव अर्जुन सिंह जिनके राव चन्द्रभान और मोकम सिंह पुत्र हुये जिनके वंशज आगे दिमान जंगजीत सिंह, गनेश जू, मेहरबान सिंह जिनके पुत्र राजा भवानी सिंह दतिया के राजा बने। इसका सम्पूर्ण विवरण लेखक की कृति ओरछा राज–वंश का इतिहास में मिलता है।

गरौठा विद्रोह – समय चक्र के साथ ओरछा राज्य का पतन, और छत्रसाल द्वारा वंगस विजय के बाद तृतीयांश राज्य मराठों को देने पर गुरसराय (भसनेह) मराठों के आधीन हो गया था बुन्देला इसे पसंद नहीं कर पाये और मराठों की मराठी एवं अंग्रेजों की ज्यातियों के विरोध में 'भसनेह' के बुन्देलों ने गुरसराय के केशवगढ़ में तैनात अंग्रेजी फौज पर आक्रमण कर उन्हें मार डाला और मराठों को खदेड़ कर आक्रमण कर उन्हें मार डाला और मराठों को खदेड़ कर बाहर कर दिया था। यह सन् १८५६ ई. में भसनेह के जंगजीत सिंह बुन्देला और पं. सुन्दरलाल स्वामी के नेतृत्व में हुआ था। गरौठा – विद्रोही हो १८५७ के क्रांति की पूर्व पीठिका सिद्ध हुआ था।

१८५७ क्रांति और भसनेह – इसी समय पूरे देश में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा से क्रांति की लहर चारों ओर फैल गई थी। झांसी में बिगुल बज गया था। अंग्रेजों का वध कर विप्लवी जहाँ–तहाँ मोर्चा ले रहे थे। भसनेह से पं. सुन्दरलाल के नेतृत्व में लड़ाके झांसी रक्षा की लड़ाई में गये थे। जहां से घायल हो सुन्दर लाल भसनेह लौटे और शहीद हुये। उनकी समाधि आज भी स्वामी कुआ के समीप बनी है। ठाकुर दिमान जंगजीत सिंह फरार रहे और बाद में पकड़े गये जिसको दिनांक १३ जुलाई १८५८ ई० को पकड़ कर २७ जनवरी १८६० ई. को दतिया में फांसी दे दी गई थी। (फाईल ४४ पी.एल.बी. रिकार्ड पृ. ६७) इसके बाद अंग्रेजों ने भसनेह को कम्पनी सरकार में मिला लिया था और भसनेह की जागीर इतिहास बन कर स्मृति के पन्नों में सिमिट गई थी।

भसनेह और स्वतंत्रता संग्राम – भसनेह ने अपने स्वाभिमान की लड़ाई कभी नहीं छोड़ी। अतएव अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध यहां के पं. बलराम शास्त्री ने संघर्ष का नेतृत्व किया था और जन–क्रान्ति की ज्वाला प्रगट की थी। सन् १९४७ ई. को स्वतंत्रता के गीत भसनेह के वातावरण में गूंजे जिनसे अतीत के स्वर भी प्रतिध्वनित हुये थे। यही है भसनेह का स्वर्णिम अतीत जिसकी नींव पर ही वर्तमान भसनेह का गौरव निर्मित हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ :

१. ठा. प्रतिपाल सिंह – बुन्देलखण्ड का बृहद इतिहास
२. पं. गोरे लाल तिवारी – बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास
३. पं. के.पी. त्रिपाठी – बुन्देलखण्ड का बृहद इतिहास
४. चिरंजी लाल माथुर – वीर सिंह चरित (इंगलिश)
५. कन्हरदास – डॉ. रामनारायण शर्मा
६. झांसी गजट   ७. इलाहाबाद गजेटियर
८. १८५७ क्रांति के विस्तृत सेनानी – डॉ. रामनारायण शर्मा
९. फाइल पी.एल.वी. रिकार्ड
१०. ओरछा राज–वंश का इतिहास – डा. रामनारायण शर्मा
११. नेशनल आर्काइड

– ६९५/३ रा.ल.बा. पार्क के पास
सिविल लाईन्स झांसी उ.प्र.

□

बुन्देलखण्ड : प्रथम स्वतंत्रता संग्राम और कार्ल मार्क्स

– महेन्द्र फुसकेले

''भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम'' यह नाम सर्वप्रथम इतिहासकारों में से जिस प्रसिद्ध इतिहासकार ने देकर स्वयं विश्व इतिहास में अपना इतिहास स्वर्ण अक्षरों में अंकित कर लिया है, वह इतिहासवेत्ता हैं कार्ल मार्क्स। बिल्कुल ठीक–ठीक कहा जावे तो कार्ल मार्क्स पहले स्वयं अकेले गैर भारतीय इतिहासकार हैं जिन्होंने भारत में सन् १८५७ के जंगे आजादी को उसका सही नाम देने की साहसपूर्ण ईमानदारी का जोखम उठाया था। साम्राज्यवाद से प्रभावित भारतीय इतिहासकारों का समूह और अंग्रेज एवं अन्य विदेशी इतिहासकारों का विशाल समूह इतिहास के पृष्ठों को ''सिपाही विद्रोह'' तथा 'गदर' नाम से घृणापूर्वक अंकित करता था। इन इतिहासविदों का पूरा प्रयत्न भारत के इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों का महत्व विश्व समुदाय के समक्ष भारत के स्त्री–पुरुषों के सम्मान और उनकी भागीदारी को गिराना है। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् अब तक छात्र–छात्राओं को यही इतिहास पढ़ाने का उपक्रम पाठ्यपुस्तकों द्वारा जारी है। कार्ल मार्क्स ने अपने एक अभिन्न साथी फेडरिक एंगेल्स के साथ मिलकर भारत के इतिहास के इन महान वर्षों पर अपनी कलम चलाकर अमर कर दिया था। पुस्तक का नाम है – ''भारत का प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम १८५७–५९'' पुस्तक के लेखक हैं कार्ल मार्क्स तथा फ्रेडरिक एंगेल्स। इतिहास की यह ऐतिहासिक पुस्तक कुल २५६ पृष्ठों की है।

भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में बुन्देलखण्ड की गौरवशाली भागीदारी रही थी, यह तथ्य सर्वमान्य है। मार्क्स ने बुन्देलखण्ड में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में क्रांति की मशाल को जलते देखा था – सात समुन्दर दूर लंदर शहर से। कार्ल मार्क्स ने तथा फ्रेडरिक एंगेल्स ने बुन्देलखण्ड के जिन नगरों, कस्बों तथा गांवों का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के सिलसिले में उल्लेख किया है। उनमें प्रमुख हैं – झांसी, ग्वालियर, सागर, बांदा, नागौद, जबलपुर, मिर्जापुर, काल्पी, बिठूर, मर्दानपुर, कुंच (कोंच), राहतगढ़, गढ़ाकोटा, ६ ग़ैलपुर, भरतपुर, कानपुर, फैजाबाद, लखनऊ, रीवा, आजमगढ़, गाजीपुर, बरैली तथा आगरा जैसे बुन्देलखण्ड लगे हुये जो नगर हैं, उनका उल्लेख भी मार्क्स ने विस्तार से किया है। बुन्देलखण्ड के योगदान को समझने के लिये इसे ध्यान में रखे जाने की आवश्यकता है। मार्क्स ने बुन्देलखण्ड के प्रथम स्वतंत्रता सेनानियों – क्रांतिकारियों – रणबाँकुरें – शहीदों का जिन शब्दों में सम्मान के साथ उल्लेख किया है वह आज भी महत्व रखता है। प्रमुख महानायक है –

लक्ष्मीबाई – झाँसी राज्य की रानी। राष्ट्रीय वीरांगना। सन् १८५७–५९ के भारतीय राष्ट्रीय मुक्तिविद्रोह की एक नैत्री। विद्रोही दस्तों का उन्होंने स्वयं नेतृत्व किया था। लड़ाई में मारी गई थी।

नाना साहब – भारतीय सामन्त। अंतिम पेशवा। बाजीराव द्वितीय का गोद लिया पुत्र। सन् १८५७–५९ के भारत के राष्ट्रीय मुक्ति विद्रोह का एक नेता।

तांतिया टोपे – प्रतिभाशाली मराठा जनरल। भारत के सन् १८५७–५९ के राष्ट्रीय मुक्ति विद्रोह का एक नेता। कानपुर–काल्पी और ग्वालियर के इलाकों में विद्राही दस्तों का नेतृत्व किया। सन् १८५९ में धोखे से गिरफ्तार हुआ और फांसी चढ़ा दिया गया।

हजरत महल – अवध की बेगम। भारत के सन् १८५७–५९ के राष्ट्रीय मुक्ति विद्रोह के समय अवध के विद्रोहियों की नेत्री।

बहादुर शाह जफर – अंतिम मुगल सम्राट। अंग्रेजों ने १८५७–५९ में उन्हें हटा दिया था। परन्तु भारत के राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम के समय विप्लवकारियों ने उन्हें फिर सम्राट बना दिया था। सितम्बर सन् १८५७ में दिल्ली की फतह के बाद अंग्रेजों ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और देश निकाला देकर वर्मा भेज दिया था।

कुँअर सिंह, अमर सिंह (कुँअर सिंह का भाई) फिरोज शाह, मामूखाँ, मौलवी अहमदशाह को भी ''राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम के विप्लवकारी'' सम्मानजनक शब्दों से उल्लेख किया है। मगर साथ ही कुछ का जिक्र घृणा के साथ किया है। इनमें प्रमुख हैं –

सिन्धिया – आलीशाह जयाजी बागीरतराव। ग्वालियर राज का मराठा राजकुमार। सन् १८५७–५९ के भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति विद्रोह के समय उसने अंग्रेजों का साथ दिया था।

होल्कर, तुकोजी – इंदौर राज्य का मराठा सरदार (ड्यूक) भारत के सन् १८५७–५९ के राष्ट्रीय मुक्ति विद्रोह के समय उसने अंग्रेजों का साथ दिया था।

मानसिंह (राजा) और रणवीर सिंह (राजा) भी राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम के गद्दार हैं। इन्होंने अंग्रेजों का साथ दिया था।

बुन्देलखण्ड का उल्लेख इसी नाम से मार्क्स ने आठ भिन्न–भिन्न पृष्ठों पर विभिन्न जगहों पर संदर्भ पर किया है। कालमार्क्स ने अपनी एक अन्य महत्वपूर्ण पुस्तक ''भारतीय इतिहास पर टिप्पणियाँ'' में भारत के लगभग हजार वर्षों के इतिहास पर छठी शताब्दी मध्य से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक की ऐतिहासिक घटनाओं पर क्रमबद्ध टिप्पणियाँ हैं। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में मार्क्स ने इस पुस्तक की पांडुलिपि तैयार की थी। इस पुस्तक में भारत पर होने वाले प्रथम विदेशी आक्रमण से लगाकर ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना और सन् १८५७ के विद्रोह के पश्चात भारत पर अंग्रेजों के पूर्ण अधिकार

तक का काल इसमें आ जाता है। इस ऐतिहासिक पुस्तक में भी कार्ल मार्क्स ने काफी विस्तार पूर्वक बुन्देलखण्ड में भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम सन् १८५७–५९ की विद्रोही लड़ाइयों का उल्लेख किया है। समाजवाद की विचारधारा से बैरभाव रखने वाले पूँजीवाद के पक्षधर और आज के दौर के हिन्दुत्व वाले फासीवादी बुद्धिजीवी एवं नेता अक्सर यह कहते – लिखते–थकते नहीं हैं कि कार्ल मार्क्स को भारत के विषय में तनिक भी ज्ञान नहीं था। समाजवाद का पौधा भारत की मिट्टी में इसीलिये पनपेगा नहीं – रुपेगा नहीं। इन अज्ञानी बुद्धिजीवियों–इतिहासकारों तथा नेताओं को कार्ल मार्क्स तथा फ्रेडरिक एंगेल्स की लिखी कम से कम उपरोक्त दोनों पुस्तकों को स्वयं पढ़ने का कष्ट अवश्य कर लेना चाहिये। दोनों पुस्तकें अंग्रेजी तथा हिन्दी भाषा में भारत में उपलब्ध हैं।

अंग्रेज शासक एवं साम्राज्यवादी अंग्रेज और भारतीय इतिहासकार यह फैलाने का प्रयत्न करते रहे कि सन् १८५७–५९ कुछ सशस्त्र सिपाहियों की महज एक बगावत थी। इस तथ्य को उन्होंने छिपाने की कोशिश की थी कि इस विप्लव में भारतीय जनसमुदाय के व्यापक अंग शामिल थे। मार्क्स और एंगेल्स ने ब्रिटिश शासकों के इस झूठ का खंडन किया था। इस शस्त्र संघर्ष को आरम्भ से ही एक राष्ट्रीय विद्रोह के रूप में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारतीय जनता की एक क्रांति के रूप में उन्होंने चित्रित किया था।

कार्ल मार्क्स ने इस बात पर गंभीर विचार किया कि वे कौन से बड़े कारक हैं जिनके कारण भारत अपनी राष्ट्रीय स्वतंत्रता अंग्रेज साम्राज्यवादियों के हाथों गवाँ बैठा है। यह कैसे हुआ कि भारत के ऊपर अंग्रेजों का आधिपत्य कायम हो गया? महान मुगल की सर्वोच्च सत्ता को मुगल सूबेदारों ने तोड़ दिया था। सूबेदारों की शक्ति को मराठों ने नष्ट कर दिया था। मराठों की ताकत को अफगानों ने खतम किया, और जब सब एक दूसरे से लड़ने में लगे हुए थे, तब अंग्रेज घुस आये और उन सबको कुचल कर खुद स्वामी बन बैठे। एक देश जो न सिर्फ मुसलमानों और हिन्दुओं में, बल्कि कबीले–कबीले और वर्ण–वर्ण में भी बंटा हुआ हो। एक समाज जिसका ढांचा उसके तमाम सदस्यों के पारम्परिक विरोधों तथा वैधानिक अलगावों के ऊपर आधारित हो ऐसा देश और ऐसा समाज क्या दूसरों द्वारा फतह किये जाने के लिये ही नहीं बनाया गया था? भारत के पिछले इतिहास के बारे में यदि हमें जरा भी जानकारी न हो, तब भी क्या इस जबर्दस्त और निर्विवाद तथ्य से हम इन्कार कर सकेंगे कि इस क्षण भी भारत को, भारत के ही खर्च पर पलने वाली एक भारतीय फौज अंग्रेजों का गुलाम बनाये हुए हैं? अतः, भारत दूसरों द्वारा जीते जाने के दुर्भाग्य से बच नहीं सकता और उसका संपूर्ण पिछला इतिहास अगर कुछ भी है, तो वह उन लगातार जीतों का इतिहास है जिनका शिकार उसे बनना पड़ा है। भारतीय समाज का कोई इतिहास नहीं है, कम से कम ज्ञात इतिहास तो बिल्कुल ही नहीं है। जिसे हम उसका इतिहास कहते हैं, वह वास्तव में उन आक्रमणकारियों का इतिहास है जिन्होंने आकर उसके उस समाज के निष्क्रिय आधार पर अपने साम्राज्य कायम किये थे, जो न विरोध करता था, न कभी बदलता था'' मार्क्स का यह गहन–चिंतन एवं वैज्ञानिक विश्लेषण अपने आप में पूर्ण ऐतिहासिक सबक देने वाला है। जड़–स्थिर–गैर प्रतिरोधी समाज व्यवस्था इक्कीसवीं सदी के स्वतंत्र भारत के लिये नुकसान पहुंचा सकती है। मार्क्स और एंगेल्स ने इस बात पर खास तौर से जोर दिया था कि इस विद्रोह ने न केवल भिन्न–भिन्न धर्मों–हिन्दुओं और मुसलमानों तथा जातियों के लोगों–ब्राह्मणों, राजपूतों और कहीं–कहीं सिक्खों को, बल्कि भिन्न–भिन्न सामाजिक स्तर के लोगों को भी साथ में ला खड़ा किया था। मार्क्स ने लिखा – ''यह पहली बार है कि सिपाहियों के रेजीमेंटों ने अपने यूरोपीय अफसरों की हत्या कर दी है, जबकि अपने आपसी विद्वेषों को भूल कर मुसलमान और हिन्दू अपने सामान्य स्वामियों के विरुद्ध एक हो गये हैं, जबकि हिन्दुओं द्वारा आरम्भ की गई उथल–पुथल ने दिल्ली के राज्य सिंहासन पर वास्तव में एक मुसलमान सम्राट को बैठा दिया है। जबकि बगावत केवल कुछ थोड़े से स्थानों तक ही सीमित नहीं रही है।''

मार्क्स और एंगेल्स की कृति – ''भारत का प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम १८५७–५९'' वास्तव में कार्ल मार्क्स तथा फ्रेडरिक एंगेल्स द्वारा अमरीकी दैनिक समाचार–पत्र ''न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून'' में प्रकाशित लेखों का संग्रह है।

भारतीय जनता के मुक्ति संघर्ष से मार्क्स तथा एंगेल्स की हर प्रकार से सहानुभूति थी। वे आशा करते थे कि विद्रोह विजयी होगा। फिर भी वे जानते थे कि उसकी सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि भारतीय जनता के तमाम अंग खास तौर से दक्षिण और मध्य भारत में, हर प्रकार से उसका समर्थन करते हैं या नहीं। किन्तु ऐसी व्यापक कार्रवाई न हो सकी।

मगर अंत में मार्क्स की भविष्यवाणी सच हुई। भारत पन्द्रह अगस्त उन्नीस सौ सैंतालीस को अंग्रेजों की दास्ता से मुक्त होकर स्वतंत्र देश बन गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

१. भारत का प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम १८५७–५९। लेखक – कार्लमार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स। पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि. नई दिल्ली।

२. भारतीय इतिहास पर टिप्पणियाँ। लेखक – कार्ल मार्क्स। पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि. नई दिल्ली।

३. भारत का इतिहास, लेखक – रोमिला थापर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली – पटना

– ९/७, रुक्मणी बाई व्यावसायिक विहार,
नमकमंडी कटरा बाजार वार्ड, सागर, म.प्र.

☐

बुन्देलखण्ड की पूर्व रियासतों के डाक टिकट

प्रस्तुति – डॉ. लखन लाल खरे
मूल लेखक – गोपीचन्द श्रीनागर

{प्रस्तुत आलेख के मूल लेखक श्री गोपीचन्द श्रीनागर हैं, जो मूलत: बालोपयोगी साहित्य–सर्जक के रूप में विख्यात हैं। इनकी लगभग एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी शीघ्र प्रकाश्य पुस्तक – ''बुन्देलखण्ड की पूर्व रियासतों के डाक टिकट'' के कुछ अंश दैनिक जागरण झांसी के ०३ अगस्त, ७, १४ व २१ सितम्बर २००३ के अंकों में प्रकाशित हुए थे। उन्हें अंशों को संकलित कर 'बुन्देली बसन्त' के पाठकों के लाभार्थ मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ। यह सर्वथा नवीन, मौलिक एवं शोधपरक जानकारी है 'बुन्देली बसन्त' के लिए श्रीनागर एवं 'दैनिक जागरण' के प्रति हार्दिक आभार सहित ली गयी है – डॉ. लखन खरे}

जब विश्व में जगह–जगह और सम्पूर्ण भारत में विजयी अंग्रेज अपने दर्प, अपनी राष्ट्रीयता अपने प्रभुत्व का डंका पीट रहे थे और इस मामले में तमाम डाक–टिकट बढ़–चढ़कर इस्तेमाल किये जा रहे थे, जब भारतीय जनमानस सहम गया था और उससे महारानी विक्टोरिया, जार्ज पंचम की जय जबरन बुलवाई जा रही थी, तब जागीरदारी रियासतों ने योजनाबद्ध तरीके से अपने साहस, अपनी विलक्षण सूझबूझ से अपने मौलिक डाक टिकतों के जरिये भारतीय कला, संस्कृति, भारतीय लिपियों की न केवल रक्षा की, बल्कि इन्हें खुद प्रचारित भी किया। हाथ लगे इस मौके का उन्होंने भरपूर लाभ उठाया। भारत में सन् १८३७ ई. में ईस्ट इंडिया कंपनी सरकार ने पोस्ट ऑफिस एक्ट बनाया था, लेकिन लगता है कि देशी रियासतों ने इस कानून की धज्जियां उड़ाते हुए अपनी स्वदेशी एवं सांस्कृतिक डिजाइनों पर डाक टिकट निकाले थे, ब्रिटिश डाक टिकटों की डिजाइन की नकल को पूरी तरह से नकार दिया था। ये जागीरदारी रियासतें चाहतीं तो अपने डाक टिकटों पर भी महारानी विक्टोरिया, राजा एडवर्ड सप्तम और जार्ज पंचम के चित्र छापकर अंग्रेजों की चाटुकारिता कर सकती थीं, पर उन्होंने घोर अंधेरे में दीपक जलाया और भारत की शान को बरकरार रखा। कहा जा सकता है कि विदेशी शासन के आपातकाल में विचार–स्वातंत्र्य के अपने हथियार (अधिकार) का देश–हित में खूबसूरती से उपयोग किया और अंग्रेजी–शासन की लीक से हटकर चले। इम्पीरियल पोस्ट की व्यवस्था में, अड़चन पैदा करते हुए केवल दो–चार सौ रुपये की सालाना डाक–टिकट बिक्री पर इन राज्यों ने अपने डाक टिकट निकालना जारी रखा था, जबकि देशी रियासतों की जनता को, जहां डाक–संघ व्यवस्था नहीं थी, अपनी डाक राज्य सीमा से बाहर भेजने के लिए ब्रिटिश इण्डिया के डाक टिकट के साथ अपने राज्य का डाक टिकट भी लगाना पड़ता था। इस प्रकार अपने डाक टिकट निकालने की शान के लिए वहां के लोगों को दोहरा डाक शुल्क भार खुशी–खुशी उठाना पड़ता था। भारत में कम्बीनेशन कवर (एकजुट लिफाफों) के ये प्रासंगिक उदाहरण हैं। इसका श्रेय वहीं की जनता को जाता है।

ग्वालियर – रानी विक्टोरिया के समय इस डाक संघ राज्य में सन् १८८५ ई. में, रानी विक्टोरिया के ब्रिटिश भारत के डाक टिकटों पर ऊपर देवनागरी तथा नीचे रोमन लिपियों में 'ग्वालियर' शब्दों की अधि–छपाई करके जारी किया गया। चाटुकारिता करना चाहता तो तत्कालीन गवालियर राज्य केवल रोमन लिपि में ही अधि–छपाई करा सकता था और अंग्रेजों के प्रति अपनी वफादारी दिखा सकता था लेकिन उसने ऐसा समर्पण नहीं किया। ब्रिटिश इण्डिया ने अपने डाक टिकटों पर कभी भी देवनागरी लिपि को स्थान नहीं दिया था। 'ग्वालियर' के सर्विस (शासन–सेवार्थ) डाक टिकटों पर केवल हिन्दी में अधि–छपाई मिलती है। देवनागरी में अधि–छपाई से ये डाक टिकट गवालियर के चहेते बन गये थे, उन्हें अपने लगते थे।

ब्रिटिश सरकार एवं सिंधिया महाराज के बीच २८ अप्रैल सन् १८८५ ई. में डाक संधि हुई थी। ब्रिटिश इण्डिया के डाक टिकट लन्दन की मैसर्स थामस डे ला रूइ एण्ड कम्पनी छापती थी, जिस पर अधि छपाई का काम सन् १९२७ ई. तक गवर्नमेंट प्रिंटिंग वर्क्स, कलकत्ता में होता था। इसके बाद यह काम सिक्योरिटी प्रेस, नासिक करने लगा था। इम्पीरियल पोस्ट ऑफिस इन डाक टिकटों को लागत मूल्य (कागज, छपाई, अधि–छपाई एवं माल भाड़े आदि) पर डाक संघ रियासतों को भेज देता था। स्टैनली गिब्रंस (लन्दन) के डाक टिकट कैटलॉगों के अनुसार ग्वालियर राज्य में केवल ब्रिटिश इण्डिया के डाक टिकट 'ग्वालियर' शब्द की अधि–छपाई के साथ जारी होते रहे थे, लेकिन मुझे ग्वालियर राज्य के ऐसे डाक टिकट देखने को मिले हैं। जिन पर ग्वालियर नरेश के सिर के चित्र अंकित है और उन पर 'ग्वालियर' स्टेट एवं मूल्य एक आना देवनागरी तथा रोमन लिपियों में छपा है। ये डाक टिकट कैटलॉगों से अलग दूसरी ही कहानी कहते हैं। यह भी सम्भव हो सकता है कि ये डाक टिकट न होकर, माल टिकट हों, फिर भी इन डाकटिकटों पर शोध की जरूरत है।

लगता है, रियासतों ने अपने डाक टिकटों का समुचित रिकार्ड नहीं रखा था, इस कारण सारे रियासती डाक टिकट सूचीबद्ध नहीं किये जा सकते। बीच–बीच में नयी खोजें होती रही हैं। फिलेतली के कई विद्वानों का मानना है कि इसका क्षेत्र काफी

विशाल है। बहुत से डाक टिकट अभी भी खोजे जाना बाकी हैं।

ओरछा – ओरछा (क्षेत्रफल १९९९ वर्गमील) के दनदाने रहित पहले डाक टिकट सन् १९१३ ई. में श्री प्रताप प्रभाकर के बनाये ठप्पे से लिथो पद्धति से छपे थे जिन पर ओरछेश महाराज प्रताप सिंह (सन् १८७४–१९३०) का शाही प्रतीक अंकित था और देवनागरी लिपि में 'ओरछा डाक महसूल' और मूल्य छपे थे। सन् १९३९ ई. में वहां निकले डाक एवं माल टिकटों पर स्थानीय बुन्देली शाही पोशाक में तत्कालीन अंतिम ओरछा नरेश महाराज वीरसिंह जू देव द्वितीय के भव्य चित्र छपे थे। आफसेट लिथोपद्धति से इन्हें इंडियन गवर्नमेण्ट प्रिंटिंग वर्क्स नासिक ने छापा था। लन्दन की स्टेनली गिबंस – सिम्पलीफाइड स्टैम्प्स आफ द वर्ल्ड कैटलाग (जिल्द–११, संस्करण १९८७ ई, पृ. ४०७) में उल्लेख है कि सन् १९३५ ई. में यूरोपीय पोशाक में भी ओरछा–महाराज वीरसिंह जू देव द्वितीय के व्यक्तिगत वाले डाक टिकट निकाले गये थे जो आधा आने से लेकर पच्चीस रुपये मूल्य तक के द्विरंगी २१ डाकटिकटों की सुन्दर श्रृंखला थी। पर स्टैनली गिबंस के एक दूसरे कैटलॉग (ब्रिटिश कामनवेल्थ – १९७९, पृ. ४९१) में ओरछा के अन्य डाक टिकटों के साथ इन्हें सूचीबद्ध नहीं किया गया है, इसके अंत में केवल संक्षिप्त टिप्पणी देकर इतिश्री कर दी गयी है।

ओरछा ने सन् १९४२ ई. में अंतिम बार अपने डाक टिकट निकाले थे। सन् १९३५ ई. में निकले थोड़े ही डाक टिकट डाक शुल्क के रूप में इस्तेमाल हुए थे। अधिकांश डाक टिकट संग्राहकों तथा विक्रेताओं के हाथ लग गये थे या उन्हें डाक टिकटों की छपाई से हो रही निरन्तर क्षति की आंशिक पूर्ति के लिए छपे मूल्यों से कम कीमतों पर संग्राहकों को बेंच दिया गया था। उस समय डाक–शुल्क की कोई ऐसी दर प्रचलित अथवा अस्तित्व में नहीं थी, जिसके लिए एक रुपये या एक से अधिक रुपयों वाले डाकटिकटों की जरूरत पड़ती हो। ऐसा स्पष्ट लगता है कि ये ऊँची मूल्य वाले डाक टिकट केवल संग्रह–शौकीनों के लिए छापे जाते थे। अधिकांश राज्यों में डाक में प्रयोग करने के उद्देश्य से ऊँची कीमतों वाले डाक–टिकटों की कोई जरूरत नहीं पड़ती थी, अतः बाद में इम्पीरियल पोस्ट आफिस के अधिकारियों ने यह निर्णय लिया कि ग्वालियर राज्य के अलावा किसी भी राज्य के लिए एक रुपये से ऊपर की कीमतवाले डाक टिकटों की अधि–छपाई नहीं की जाएगी। कहना न होगा कि ग्वालियर राज्य में डाक नगों की संख्या (दो, तीन एवं पांच रुपये के डाक टिकट, दस हजार से अधिक) तब अच्छी खासी थी। इसका एक प्रमाण यह है कि सन् १९०९ ई. में निकला चरखारी डाक टिकट (मूल्य एक रुपया) जिसे एक आना की अधि–छपाई कराकर जारी किया गया था। ओरछा तथा चरखारी रियासतों के प्रारम्भिक डाकटिकट सहारनपुर के मैसर्स बीरेन्द्र कुमार सुरेन्द्र कुमार छापते थे। हिम्मत नगर के पी. जी. मेहता एण्ड कम्पनी भी अन्य रियासतों के डाक टिकट छापती थी। ओरछा राज्य में ब्रिटिश पोस्ट ऑफिस टीकमगढ़, बल्देवगढ़ तथा जतारा में काम कर रहे थे।

बिजावर – मध्यभारत की जिन जागीरदारी रियासतों को अपने डाक टिकट निकालने का अधिकार अंग्रेज सरकार से मिला हुआ था, उनमें एक नाम बिजावर (क्षेत्रफल १८० वर्गमील) का भी आता है। १ जुलाई सन् १९३५ में महाराजा सर सावंत सिंह बहादुर (सन् १८९८–१९३७) के चित्रवाले पहले बिजावर डाक टिकट (३ पाई, ६ पाई, ९ पाई, एक आना तथा दो आना मूल्य) निकले थे। इन डाक टिकटों पर देवनागरी तथा फारसी लिपियों में डाक टिकटों का मूल्य मुड़िया अंकों सहित भी छापा गया था। बिजावर ने भी योजनाबद्ध तरीके से अंग्रेजी शासकों के चित्रों का बहिष्कार कर रखा था। जिन कुछ रियासतों ने, पहले ब्रिटिश भारत की डाक व्यवस्था को स्वीकार कर लिया था, उनमें बाद के वर्षों में विरोधात्मक प्रवृत्ति नजर आती है। उन्होंने अपनी डाक व्यवस्था कायम कर ली थी। और स्थानीय उपयोग के लिए अपने अपने डाक टिकट जारी किये थे जिसे आम जनता के हित की अपेक्षा राजा की शान–शौकत के लिये उठाया गया कदम माना गया।

डाक संघ त्यागकर बिजावर राज्य ने पहली जुलाई १९३५ ई. से और ओरछा राज्य ने सन् १९१३ से अपने डाक टिकट निकालने शुरू कर दिये थे। बिजावर राज्य के इन डाक टिकटों की छपाई मुम्बई में टाइपो पद्धति से की गयी थी और ये टिकट ग्यारह दनदानों वाले थे। लन्दन से प्रकाशित स्टैनली गिवंस लि. (३९९ स्ट्रेण्ड, लन्दन) के डाक टिकट कैटलागों में 'सावंत सिंह' त्रुटिपूर्ण होकर सरवंत सिंह छपा है।

बिजावर ने अपने डाक टिकट सन् १९३५ से मई १९३७ के बीच ही निकाले थे। रियासत में ब्रिटिश पोस्टआफिस राजधानी बिजावर तथा गुलगंज में कार्यरत थे।

ये कुछ दृष्टान्त इस बात के पक्के सबूत हैं कि अंग्रेजी शासनकाल में भी इन मध्यभारतीय जागीरदारी रियासतों ने भारतीयता की पताका ऊँची रखी थी। इस मामले में मध्य भारत की ये जागीरदारी रियासतें अकेली नहीं थी। भारत की अन्य दक्षिणी पश्चिमी तथा उत्तरी रियासतों ने भी ऐसा ही रंग–ढंग अपना लिया था और सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय साहस अपने–अपने डाक टिकटों पर प्रदर्शित किया था। मध्यभारत की ये वे जागीरदारी रियासतें हैं, जिनका अस्तित्व सन् १९४७ तक था और उन्हें भारत सरकार से प्रिवीपर्स के रूप में राशि मंजूर हुई थी। इन रियासतों ने इम्पीरियल पोस्ट ऑफिस से डाक नीति पर असहयोग किया था, आर्थिक क्षति उठाई थी, परन्तु अपने अद्भुत डाक टिकट निकालते रहे थे। पत्र मुद्रा के रूप में यह उनके लिए शान तथा

प्रतिष्ठा का मुद्दा बन चुकी थी।

यद्यपि बहुत सी रियासतें अपनी नियमित डाक सेवा को बनाये रखने में असमर्थ थी, लेकिन उन्होंने इम्पीरियल पोस्ट से जुड़ने में अनिच्छा जतायी, क्योंकि यह उनके शासकों के आत्मगौरव तथा उनकी प्रतिष्ठा का प्रश्न है। इन तत्कालीन रियासतों की जनसंख्या के आंकड़े २ अप्रैल १९४८ में निम्नानुसार थे – ओरछा (३.६३ लाख), दतिया (१.७५ लाख), चरखारी (१.२४ लाख) और बिजावर (१.२१ लाख)। क्षेत्रफल के अनुसार ग्वालियर के बाद ओरछा और सबसे छोटी रियासत चरखारी थी।

आजादी के बाद रियासतों का विलय भारत संघ में हुआ। बिजावर, दतिया, ओरछा व चरखारी रियासतें ब्रिटिश शासनकाल में सलूटेड थीं। अजयगढ़, वावनी, बरौंधा, छतरपुर, मैहर, नागौद, पन्ना और समथर रियासतें भी सलूटेड थीं, शेष नान सलूटेड। इन रियासतों के डाकटिकटों से संबंधित हिन्दी में साहित्य का नितांत अभाव है। इंडिपेक्स ७३ (१४–२३ नवंबर) के मौके पर नई दिल्ली के प्रगति मैदान में प्रदर्शनी के ग्रुप संख्या १ के सेक्शन ११बी में भारत के श्री एम.जी. पित्ती व ए.आर. राजबाड़े ने अपने बिजावर, चरखारी, दतिया के दुर्लभ डाक टिकट संग्रह का प्रदर्शन किया था। इण्डिया ८० की स्मारिका में अपने लेख 'इंडियन स्टेट्स इंट्रडक्शन' (पृ. १६५) में श्री पी.एम. मेधोरा का यह कथन स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि रियासतों के डाकटिकटों पर स्थानीय भाषाओं (हिन्दी–मराठी–गुजराती आदि) का प्रयोग होने से डाक टिकट संग्राहकों ने इन डाक टिकटों के प्रति रुचि नहीं दिखलाई थी। यदि ऐसा होता, तो अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं का प्रयाग करने वाले विश्व के अधिकांश डाकटिकट आज नष्ट हो गये होते। श्री पी.एम. मेधोरा मानते हैं कि भारतीय रियासतों के कुछ अति दुर्लभ डाक टिकटों के बारे में दुःखद बात यह है कि समुचित प्रचार के अभाव में इन्हें पर्याप्त ख्याति नहीं मिली।

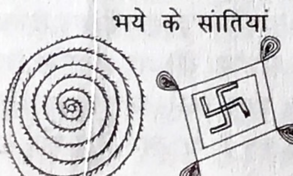
डाक टिकट इतिहास के जिंदा दस्तावेज होते हैं। इनमें इतिहास मुखर होता है। इतिहासकार मित्रों को धातु मुद्राओं की भांति कागजी–मुद्राओं (डाक टिकटों) को अपने ''टूल्स ऑफ माडर्न हिस्ट्री'' में शामिल कर लेना चाहिए। डाक टिकटों का यह एक विचारणीय सशक्त पक्ष है। यह समय की मांग भी है।

– सहायक प्राध्यापक,

शा. महाविद्यालय, कोलारस जि. शिवपुरी (म.प्र.)

□

भये के सांतियां



–नीरज सोनी

ब्याओ

– श्रीमती विजयश्री बुन्देला

हल्के की बिन्नू को
होन लगो ब्याओ,
लरका है सांवरों,
सुनी खूब है कमाउत,
कक्का जू ने भी,
एक लाख टीका में
दैंबे की कै दई।
सुन, बऊआ जू नर्रय्यान लगी
चार मौड़ियन पै बरयाकें
एक भओ मौड़ा,
लाख–लाख सबई खां दैहें,
तौ मौड़न खा, न बचहे कौरा।
बड़े फूफा जू की भई
तबई पौर में अवाई,
बऊआ जू रुपईया तो
लगनेई हैं इत्ते,
सुखी रानें है बिन्नू खों
के समझान लगे।
बरी–पापर, अचार की
होन लगी तैयारी,
दारे नाज लगो बनवे
संगे बन्नी लगी गबबे।
ऐसई में संझले कक्का जू
कात चले आय,
दहेज में चाने है
मारुति गाड़ी,
टीवी और कपड़ा धोत की मशीन,
सोफा, डवल बेड ड्रेसिंग
संगे मिक्सी, गैस चूल्हो,
कम तेल में पकाउत के, वासन हैं चाने।
बरी, पापर और पीतर के बासन,
जो कछू नई है जाने,
दहेज को जो लम्बों है पर्चा
सुनके बड़ी कक्को जू रै गई।
जो ब्याओ कैसो ठानो है दैया,
पैलई में हो जाने गंजो,
चारऊ के होत हो जाने नंगो।
पीरी धुतिया, पीरे टीका से,
पैलें हो जात ते ब्याओ।
सात अपनी, पाँच हल्के कक्काजू की,
एसई हमाये बब्बा जू ने हती निपटाई।
बिन्नूअन के ब्याओ
अब हो गये मांगे,
लरका बन गये
कमाई के धन्धा।

– राजमहल, छतरपुर (म.प्र.)

दोस्ती की लाज

- सत्यम् (सत्येन्द्र पाण्डेय)

आज हम आप सब जनन खाँ एक भौतौं पुरानी बात सुनाबो चाऊत हैं। पुराने समय की बात है एक नगर में एक राजा राज करत ते। राजा के एक कुंवर हते। कुँवर कौ नाव विक्रम सिंह हतौ। कुंवर विक्रम सिंह की दोस्ती नगर के एक बाढ़ई के लड़का रामदास से हती। दोस्ती सोई एसी कै कान नई लगत दांत काटी दोस्ती। बिल्कुल ऊंसई। कुंवर विक्रम सिंह रामदास के बिना एक घरी सुख सें नें रय पात ते। घरै अकेली रोटी खावे औरें सोवे के लाने भर आऊत ते। और दिनभर ओई बाढ़ई के घरे बैठे रैत ते। रामदास अगर पलका बना रव कै भलौ कुर्सी बना रव तो कुंवर कब ऊके लाने लकड़ियें-फाटा उठा-उठा खें देत जा रय। कैबे को मतलब जौ के ऊकी पूरी अट्टाचरई राजा के कुंवर करत हते। रामदास सोई बिल्कुल कुंवर के कैबे पै जान देबे के लाने तैयार रैत हतो।

अब जरुआ-भुंजुआ तौ हरई जाँगा रत हैं। ऊ नगर में सोई उनकी कमी नोई हती। कछु जनों ने राजा के कान भर दय के तुमाव कुंवर तो बाढ़ई के घर कौ काम आय करवाऊत रत। बातन खाँ खूबई नौन-मिर्च लगा खें बताई। राजा खाँ कुंवर पै रोष आय और शर्म सोऊ लगी कि बताओ कैसो कुवर आय जो के सास को राजा की इज्जत माटी में मिलवाँय दे रव। कुंवर जब दिनडूबें घरै आय तो आहे तो जैहे कहाँ? राजा ने उनकी खीब खबर लई और साफ कै दई कै अब ऊ बाढ़ई कें घरै जैहौ तो गड़बड़ हो जैहै।

कुंवर विक्रम सिंह दो चार दिना करें जी करें घरै बैठे रय। मनों ऊ के बाद नें सई गई। मन तो रामदास से मिलबे ऐसे मचल रव तो जैंसे जल के बिना मछरिया तड़फत है। वे फिर घर में निकरे और पौंचे रामदास के घरै। राजा खाँ फिर सें पता चल गई। अब तो बात बज्जुर की आय बीद गई। एक तरपी राजहठ, दूसरी तरपी बालहठ। राजा कै रय घर सें बायरे नई निकरने मनों कुंवर तो रोज भुनसारें रामदास के घरै ठाँड़े रैंये। राज ने खूब हटकी मनों कुंवर नई मानें। आखिरी में जब राजा के बस की नें रई तो खुंस में आकें उननें कुंवर खाँ हुकम दे दव कै तुम भुनसारें हमाव नगर छोड़ खें चले जइयो।

रामदास खों जब पता चली कै कुंवर खाँ राजा ने देशनिकारो दे दव तौ ऊ सोई कुंवर के संगै जाबे के लाने तैयार हो गव। कुंवर ने ऊ सें कई - 'रामदास! तुम हमाय संगे कहाँ-कहाँ भटकहो? तुम घरैं रव।' 'कुंवर साहब! हम तौ तुमैरे संगे चल हैं चाय हमाई जान चली जायें रामदास ने कई। कुंवर ने ऊ खाँ खूबई हटकी मनौं रामदास कई नें मानो और दोई गुइयाँ नगर सें निकर परे।

नगर सें बाहरै आबे के बाद दोई जनों ने सोची कै अब कहाँ जाव जाये? कुंवर नें सलाय दई कै चलो हमाई सुसरारे चलिये। उतै सें कुंवर की पत्नि खाँ लुवा खें फिर कहूँ और नगर जावे कौ विचार करौ।

दोई जनै कुंवर की सुसरारे पहुँचे और उतै दोई जनों कौ खूब स्वागत सत्कार करौ। कुंवर नें अपने सुसर बब्बा खाँ अपनों हाल सुनाव तो सुसर बब्बा कान लगे कि कुंवर साहब अब तो आप एई घर खाँ अपनों घर समजौ। मनौं कुंवर खाँ अपने मन में जो अच्छौ ने लगो के सुसरार में रहौ जाय। काय बड़े-बूड़े कान लगत कै सुसरार में रैबो और गधा की सवारी एकई बात आय। ई सैं उनने सुसर बब्बा सें नाई कर दई और भुनसारैं राजकुमारी खाँ पौंचावे की तैयारी करबे की कै दई। राजा ने अपनी मौंड़ी सें म्याने भय जावे खों तैय्यारी करबे की कै दई। रात में कुंवर खाँ राजमहल में सोबे की व्यवस्था कर दई गई और रामदास को बाहरै पौर में डेरा दै दव गव।

अब का हतों कि ऊ राजकुमारी ने राजकुमार खाँ बस ब्याव में ई देखो हतौ। और कछू जादां संबंध नें हते। ऊ राजकुमारी खाँ गांव के मंदर कौ एक पुजारी फंसाय हतौ अपने प्रेमजाल में। जैसेई राजकुमारी खाँ जौ पता चलो कि अब म्यानें भंय जानें आहे तौ बा गदबद देंत पौंची पुजारी के ढिंगा। जाखें पुजारी खां पूरी बात बताई और ऊ सें कई कै हमें आजई रातै भगा ले चलो। ऊ पुजारी ने राजकुमारी सें कई कै हम तुमें भगा तो ले चल हैं मनों ऊ के लाने पैलां तुम कुंवर कौ सिर काट खें ले आव। राजकुमारी तो प्रेम के नशा में आय हती। ऊखाँ ऊ टेम पै पाप-पुन्न कौ सपाँ ज्ञान ने रव। बा तुरतैं लौटी और घरै गई। घरै जाखें ऊ ने कटार उठाई और गैरी नींद में सो रय कुंवर की घींच काट लई। फिर एक हाँत में कटार और एक हाँत में कुंवर की मूंड़ ले खें फिर खों पुजारी के ढिंया पौंची। और पुजारी सें बोली - 'देखो हम जा काट लियाय कुवर की घींच काट लियाय। चलौ अब भग चलिये।'

पुजारी खाँ बेजाँ गुस्सां आई कै देखो तो जा लुगाई अपने घरवारे की मूंड़ काट खें ले आई। पुजारी ने मन में सोची कै जब जा अपने पति के संगे घात कर सकत है जी के संगे सात फेरे लगाय हतै तो हमाय संगे काय नई कर सकत? ऊने राजकुमारी ने साफ नाई कर दई। राजकुमारी ने जब हठ बताई तो पुजारी नें अपनो चमीटा उठा खें दव मिला खें राजकुमारी की पींठ पै।

महल में जब राजकुमारी नें कुंवर की घींच काटी तो हल्ला सौ सुनखें बाहरै परे रामदास की नींद खुल गई ती और वो राजकुमारी के पीछें-पीछें इतै लौं पौंच गव हतौ। अब ऊने इतै आखें पूरी बात समझ लई राजकुमारी फिर सें जब पुजारी के इतै सें लर्र रई ती तौ ऊकी नजर रामदास पै पर गई। ऊने मन में सोची

कै अब तौ हम फंस गय। का करैं एई खों नें फंसा दंय। सो राजकुमारी ने महल में आखें रोबो–पीटबो चालू कर दव। हल्ला सुन खें सबकी नींद खुल गई। राजा ने आंखें देखौ कुंवर की घींच कटी डरी है। उनने राजकुमारी सें पूछौ के जौ कयाय हो गव तो ऊनें कै दई कै कुंवर खौं रामदास ने आय मारो है। तुरतौं रामदास खौं पकर खै दरबार में बुलाव गव। राजा ने फैसला दव कै रामदास खौं फांसी पै लटका दव जाय। ऊनें खूब कई कै कुंवर खौं हमने नोईं मारो है मनों औकी कोई ने नें सुनीं।

फांसी लगवे के पैलाँ रामदास सें जब पूछी गई कै तुमाई आखिरी इक्छा का है तौ फिर ऊने कई कै राजकुमारी खौं दरबार में बुला खें उनकी पीठ पै को चिमटा कौ निशान देखो जाय। राजकुमारी खौं दरबार में बुलाव गव। पींठ देखी गई। सांचऊ पीठ पै हरीरो नीलौ परौ तौ। उनसे पूछे गई तो उनने कछू नें बताई। फिर रामदास ने सांची वात सब जनों खाँ सुनाई। तनक कर्रई करे से राजकुमारी ने भी सब सांची बता दई। फिर राजा ने रामदास खों छोड़ दव और राजकुमारी और पुजारी दोऊ जनन खाँ तीन तिगड्डा की गैल में गड़वा दव।

ई के बाद रंज भरे मन सें रामदास कुंवर विक्रम सिंह कौ ध ड़ और कटी कटाई मूंड़ लै खें अपने नगर की गैल पै चल परौ। ऊं के मन में बेर–बेर जा बात आ रई ती कै अब घरै जाखें राजा साहब खाँ का मौं बतें हैं? ऊकी छाती धमस रई ती और वौ जंगल की गैल धरें जा रव तो। गैल में दिन डूब गव तौ वो एक बरिया के पेड़े के नैंचे लेट गव और सो गव। रात में औ की नींद खुल गई तनक चिकचिकाबो सुनखें। ऊ ने देखौ कै दो चिरैयें बतिया रई तीं। रामदास चुपचाप परेपरे उनकी बातें सुनन लगो।

चिरवा चिरैया सें कै रव तो – 'प्यारी चिरैया!' कछु हाल–चाल तो सुनाव।'

'हाल–चाल का सुनायें' चिरैया चिकचिकानी – 'हम तौ ई गैलारे की किस्मत की आय सोच रय हैं।'

'कौन गैलारे की' चिरवा ने पूछी।

'अरे एई गैलारे की। जौन बरिया के नैंचे परो है' चिरैया के बताई।

'काय ओखों का हो गव' चिरवा नें फिर पूछी।

'पैलां तो ऊकौ कुंवर मार डारो गव और भुनसारें ऊ खोंई मार डारो जै है।' चिरैया ने दुखी मन सें बताई।

चिरवा ने फिर पूछी तो चिरैया ने कुंवर की पूरी कथा सुनाई और जा बताई कै भुनसारें वौ जौन गैल से जैहे ऊकी गैल में एक चुड़ैलन रात है वा ऊ खाँ मार डार है। चिरवा ने पूछी कि गैलारो कौन उपाय सें बच है तो चिरैया नें उपाय बताव और जा सोई बताई कै ऊ चुड़ैलन के कब्जा में एक सुंदरी है। अगर चुड़ैलन खाँ मार खें ऊ सुंदरी खाँ छुड़ा लव तौ ऊ के ढिंगा ऐसी शक्ति है कै वा मरे राजकुमार खौं फिर सें जिंदा कर दे है।

रामदास जा बात सुन खें बेजाँ खुश हो गव और दिन ऊँगतई अपनी गैल पै चल परो। गैल में ओई चुड़ैलन को घर मिलो। ऊ नें रामदास खों मार डारो। ऊ खाँ मारखें ऊकी कैद से सुन्दरी खौं छुड़ा लव। सुन्दरी भौत प्रसन्न भई और ऊने हट पकर लई कै वा तौ रामदासै सें ब्याव कर है। रामदास ने ओ सें कई कै अगर बा कुंवर खां फिर सें जिन्दा कर दे है तो हम तुमसें ब्याव कर लें हैं। सुन्दरी ने अपने मिनतुर सें कुंवर खाँ जिंदा कर दव। रामदास बेजाँ खुश भव और ऊ नें सुंदरी के गरे में माला पैरा खें ऊ खाँ अपनी घरबारी बना लव।

राजी–खुशी वे तीनैं जनें चलत–चलत फिर सें ओई बरिया के पेड़े के नैंचें पौंचे। रात हो गई सो उतई पर रय। रात में फिर खों वे चिरैयाँ बतयाऊन लगीं। चिरैया ने बताई कै एक राजा की राजकुमारी इतनी सुंदर है कै ऊ के महल में उजियारे के लानें दिया नईं जलाउनें परत। राजकुमारी के मौं से इतनौ उजियारौ निकरत है कि का कंय। मनों राजा ऊ कौ ब्याव नईं कर रव और ऊ खाँ सात तालें में रखत है। कुंवर ने जा बात सुनी तौ बे हट पकर गए कै हमें तो ओई राजकुमारी सें ब्याव करनें। उनके हट करबे पै रामदास बाढ़ई ने लकड़िया कौ एक घुरवा बनाव जो उड़न लगो। राजकुमार ऊ घो पै बैठ खें ओ राजा के महल लौं पौंचे। राजकुमारी को उजियारो सतखण्डा के ऊपर सें आ रव तो। राजकुमार ने घुरवा उड़ाव और सतखण्डा के ऊपरै राजकुमारी के ढिंगा पौंच गये। ऊ ने कुंवर खां देखो तो देखतै रई। जौई हाल कुंवर कौ भव। एकई नजर में दोऊ जनन के बीच में प्रेम हो गव। फिर तो दोऊ जनें रोज मिलन लगे। कुजानें का भव कै कुमारी कौ उजयारो रोज पै रोज कमन लगौ। राजा ने ई बारे में जब अपने राजगुरु सें पूछी तो ऊनें कै दई कै राजकुमारी कौ कौनऊँ मुन्स से प्रेम हो गव है, स्यात एई सें आय जौ उजियारौ कय हो गव है। अब राजा नें कुमारी कौ पहरौ और बढ़ा दव। जासूस लगा दय। एक दिना जब कुंवर राजकुमारी के संगे बैठे तौ उन्हें पकर लव गव और राजा के कैवे सें उनें हतकड़ी–बेड़ी पैरा खें जलखाने में डार दव गव।

मुतके दिनों लौ कुंवर ने आय सो राजकुमारी उनके लानें हींड़ रई तीं। रामदास सोई कैऊ दिना लौ कुंवर की बाट देखत रव। जब वे नें आये तो ऊने फिर सें उड़वे वारौ घुरवा बनाव और राजकुमारी लौ पौंच गव। राजकुमारी ने ऊखां पूरी बात बताई और ऊ सें विनती करी कै हमें इतै सें निकार खें लें चलो। रात मे कुमारी खां ले जातों तौ सब खाँ पता चल जातौ। ई सें रामदास कुमारी खाँ दिन में कुमारी खां अपने घुरवा पै बिठार खें भगा ले गव और और अपने घरै ले गव। अब वौ कुंवर खाँ छुड़ाबे के लानें निकर परो। ऊने एक चोरी करी और पकरो गव। ऊ खां जेलखाने पौंचा दव गव। जाई तो वो चाऊत आय हतो। ऊ ने तिकड़म भिड़ा खें कुंवर खाँ उतै से मुक्त कराव। दोऊ जनें अपने घरै पौंचे। अपनी अपनी प्रेमकाओं खां ले खें फिर वे कुंवर के पिता के इतै पौंचे। राजा ने जब पूरी बातचीत सुनी कहानी सुनी तौ वे रामदास पै बेंजा प्रसन्न भय, ऊ सें माफी मांगी और ऊ खां खूब पैसा–धेला और जगीर दई। तौ जैसी दोस्ती की लाज रामदास और कुंवर ने राखी ऊसई दोस्ती सब कोऊ राखै। □

– सागर (म.प्र.)

ननद हिराय गई बटुआ–सी

– श्रीमती ब्रजलता मिश्र

बुन्देली बोली जितनी मधुर है, उतने ही मधुर है यहां के पारिवारिक सम्बन्ध। यों तो सभी सम्बन्ध अथवा रिश्ते–नाते अपने आप में अनूठे हैं। जैसे माता–पिता, भाई–बहिन, पति–पत्नी, देवर–भाभी इत्यादि के। किन्तु ननद–भावज (भाभी) की विविध भाव–भंगिमाओं के, उनके स्वाभाविक प्रेम–स्नेह, हास्य–व्यंग्य, ताने–उलाहने, रूठने–मनाने आदि के दर्शन बुन्देली लोकगीतों में प्रचुरता से होते हैं। अल्हड़ ननदी अपनी भावज से एकाएक चम्पाकली का हार माँग बैठती है तो भाभी आश्चर्य चकित होकर कह देती हैं – ''चम्पाकली दैया! माँगै ननदिया।''

ननदी के हास्यास्पद स्वरूप का वर्णन भाभी कर रही हैं –

''सब कोउ आवैं घुड़ला–पालकी,
हँथनी चड़ी दैया! आवै ननदिया!''

इस हास्य–व्यंग्य को सह लेने के बाद बेचारी ननदी को भाभी का चम्पाकली का हार मिल जाता है। उसे पहनकर इठलाती, बलखाती ननदी पन्ना शहर घूमने जाती हैं। लेकिन बाजार की भीड़ में खो जाती है। अब भाभी की दशा यह है कि काटो तो खून नहीं। वे आग बबूला होकर पन्ना शहर को ही कोसने लगती है –

''बर जइयो रे पन्ना तेरौ बजार,
जामें ननद हिराय गई बटुआ–सी।''

अर्थात् – ऐसे पन्ना शहर में तो आग ही लग जाए, जिसमें मेरी प्यारी 'बटुआ' जैसी सुन्दर सुकुमार ननदी खो गई।

बुन्देलखण्ड में 'बटुआ' अनेकार्थी शब्द है। एक अर्थ तो है – पर्स अथवा मनीबैग, जिसमें रुपये–पैसे रखे जाते हैं और दूसरा अर्थ है 'बटलोई'। बटलोई पीतल, तांबा, काँसा, कस्कुट अथवा मिट्टी का बना पात्र होता है। पतीली की तरह ही इसका प्रयोग किया जाता है। इसकी तली गोल तथा चिकनी होती है, जो सुन्दरता का उपमान है। इसीलिये ननदी के लिये भाभी को यही उपमान मिला।

अब भावज के विचार देखिये। उन्हें अपनी ननद के खो जाने की जितनी चिन्ता है उससे कई गुनी अधिक चिन्ता अपने चम्पाकली के हार की है, क्योंकि अपना अनमोल हार उन्होंने ननदी को पहना दिया था –

''ननदी की ननदी गई रसिया,
मोरौ चम्पाकली कौ हार रै।''

अल्हड़ ननदी अपनी भाभी की परछाँई बनकर समस्त दैनिक कार्यों में साथ–साथ रहती है, अनुसरण करती है। रूठना–मचलना उसका स्वाभाविक गुण है, अच्छे–बुरे का उसे ज्ञान नहीं। बचपना इतना है कि किसी भी नौजवान को देखती ही उस पर मोहित हो जाती है, उसका मन मचलने लगता है। भाभी के साथ जाये बिना भी तो वह नहीं मानती। भाभी परेशान हो जाती है, उसकी करतूतें सुनाती हैं –

''पनियाँ भरन खों संगै गई ननदी।
कुअलन गईती, संगै गई ननदी,
ढीमर खों देख मचल गई ननदी।
बागन गई ती, संगै गई ननदी,
माली खों देख, मचल गई ननदी।
तालन गई ती, संगै गई ननदी
धोबी खों देख, मचल गई ननदी।''

इतना ही नहीं, राजमहल में जाने पर राजा के साथ, भौजाई (भाभी) के मायके में जाकर उनके भाई से ही अपना विवाह करने की हठ करने लगती है –

''महलन गईती, संगै गई ननदी,
राजा खों देख मचल गई ननदी।
मायकें गई ती, संगै गई ननदी,
भैया खों देख, मचल गई ननदी।''

अब भला इसे कैसे समझाया जाए? बड़ी कठिनाई से भाभी ने इसे समझाया। पानी भरने के लिये पनघट पर जाने का प्रतिदिन का क्रम जारी रहता है। पनघट पर ही कोई छैल–छबीला उन्हें निर्निमेष निहारता रहता है। तो बहू अपनी सास से कहती है –

''सासो पनियाँ कैसें जाऊँ, रसीले दोई नैना।''

सास आदेश देती है कि छोटी ननदी के साथ सावधानी से चली जाओ, क्योंकि पानी तो लाना ही है –

''बहू! ओड़ौ सुरंग चुनरिया और सिर पै धरौ गगरिया,
बारी ननदी लै लेओ साथ, रसीले दोई नैना!''

सास की आज्ञा से ननद–भाभी पनघट पर जाती हैं। वहाँ पर वही छैल छबीला उनका रास्ता रोकता है। ननदी घर आकर, नमक–मिर्च मिलाकर भैया से भाभी की चुगली कुछ इस प्रकार करती है –

''भैया! भौजाई कौ यार, रसीले दोई नैना।''

इतने बड़े मिथ्या आरोप से भौजी तिलमिला जाती है। मन ही मन–ही–मन ननदी के लिये यह प्रतिज्ञा कर लेती हैं –

''फागुन में ब्याओ करौंगी, बैसाखै बिदा करौंगी,
ननदी! फिर ना लैहौं नाऔ, रसीले दोई नैना।''

यही नहीं, अब तो भाभी अपनी ननद को कटुभाषिणी मानकर कहती हैं कि बबूल के काँटे भी उतने कष्टदायक नहीं होते, जितने

ननदी के शब्द–बाण। ये तो हृदय को ही बेध देते हैं –

''बँमुरिया के काँटे न सालैं,

काँटे न सालैं जैसें सालैं ननदिया के बोल रे।''

भावावेश में भौजी ननद के बोलों की तुलना कड़वी तोरई से करती हैं। वे कहती हैं –

''करई तुरैया के बीजा करए हैं,

करए ननदिया के बोल मोरे लाल।''

इसी तरह से चुहलबाजी, हँसी–ठिठौली, मीठी और तीखी, नोंक–झोंक, हास–परिहास में पलकर ननदी सयानी हो जाती है उसके हाथ पीले हो जाते हैं और वह अपनी ससुराल चली जाती है। शनैः–शनैः दिन, माह और वर्ष व्यतीत होते जाते हैं। गर्भवती भाभी को प्रसव–पीड़ा होती है तो अपनी देखभाल तथा गृहकार्यों में सहयोग हेतु उन्हें ननदी की याद आती है। वे अपने पति से ननदी को लिवा लाने के लिये आग्रह करती हैं –

''मौरे भौतऊ पियारे राजा, ननदिया बुलाय दइयो रे।''

पति को भी अपनी पत्नी द्वारा बहिन के साथ किये गये दुर्व्यवहार का बदला लेने का अवसर मिला। वे भी क्यों चूके? व्यंग्य कर ही देते हैं –

''धना! हौ तौ गुनन की पूरी, बचन की साँची,

हमाई बैंना नइँ आहैं रे।''

रात्रि में पुत्र–जन्म हुआ। प्रातःकाल प्रसूता ने पुनः अपने पति से कहा –

''ललन भए रातै दै देओ बुलउआ।''

बड़े लाड़–दुलार से ननद को बुलाया गया। लेकिन ननद तो ननद ही ठहरीं। भैया के घर ने कितनी ही परेशानी हो, धनाभाव हो, उन्हें कोई भी छोटी या बड़ी वस्तु माँगने में कोई हिचक नहीं लगती। यही कारण है कि भाभी अपनी पड़ोसिन सखियों से कह रही हैं –

''कै मोरी गुइँयाँ! घर में अठन्नी भरौ सोंनौ,

ठुसी खों बिरजीं जे बेला बइया।''

अर्थात्, घर में केवल आधा तोला सोना है, और ननदी 'ठुसी' बनवाने की हठ कर रही हैं।

इसके विपरीत कभी प्रसन्न होकर भाभी ननद से मनचाही वस्तु देने का आश्वासन देती हैं –

''माँगौ–माँगौ मोरी ननदी जो मन होय।''

तो ननदी–भी कम नहीं, उन्हें तो इसी की प्रतीक्षा थी। जरा देखिये, ननदी क्या माँग रही हैं –

''ककनवा माँगैं ननदी लाल की बधाई।''

भाभी के मायके की सौगात है कंगन। वे कैसे दे दें? कहने लगती हैं–

''प्यारौ ककनवा मोरे मायके सें आऔ,

रुपया लै लेओ ननदी लाल की बधाई।''

भतीजे के जन्मोपलक्ष्य में द्वार पर शहनाइयाँ तथा बधाइयाँ बज रही हैं, ननदी नाच रही है –

''छोटी–छोटी उँगरिन बड़े–बड़े बिछिया

ननदबाई आज छम–छम नाचें,

बधाई मोरे आज धम–धम बाजें।''

भावज को आभास हो जाता है कि आज तो ननदी का नाचना बड़ा मँहगा पड़ेगा। अतः वे भूमिका बाँधती हैं –

''चाँएँ बाई नाचौ, चाँयँ बाई कूँदौ,

बिरनवा आज घरई नइँयाँ।

सजनवा आज घरई नइँयाँ।''

भावज का बहाना ननदी अच्छी तरह समझती हैं। वह भी कम सयानी नहीं। तुरन्त संकल्प करती है –

''चाँएँ भौजी हाँई करौ, चाँएँ भौजी नाईं करौ,

ककना आज लै घरै जैहौं, ककनवा आज लै घरै जैहौ।''

ननदी का हठ देखकर क्रोधित–भावज कह बैठती हैं –

''मोरे पिछवारें, बँमुरिया कौ पेड़ौ,

में बइ तरैं आज तीनउँ जनें बाँदौ।

तोय बाँदौं तोरे भैया खों बाँदौं।

कस बाँदौं ननदेउआ।''

ननदी का प्रत्युत्तर देखिये –

''मोय छोरौ, मोरे भैया खों छोरौ,

बाँदैं रऔ ननदेउआ।''

भावज खीझकर कंगन तो दे देती हैं लेकिन ननद को वापिस अपने घर जाने को बोल देती हैं –

''कील खोल ककना दैकें बोली –

ननदिया! लै जा घर जइयो।

बिरुलिया! लै जा घर जइयो।।''

इस प्रकार सम्पूर्ण लोकसाहित्य में कभी भौजाई का वाक्चातुर्य देखने को मिलता है तो कभी ननद का। प्रस्तुत हास्य लोकगीत में ननदी की चतुराई देखिये। जब ननदी पलना लेकर आई तो सब जगह धूम मच गई –

''ननदबाई पलना लैकें आ गईं।''

लेकिन यह क्या –

''चूरा न ल्याईं, पायल न ल्याईं।

ननदबाई सुनरा लैकें आगईं।

लडुआ न ल्याईं, पेरा न ल्याईं।

ननदबाई मिठया लैकें आ गईं।

डोरा न ल्याईं छूटा न ल्याईं

ननदबाई पटवा लैकें आ गईं।''

नवजात शिशु के पहनने तक के कपड़े नहीं लाईं –

''कुरता न ल्याईं टोपी न ल्याईं,

ननदबाई दरजी लैकें आ गईं''

और अधिक क्या कहें? पालना भी तो नहीं है –

''पलना न ल्याई, झूला न ल्याई,
ननदबाई, बाढ़ई, लैकें आगई।''

अब तनिक उस 'पालने' की परिकल्पना कीजिये जिसमें स्वर्णाभूषण, वस्त्र, मिष्ठान्न तथा अन्य सामान यहाँ तक कि पालना भी न हो और इनके बदले में इनके विक्रेताओं की लम्बी कतार लगी हो तो भला कौन नहीं हँसेगा?

तथापि भतीजे के जन्म पर कभी ननद कंगन के लिये मचलती है तो कभी जड़ाऊ बेंदा के लिये। ननदी का मचलना देखिये –

लाल के बधाए में जड़ाऊ बेंदा लेंउंगी।''

भाभी की नाटकीयता देखिये –

''आँचर के छोर भौजी, ललना छिपाय लए,
ललना नइँ भए मोरें, बिन्नू भईं बाई जू।''

भैया के संकेत से बहन समझ लेती है कि दाल में कुछ काला है। अतः वह भी आग्रह करती है –

''बेंदा पीछें लेऊँगी, मैं बेटी देख लेऊँगी।''

अन्ततोगत्वा भौजी आग–बबूला हो जाती हैं। बेंदा उतार फेंकती हैं और ननद से कहती हैं –

''लै जा मोरी सौत! तोय कभउँ ना बुलाऊँगी।''

लेकिन बुन्देलखण्ड की नारी की सहनशीलता, सहज प्रेम, व्यापक दृष्टि और मंगल कामना का स्वरूप उस ननदी में देखिये जो क्षमाशीलता की साकार प्रतिमा है। बड़े ही सहजभाव से उदार होकर आशीर्वाद देती है – ''सर्वे भवन्तु सुखिनः'' अर्थात् –

''भैया की बेल बड़ै, भौजी कौ सुहाग बड़ै,
भतीजे की पासनी में बिना बुलाएँ आऊँगी।''

– ३५२, नानकगंज, सीपरी बाजार, झांसी उ.प्र.

□

दुलइयाजू* की पीर

– रतिभानु तिवारी 'कंज'

उजरत दिया सिरागव छिन में लगै महल में कारौ।
विष खाकें बलिदान हो गऔ, वीर बुन्देला प्यारौ।।
सीता जैसी सती नार के, भीतर आगी बरबै।
जियरा कयै रंज के मारें, उर्दा कैसौ चुरबै।।
चौमासे सी झड़ीं लगी, आंखन सें असुवा ढारै
सुआ–परेवा कें पिंजरन में, अब कौ पानू डारै।।
मान करौ भइया कौ हरदम, वचन कभउं न टारौ। विष .....।।

उतै दुलैया जू ऐरछ में, सोउत में बर्रानी।
नदी वेतवा के ऐंगर, प्रियतम की देह सिरानी।।
पांवन के बिछिया पोरन सें, निपक उठे अवढारे।
सूनी मांग भई सेंदुर सें, धुबे नैन अंजनारे।।
चुरियां चटकन लगीं हाथ कीं, आंग भऔ अंगारौ। विष .....।।

उसनींदी सी उठ बैठी, दासी खों तुरतइं टेरौ।
बर्राटन जो भऔ अबै, ई असगुन कोदीं हेरौ।
सपने में आकें कौनउँ नें, बांय पकर झंझकौरौ।
चील गीद, कौआ कुत्तन नें नरदा में मों बोरौ।
ईसें लगतइ हमें आज है, कछू दार में कारौ। विष .....।।

बांग दई कुकरा ने जब, ऐरच से चली दुलैया।
जाने का अनहोनी हो गई, काहै काल करैया।
नगर औरछा में आई जब, असगुन भए अनेकन।
कारी फिरी नगर में देखी, सुनी श्वांन की भोंकन।।
खलबल सी मच गई हिये में, सूनों महल निहारौ। विष .....।।

दासी नें रानी खो मस्कउं, सबरी बात बताई।
गई चेटका पै प्रियतम के, रोकें टेर लगाई।।
इतै छौड़कें हमें अकेली, भए सुरग के बासी।
तजती बेर खबर तक न दइ, रई दरस की प्यासी।।
तिरिया कौं सिंगार पती है, दूजौ नई सहारौ। विष .....।।

फटै करेजौ धीर वंदैना, चम्पा नों डिड़यानी।
कऔ जिजी वे किते चले गय, भरै तरैया रानी।।
जीवन को सिंगार हमाऔ, जाने कितै हिरानों।
तुम पै कैसे तजौ गऔ, अपनी ओली कौ गानों।।
अपनौ मूड़ उतई रानी ने, पथरा सों दे मारौ। विष .....।।

राख चेटका की ऊने, जब निज माथे पै धारी।
छाती फटन लगी धरती की, रोये सब संसारी।।
नदी बेतवा असुवा ढारै, हिलकी भरें कंगूरा।
हाती घोरे मूड़ें मारें, उड़ी नगर में धूरा
मेंतर मरौ उनई के संगै, खा जूंठौ पनवारौ। विष .....।।

तीतुर सुआ चिरैयंन नें, पिजरा में प्रांन गंमाये।
पाछै कें राजा फिर अपनी, करनी पै पसताये।।
गाँव–गाँव में भये चोंतरा, तिरियां पूजा करवें।
अठवाई मूरत के ऐंगर, भक्ती भाव सें धरवें।।
मरकें अमर भऔ धरनी पै, बुंदेलन कौ तारौ। विष .....।।

*दिमान हरदौल का विवाह दुर्गापुर के जागीरदार लाखन सिंह पंमार की पुत्री हिमांचल कुंवरि के साथ वि.स. १६८४ में हुआ था।

– शा.उ.मा.वि.पृथ्वीपुर, जि. टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देली सैर साहित्य में फाग

- डॉ. (श्रीमती) गायत्री वाजपेयी

प्राकृतिक सुषुमा सम्पन्न वीर प्रसू, साहित्य, संगीत एवं कला की संगम स्थली बुन्देल भूमि में सैर साहित्य का प्रचलन लोक रागिनी के रूप में अत्यन्त प्राचीन है। सैर एक प्राचीन लौकिक छन्द है जो बारह और दस के विराम से बाइस मात्राओं का होता है। यह सैर छन्द काव्य प्रभाकर के राधिका और कुंडल छन्दों से साम्य रखता है तथा शोभधर छन्द का अपभ्रंश है।

बुन्देलखण्ड में लोकगायकी के दो रूप प्रचलित हैं, एक देशी और दूसरा विदेशी। देशी गायकी के अन्तर्गत सैर, फाग, गायन का प्रचलन है, जबकि ख्याल एवं लावनी बाहर से आने के कारण विदेशी गायकी मानी जाती है। बुन्देलखण्ड में सैर गायन का प्रचलन अत्यन्त प्राचीन है। यह फड़ साहित्य की अभिव्यंजन शैलियों में प्रमुख है। श्रीराम ह्यारणमित्र जी ने अपनी पुस्तक 'बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य' में इसका उद्भव काल ईसा की चौथी शताब्दी माना है – ''सौरियाँ जाति के उद्भूत में लोकगीत कालान्तर में गाँवों और नगरों में फैले तथा इन्होंने राजदरबारों को भी प्रभावित किया। मुगलकाल के दरबारी कवियों ने लावनी और ख्याल का गायन इसकी प्रतिस्पर्धा स्वरूप किया।'' मित्र जी का यह कथन सैर की प्राचीनता का प्रमाण है।

बुन्देलखण्ड में सैर साहित्य के जनक छतरपुर निवासी पं. गंगाधर व्यास माने जाते है। यद्यपि इनके पूर्व भी सैर लेखन का प्रचलन था। झांसी निवासी भग्गी दाऊ जी ने चार चरण वाली सैरें लिखी। इसी प्रकार श्रीनगर निवासी भैरों लाल एवं इटावा निवासी पं. बाबूलाल जी ने ''सैर दिल तरंग'' भाग १, भाग २ शीर्षक से सैरें लिखी। जबलपुर निवासी पं. जगन्नाथ मिश्र जी ने अपनी 'सैर वाटिका' नामक कृति में 'सैर बहार' 'सैर अनुराग', 'सैर कृष्ण लीला', 'सैर गुलचमन', 'सैर मनमोहन एवं सैर संग्रह भाग १,२,३ आदि कृतियों का उल्लेख किया है परन्तु इन कृतियों के रचनाकारों के नाम प्राप्त नहीं है। ये सभी सैरें चार चरण वाली हैं जो अत्यन्त श्रृंगारिक एवं गायकी के लिए अनुप्रयुक्त होने के कारण लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर सकीं हैं।

सैर साहित्य को नूतनता प्रदान कर लोकप्रिय बनाने का कार्य पं. गंगाधर व्यास जी ने किया उन्होंने विषय एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से इस साहित्य का परिमार्जन किया तथा धार्मिक कथाओं, पौराणिक आख्यानों एवं नायिका भेद, नख शिख वर्णन आदि अनेकानेक विषयों पर सैरें लिखकर इस साहित्य को समृद्धि प्रदान की। उन्होंने परम्परागत चार चरण के स्थान पर तीन चरण, एक टेक तथा शीर्ष पर दोहा व सोरठा अनिवार्य रूप से रखकर बीच में लावनी, हरिगीतिका, या झूलना रखने की वैकल्पिक व्यवस्था की जो कवि इच्छा पर निर्भर रहता था। इस प्रकार व्यास जी द्वारा तीन चरण के चार छन्द मिलाकर एक झुमका बनाने की सर्वथा नूतन प्रणाली का प्रणयन किया गया जो सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में लोकप्रिय हुई तथा कालान्तर में इसके दो दल पाण्डेय दल एवं व्यासदल के रूप में अंकुरित हुये जिन्होंने इस साहित्य के प्रचार प्रसार में अतुलित योगदान दिया। आज भी विशेष अवसरों, त्यौहारों, उत्सवों एवं पर्वों आदि पर सैरों का गायन किया जाता है जिसे फड़बाजी कहते हैं। फड़ शब्द संस्कृत के 'पण' शब्द का रूपान्तर है जिसका अर्थ है पक्ष या दल। बुन्देली लोक साहित्य में फड़ शब्द जमाव, होड़ या प्रतियोगिता के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः फड़ अर्थात दल वि[illegible] द्वारा गाये जाने वाले साहित्य को फड़ साहित्य कहते हैं। यह फड़ साहित्य एक प्रकार का प्रतिस्पर्धात्मक साहित्य है।

बुन्देलखण्ड में सैरों के फड़ लगते हैं तथा प्रतियोगात्मक रूप में सैर गायकी होती है। सैर गायन हेतु दो दल बनाये जाते हैं प्रत्येक दल में चार–चार गायक आमने सामने बैठते हैं तथा अपने साथ ढोलक मंजीरा, घेरा आदि वाद्ययंत्र लिए रहते हैं तथा अपनी अपनी वारी से बजाते हैं। सर्वप्रथम किसी एक दल का सर्वश्रेष्ठ गायक अपने मधुर कंठ से घेरा पर हाथ ठोकता हुआ सैर गाना प्रारम्भ करता है और उसके अन्य साथी वाद्य बजाते हैं। प्रत्येक सैर के प्रारम्भ में दोहा, सोरठा, छंद गाये जाते हैं तत्पश्चात् सैर की एक पंक्ति को प्रथम गायक गाता है और दल के शेष सदस्य उसे दुहराते हैं, इस दुहराव में दुगन तिगुन दी जाती हैं। सैरगायन गम्मत कहलाता है, चूँकि सैर गायकी प्रतिस्पर्धात्मक होती है अतः प्रतियोगी दलों में प्रश्नोत्तर चलता रहता है प्रथम दल किसी पौराणिक, धार्मिक, नायिकाभेद, नख शिख वर्णन आदि के सम्बन्ध में प्रश्न करता है जिसका उत्तर दूसरे दल के सदस्य को सैर में ही देना होता है उत्तर न दे पाने की स्थिति में पराजय स्वीकार करनी पड़ती है तथा विजयी दल अपनी विजय ध्वजा फहराता हुआ गणेश पूजन कर फड़ विसर्जन की घोषणा करता है।

सैर गायन की अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं विस्मय विमुग्ध कर देने वाली विशेषता यह है कि गम्मत में केवल कंठस्थ सैरें ही गायीं जाती हैं। सैर गायकों को हजारों की संख्या में सैरें कंठस्थ रहती हैं। अनवरत रूप से चलने वाली गम्मत की श्रृंखला बीच में टूटती नहीं है अतः दोनों दलों के गायक क्रमशः एक एक कर नित्य क्रिया से निवृत हो भोजनादि अल्प विश्राम के पश्चात् पुनः गम्मत में बैठ जाते हैं। सैरों के इन फड़ों में श्रोताओं की श्रवण

शक्ति और गायकों का अक्षय स्मृति कोश एवं अपार उत्साह विस्मय विमुग्ध कर देता है।

सैरों में वर्णों की योजना अत्यन्त चमत्कारिक होती है जिसे ककेहरा, निरोष्ठ, दुअंग, चुअंग, कूट, नाता, पक्ष आदि कहा जाता है। ककहरा सैर के प्रथम चरण में क दूसरे में ख तीसरे में ग, घ, ङ आदि का क्रमशः प्रयोग होता है। निरोष्ठ वह छन्द है जिसके बोलते समय ओष्ठ का संयोग नहीं होता। दुअंग में प्रत्येक चरण में आदि और अन्त में समान अक्षर की आवृत्ति होती है। उसी प्रकार चुअंग, छठंग, अठंग आदि में प्रत्येक पंक्ति में समान अक्षर की आदि अन्त और बीच में चार, छः एवं आठ बार आवृत्ति होती है।

सैर रचनाकारों ने विविध विषयों पर हजारों की संख्या में सैरें लिखी हैं। सैर सृजन हेतु उन्होंने जहाँ पौराणिक, धार्मिक ग्रन्थों से सामग्री एकत्र की है वहीं ऐतिहासिक सामाजिक, लोकाख्यानों से भी प्रेरणा ग्रहण कर सैरें लिखी हैं। नायिका भेद, नखशिख वर्णन, काव्य लक्षण, प्रकृति चित्रण, बारहमासा बसंत एवं ब्रजभूमि पर खेली जा रही राधिका कन्हाई की होती के सुन्दर चित्र सैरों में उकेरे हैं।

साहित्य में राधा और कृष्ण साक्षात् श्रृंगार के रूप माने गए हैं। अतः राधा–कृष्ण की विविध प्रेमपरक लीलाओं के चित्रण में कवि का मन अधिक रमा है। सैर साहित्य में भी राधा कृष्ण की प्रेमपरक श्रृंगारिक लीलाओं का मनमोहक चित्रण सैर रचनाकारों ने किया है। राधा–कृष्ण की होली। जिसका लोक कवियों ने बड़ा ही रोचक वर्णन किया है। उदाहरणार्थ एक सैर दृष्टव्य है जिसमें श्रीकृष्ण जी का सखाओं सहित राधिका जी के संग होली खेलने हेतु जाने का सजीव चित्रांकन है –

दोहा –श्याम सखन सौं कहत हैं, मन में यही उमंग।
चलो फाग खेलन चलो, श्री राधे के संग।।

सैर – लए सरवा टेर प्रभु ने कर लए बंग में।
बाजत हैं ढोल नगाड़ा कई अजब ढंग में।
झाँझे बजाय गावें ताने उमंग में।
नन्द नन्द फाग खेलत राधे के संग में।।१।। टेक
दई पिचक घोल मोहन प्यारी के अंग में।
कर दयो चोर बोर केशर के रंग में।
काबें कबीर मनसुक अति ही उमंग में।।२।। टेक
कोई पिये प्रेम प्याला कोई छके भंग में।
सुध भूल गई घर की विहवल उमंग में।
तानन पै तान छेड़ें नाचें मृदंग में।।३।। टेक
अब परो आन मौका फागुन के जंग में।
दिल खोल कहो सैरें चित करो चंग में।
सैरन में फाग कहते गिरधर आनन्द में।।४।। टेक

एक ओर सखाओं सहित श्रीकृष्ण हैं तो दूसरी और सखियों सहित राधिका जी पूर्ण उमंग के साथ होली का आनन्द ले रही हैं। सम्पूर्ण गोकुल राधिका कन्हाई की इस रसासिक्त होली में आनन्दमग्न है। राधाकृष्ण की इस होली ने केवल उन्हें ही नहीं रंगा है वरन् समस्त ब्रजभूमि को रंग अबीर व गुलाल से सराबोर कर दिया है –

दोहा –उत राधा ललिता सहित, सकल सखिन के संग।
इत मनमोहन ग्वाल संग, खेलत फाग उमंग।।

सैर – खेलत हैं फाग दोनों दल बाँधें पाली।
घालत गुलाल तक तक कर अपनी चाली।
मौका जो पाय यदुपत ने करी उताली।
त्रिवली के तीर तक तक पिचकारी मारी।।१।। टेक
लागी है प्रीत करके भई बहुत बिहाली।
सुध भूल गई तन की न न सकी सम्हारी।
ललिता ने झपट गहके कर पूछो हाली।।२।। टेक
सरावोर करी सारी रंग केशर डाली।
बरजी न तनक माने जसुधा को कुचाली।
डारत गुलाल मुख में तक घूंघट खाली।।३।। टेक
नभ छाय रही लाली और भू भई लाली।
गोकुल में चलो जलसा भई फाग बहाली।
गिरधर के सैर सुनतन उठ चलत कुचाली।।४।। टेक

होली के इस खेल में तन ही नहीं रंगा मन भी प्रेम की उमंग डूबा हुआ है। केशर अबीर और गुलाल के रंग हो तथा मतवाला कर देने वाली भंग हो, तो कौन नहीं नाच गा उठेगा। कुछ ऐसी ही रंग और भंग की उमंग में डूबे गा बजा रहे हैं। गोप–गोपिकाओं सहित राधा और कृष्ण। सैर दृष्टव्य है –

दोहा –सब खेल रहे जु मिल, होरी उमंग में।
मतवाले बने कोई, छक रहे भंग में।।

सैर – अलमस्त फिरे कोई रंग रहे रंग में।
रहे बजा ढोल कोई निरत मृदंग में।
कोई बजा रहे ताली अपने ही ढंग में।
घनश्याम फाग खेलें सखियन के संग में।।१।। टेक
डारत हैं रंग कोई हो तो उतंग में।
रंग दई सकल सखियां जो परी तंग में।
धर धर पिचकारी तान मारें लख अंग अंग में।।२।। टेक
हमसें न पार पाहो गोकुल के दंग में।
भग जैहो छोड़ बाने अबकी अडंग में।
रोशन के सैर सैरन सारे जहंग में।।३।। टेक

ब्रज में राधाकृष्ण के बीच हो रही होली का एक मनमोहक चित्र इस सैर में दृष्टव्य है –

दोहा –ब्रज में होरी हो रही, घर घर मचो उमंग।
खेल रहे मिल परसपर, माधव राधे संग।।

सैर – रहे खेल फाग मोहन पिचकारी घाले।
तक तान खेंच मारी घूंघट के खाले।

सरावोर भई राधे रंग केशर डाले।
मुसकाय कहै लाल परो हमरे पाले।।१।। टेक
मल रए गुलाल लाल हंस दै दै ताले।
आन अबीर झालें भर भर के झाले।
भई लाल लाल राधे उड़ रही गुलालें।।२।। टेक

ब्रज में होली खेली जा रही है। गोप–गोपियों सभी मिलजुल कर हर्ष आनन्द और उमंग से ब्रज कुंजों में होली खेल रहे हैं। राधा और कृष्ण भी फाग में सम्मिलित हो आनन्द मग्न हैं–

दोहा : ग्वाल बाल गोपी सकत, गावत करत अनन्द।
फाग राधिका श्याम संग, खेलत श्री नंद नन्द।।

सैर : कुसमानी पोसाक सरस सोभत नीकी।
क्या श्रवन भाल लाल लाल आभा ई की।
कंचन की पिचक पानि लखत जटत मनी की।
कुंजन में फाग मची कृष्ण राधा जी की।।१।। टेक
जो वरन सकें सोभा ब्रसभान लली भान लली की।
केशर गराय भरी नहीं रंग की फा की की।
कर कलसा ले झपट चली भई ना जी की।।२।। टेक

होली एक ऐसा मदमस्त कर देने वाला पर्व है। जिसमें रस, आनन्द और उल्लास के आवेग में मन तरंगित हो उठता है कोमल एवं रोमांटिक भावों से आपूरित एक सैर दृष्टव्य है, जिसमें भावों का उत्कर्ष अत्यन्त ही सुहावना है। श्रृंगार रस अपने समस्त उपांगों के साथ इस सैर में अभिव्यंजित हुआ है –

दोहा –राधे के ढिंग आय के, कह रई ब्रज की बाम।
ऐसे में माने नहीं, छली नंद का श्याम।।

सैर – छलिया है लाल ऐसो जो अजब चाल री।
मानत हैं नहि रोकी कर रयो कुचाल री।
रयो पिचक मार हमको कर कर उताल री।
लालन को लाल कर देव मलकर गुलाल री।।१।। टेक
चतुरइ से पकर लीनों जुरमिल के बाल री।
केशर को रंग करके उर दशा डाल री।
मारो अबीर हंस के मोहन के गाल री।।२।। टेक

बसन्त का मादक वातावरण और फागोत्सव मानव मन में हर्ष और उल्लास की सृष्टि करता है। मन मयूर नाच उठते हैं हर्ष की तीव्रतम भाव हिलोरें स्वरबद्ध हो उठती हैं गीतों के मधुर स्वर गूँजने लगते हैं सभी होली मनाने में मग्न हैं। ब्रज की गलियों में होली का रंग बिखरा हुआ है। श्रीकृष्ण ग्वालवालों के साथ होली खेलने के लिए निकल पड़े हैं, उधर से राधिका जी भी सखियों सहित हाथों में अबीर लिए निकल पड़ी हैं। सभी एक दूसरे पर रंग गुलाल की बौछार कर रहे हैं जिससे तन और मन दोनों ही रंग गए हैं यह रंग तन मन तक ही सीमित नहीं है अपितु सम्पूर्ण वातावरण में व्याप्त है –

दोहा –लाल लाल ब्रज ग्वाल सब, लाल लाल ब्रजबाल।
लाल लाल झोरा लिए, मेलत लाल गुलाल।।

सैर – भई लाल लाल कुँजै गोकुल की गली लाल।
दीखत अकास लाल लाल अवन थली लाल।
वह लाल लाल जमुना की धार चली लाल।
नन्दलाल लाल रंग से वृषभान लली लाल।।१।। टेक
भुई लाल लाल वृन्दावन द्रुमन दली लाल।
लह लही लता लाल लाल फूल फली लाल।
है लाल लाल शाखा गुंजन पै कली लाल।।२।। टेक
सब लाल लाल राधे में संग अली लाल।
कुमकुमा लाल कुम कुम भर पिचक घली लाल।
लै लाल लाल रोरी गोरी के मली लाल।।३।। टेक
सरावोर लाल नखशिख लौ छैल छली लाल।
रंग लाल सैर गंगाधर कहत भली लाल।
नन्द लाल लाल रंग में वृषभान लली लाल।।४।। टेक

इस सैर में अनुप्रास अलंकार की सुष्ठ योजना हुई है। भाषा प्रयोग एवं भाव उत्कर्ष की दृष्टि से यह सैर अद्वितीय है। इसी प्र होली के सरस भावों को प्रकट करती एक और श्रृंगारिक स दृष्टव्य है जिसमें श्रृंगार रस की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है –

दोहा : मुख मींजत अनख्यात कत कर तिरछौहीं भौंह।
होरी में अस होत है, एरी तोरी सौंह।।

सैर : गिरधारी पै प्यारी डारी गुलाल छोर।
हुसयारी कर मारी हारी दुकूल कोर।
बलहारी सिंसारी सुखमारी चहुँओर।
भरमारी पिचकारी भई सारी सरवोर।।१।। टेक
मुखमोरी चितचोरी गोरी कँवर किशोर।
रंग साने कुसमाने बरसाने की ओर।
ब्रज बाजे सुख साजे लख लाजे घनघोर।।२।। टेक
छई गेरी ब्रजखोरी भवो होरी को सोर।
सब हारी ब्रज नारी जब डारी झकझोर।
मुखधारी झनकारी बेसारी की वोर।।३।। टेक
सब बामें हरसावें दरसावे कुच कोर।
रंग भींजत हरि खीजत मुख मींजत बरजोर।
गुन आगर सुखसागर नागर नवल किशोर।।४।। टेक

भाव एवं शिल्प की दृष्टि से सुसम्पन्न बुन्देली लोकरागिनी में निबद्ध सैर साहित्य की विविध भाव सम्पन्न सम्पदा अद्वितीय एवं अनुपमेय है। बुन्देली लोक साहित्य की इस विपुल साहित्य सम्पदाओं जो रचनाकारों व गायकों के कंठों एवं पोथियों में कैद होकर रह गई है उसका प्रकाशन हिन्दी साहित्य जगत के लिए एक अनुपम वरदान सिद्ध होगा। अतः इसका संकलन एवं प्रकाशन आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य है।

– ३०, तमराई मुहल्ला, छतरपुर (म.प्र.)

□

आचार्य कवि बिहारी लाल भट्ट

- डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी

बिहारी कवि का जन्म हिन्दी साहित्य के इतिहास के रीतिकाल और आधुनिक काल की सान्ध्यबेला में विजयादशमी के दिन सं. १९४६ में बिजावर में हुआ था; जो उस समय एक देशी राज्य था और वर्तमान में म.प्र. में छतरपुर जिले की एक तहसील है।

उनकी शिक्षा पाठशालाओं में नहीं हुई थी, स्वाध्याय से ही उन्होंने काव्य शास्त्र और संगीत में पर्याप्त प्रवीणता प्राप्त कर ली थी। सुनते हैं – उनकी काव्य प्रतिभा के दर्शन बाल्यकाल से ही होने लगे थे। जब वे आठ वर्ष के थे तभी उन्होंने एक दोहा रचा था; जिसको सुनकर तत्कालीन बिजावर नरेश महराज भानु प्रताप सिंह ने उन्हें 'कवि जी' की उपाधि से विभूषित किया था। भानुप्रताप सिंह के स्वर्गवास के पश्चात् टीकमगढ़ (ओरछा राज्य) के द्वितीय राजकुमार सावन्त सिंह जू देव बिजावर गोद आकर गद्दीनशीन हुए। युवा होते–होते बिहारी कवि के काव्य में काफी निखार आ चुका था। वे सावन्त सिंह के दरबारी कवि हो गये थे।

उन दिनों टीकमगढ़ का राजदरबार साहित्य का सुविख्यात अखाड़ा था। देश का शायद ही कोई प्रसिद्ध हिन्दी कवि ऐसा हो जिसे कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) के दो–दो दिन तक चलने वाले कवि सम्मेलनों में भाग लेने का अवसर न मिला हो; परन्तु बिहारी कवि ने भी उसमें भाग लिया हो, ऐसा पता नहीं चलता है। कहा जाता है कि बिजावर नरेश सावन्त सिंह तथा टीकमगढ़ नरेश वीरसिंह जू देव (द्वितीय) जो कि सावन्त सिंह के सगे भतीजे थे, उनमें पारिवारिक कारणों से कुछ खटपट थी। इस कारण सावन्त सिंह ने बिहारी कवि को टीकमगढ़ जाने की मनाही कर रखी थी। सन् १९४० में सावन्त सिंह का स्वर्गवास हो गया और कुछ जमाना भी बदल गया तब बिहारी कवि का टीकमगढ़ आना–जाना प्रारम्भ हुआ। महाराज वीरसिंह ने उन्हें राजकवि घोषित कर सम्मानित किया।

यद्यपि बिहारी कवि की मान्यता यह थी कि "कहत बिहारी कवि, कवि और कुंजर की एक ही रीति बानी में बरन–बरन। कै तौ निज ग्रह कै नरेश ग्रह पाबै छवि अनत न जाबै ठौर दो ही घरन–घरन।" कवियों के स्वाभिमान के निमित्त वे इतना कहकर भी सन्तुष्ट नहीं हुए। अपनी बात कौ और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं – "मच्छर तौ नाहीं जो जगन्तर में फेरी देय, स्वान तौ नहीं है फिरै घूमत घर–घरन।" तो भी वे केवल राजकवि की ठसक में न रहने वाले मौजी जीव थे। टीकमगढ़ में उन्हें अपने शिष्यवत् मित्र स्व. भगवान दास गोस्वामी के घर बूटी (भंग) छानते हुए या महेन्द्र सागर के किनारे प्रतापेश्वर महादेव के मन्दिर पर बीस–पच्चीस काव्य रसियों और विद्यार्थियों के साथ गपशप करते और मौज में आकर कविताएँ सुनाते हुए जब चाहे जब देखा जाता था। विद्यार्थियों और नवयुवकों की संख्या अधिक होने पर वे अधिकांश दोहे सुनाया करते थे, जो उपदेशपरक होते हुए भी उनमें उपमाएँ, उदाहरण और प्रतीक दैनिक जीवन से चुने हुए होते थे। जैसे – रेल, सिंगल, पटरी, हरमोंनियाँ, बैटरी, लालटेन, माचिस, हार्न, इंजन आदि। प्रसादमयी भाषा और ज्ञात उपमा, उदाहरां आदि के कारण उनका रस भी खूब लिया जाता है।

उदाहरणार्थ कुछ दोहे दृष्टव्य हैं –

१. रेल और रमणी सती, दोनों की इक बात।
अपनी पटरी छोड़ कें, और कहूँ नहिं जात।।

२. हारमोनियाँ मनुज की, है एकइ सी पोल।
जब लग भीतर है हवा, तब लग बोलत बोल।।

३. वीर्य व्यर्थ नहिं खोइए, रखिए पूरी जोत।
निबल बैटरी का जलै, तन–तन जुग–जुग होत।।

इस प्रकार उपमाओं, उदाहरणों और प्रतीकों की योजना उनकी अपनी ओर निराली है।

बिहारी कवि के अन्य छन्दों की अपेक्षा दोहे की लोगों के कण्ठ में अधिक बसे हैं। डॉ. बहादुर सिंह परमार की सूचना के अनुसार उनके दोहों की संख्या सबा आठ सौ से अधिक है। (राष्ट्रगौरव– बुन्देली बाँकुरे भाग–१, साहित्य अंक पृ. १९३ छत्रसाल स्मारक ट्रस्ट, छतरपुर म.प्र.)

१. श्रृंगार सुषमावली – १३२ दोहे
२. सामयिक उपमावली – १०४ दोहे
३. भारत दृश्यावली – ४८ दोहे
४. प्राकृतिक शिक्षावली – १४९
५. स्फुट – ४०० दोहे

इन दोहावलियों के अतिरिक्त कवि की अन्य रचनाएँ वीर बावनी, लगनलीला (चौकड़िया फागों का संकलन, इसकी भाषा बुन्देली है), मथुरा गमन, वैराग्य वावनी, शरीर सप्तक, गाँधीगमन, गुरीरी गारी (गारी की लोकशैलीबद्ध रचना), पाप प्रक्षालक, अष्टदशी, बिहारी विहार, ज्ञान गीतावली, बिहारी विनोद, कुण्डली कल्पलता आदि हैं। और भी कुछ अप्रकाशित रचनाएँ – गीता गंगोत्री, ईश्वरीय गीता, वरिद वसीठ, शान्ति संवाद हैं। इनके अतिरिक्त भी कुछ पाण्डुलिपियाँ यत्र–तत्र बिखरी होने की संभावना है।

'साहित्य सागर' उनका लक्षण ग्रंथ है। उसी के कारण उन्हें

रीति परम्परा का कवि माना जाता है।

बिहारी कवि के वर्ण्य विषयों में विविधता है। श्रृंगार की प्रमुखता होते हुए भी भक्ति, नीति, लोक चेतना जागरण, इतिहास आदि विषयों को भी उनकी कविता में भरपूर स्थान मिला है।

अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह उनके आलम्बन श्री राधा कृष्ण ही थे। वे भक्त तो थे परन्तु संसार त्याग कर सन्यासी हो जाने का उपदेश नहीं देते थे, बल्कि श्रीमद्भागवत गीता की तर्ज पर उन्होंने कहा है कि तीर्थ, व्रत, पूजा–पाठ अभिषेक और सांसारिक कार्य व्याह–काज आदि सब कुछ करो किन्तु ''कहत बिहारी न काहू में होवै लिप्त, सबसे विलग रहै ध्यान चक्रवाणी में। जगत में ऐंन रहै, ऐंन सुख चैन रहै, रैन रहै ऐसी ज्यों पुरेंन पानी में।''

वे भक्त थे और भक्ति के सच्चे स्वरूप को भी पहचानते थे। इस बात के अनेक अन्तर्साक्ष्य उनके काव्य में विद्यमान हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है –

''राम सम्प्रदा कौ चाहै श्याम सम्प्रदा कौ होय,
चाहे भजे शक्ति चाहै सेवह सिवालौ है।
कहत बिहारी जैन आरिया कबीरी होय,
गाबै ग्रंथ साब चाहै देखहिं दिवालौ है।
लाम इसलाम परसीनी चाहै चीनी होय,
चाहै मत ईसा मत सबकौ निरालौ है।
सुनों मतवालो होय कोऊ मतवालौ,
वही होय मतवालौ जों न होय मतवालौ है।''

उपदेशों में प्रायः ग्रहणशीलता कम होती है परन्तु उपर्युक्त छन्द की अन्तिम दो पंक्तियों को कवि ने यमक और लाटानुप्रास की चासनी में इस तरह सराबोर कर दिया है कि उनमें निहित उपदेश स्वतः हृदयग्राही हो गया है। वैसे बात साफ है कि किसी भी मत, सम्प्रदाय या पन्थ को मानो किन्तु पूरी तल्लीनता से मानने की सार्थकता है। दिव्य आनन्द की अनुभूति उसे ही होती है जो मत मतान्तर से ऊपर उठकर ईश्वरीय चिन्तन करता है।

वे केवल भाग्यवादी नहीं थे, भाग्य की सिद्धि के पुरुषार्थ को आवश्यक मानते थे। उनका कथन है कि –

''भाग्य हू चलो सजै, पै उपाय न तजै,
यत्न जो नहीं मढ़ै, तैल न तिली कढ़ै।
भाग्य नहीं मानिए, यत्न सदा ठानिए,
यत्न जब न फलै, भाग्य तबै है भलै।
एक पहिया लह, रथ नहीं चलै,
सिद्ध नहीं स्वारथ, बिन पुरषारथ कै।

यद्यपि बिहारी जी रीति कालीन काव्य परम्परा के कवि थे; जिसमें काव्य–शिल्प और कविता के बाह्य अलंकरण को अधिक महत्व दिया जाता था; किन्तु उनका मत था कि ''कविता वही है जामें भासै विमल व्यंग्य...।''

'साहित्य सागर' में उन्होंने चाहे भले ही परकीया नायिका के भेद–उपभेदों के लक्षण छन्द रचे हों परन्तु उनका वैचारिक पक्ष वही है कि ''कामिनी वही जाकी प्रीति निज प्रीतम सों।''

उनमें वर्ण्य विषयों के सम्बन्ध में आलेख के सीमित कलेवर में अधिक तो नहीं कहा जा सकता है, किन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इस आक्षेप से कि ''श्रृंगार के वर्णन को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया था। इसका कारण जनता की रुचि नहीं; आश्रयदाता राजाओं–महाराजाओं की रुचि थी, जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।'' बिहारी इस आक्षेप से बचे रहे हैं। यद्यपि वे राज्याश्रित दरबारी कवि रहे हैं, परन्तु उन्होंने राजाओं की विलासिता को उभारने के बजाय उनके पूर्वजों की वीरता का बखान कर उनमें क्षात्र तेज का संचार करने का प्रयास कर सच्चे दरबारी कवियों का कर्तव्य पूरा किया। जैसे – ओरछा के संस्थापक महाराज रुद्रप्र तथा उनके वंशज भारती चंद्र, मधुकरशाह, रामशाह, वीरसिंह (प्रथम), कुँअर हरदौल की वीरता एवं आत्म बलिदान के सम्बन्ध में ओजस्वी छन्द कहे। यहाँ तक जुझार सिंह के जुझारूपन की बात भी कह दी, परन्तु उनके मन में जुझार सिंह की अनीति की खटक भी थी जिसे वे नहीं पचा सके और उनके जुझारूपन को व्यर्थ करते हुए यह कहने से भी नहीं चूके कि –

''किन्तु हरदौल के अनर्थ अरुझन सों,
पूजन जोगन भई, जूझन जुझार की।''

(स्मरणीय है कि जुझार सिंह ने अपने भाई हरदौल को विष दिलवा कर मरवा डाला था)

ओरछा के उपर्युक्त राजाओं, पन्ना के छत्रसाल, छत्रपति शिवाजी महाराणा प्रताप, के अतिरिक्त गुरु नानक, राम, कृष्ण, भीम अभिमन्यु के चरित्र और कृतित्व का 'वीर वावनी' तथा अन्य स्फुट छन्दों में बखान कर आधुनिकता की चकाचौंध और अन्धी दौड़ में अपनी पहचान खोती हुई और अपनी गौरवशाली परम्पराओं से कटती हुई पीढ़ी की आत्मा को झकझोरने का प्रयास करने आप में महत्वपूर्ण है।

'भारत दर्शनावली' में भी राष्ट्रनायकों, स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की महिमा का वर्णन भी इसी श्रृंखला की एक कड़ी है। इस ग्रंथ में एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि आजादी के बाद राष्ट्र में पनपती हुई कर्तव्य विमुखता से भी कवि बेखबर नहीं है। निम्न पंक्तियां दृष्टव्य हैं –

''अब इतने सुखिया भये, इतने कोमल गात,
बिना साइकिल के चढ़ें, लघुशंका नहिं जात।
कर्म मलीनता कर लई, करें और पर रोष,
चूल्हे में अधिकित करें, देत शनीचर दोष।

अपनी आदत आपनें, आपइँ लई बिगार,
कहा करै मजहब तुम्हें, कहा करै सरकार।

इस सब से कवि का सामाजिक सरोकार सिद्ध हाता है और वह राज्याश्रित कवियों पर आचार्य शुक्ल के आरोप से साफ बच जाता है।

काव्य शिल्प की दृष्टि से कवि आधुनिक काल में विकसित होने पर भी रीतिकालीन शैली का है। अपने काव्य में दोहों, सवैयों, कवित्तों, घनाक्षरी छन्दों का अधिक प्रयोग हुआ है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें दोहा छन्द सर्वाधिक सिद्ध है। प्रसाद गुण भी दोहों में अधिक है। अलंकार आयास भी आये हैं और अनायास भी। उनके काव्य में उपमा, रूपक, यमक, अनुप्रास आदि का अधिक प्रयोग हुआ है।

बिहारी कवि की भाषा मुख्य रूप से बुन्देली है किन्तु उसमें कहीं–कहीं ब्रज और परिनिष्ठित हिन्दी की झलक भी है। मौज में आकर लिखी एकाध कविता उर्दू बहुल हिन्दी में भी उपलब्ध है। जैसे –

''इश्क में न आया यहाँ, आया क्या कमाया,
वक्त नाहक गँवाया, किया जाया जिन्दगानी का।
कहत बिहारी दिन मौज के, मजे से लूटो,
समझो सबाब करे हुबाब एक पानी का।
हासिल हर एक को न होती, हुस्न की दौलत,
रहता जहाँ में नाम नेकी की निशानी का।
आशिक मिजाज के मिजाज को भी जानो,
जरा जालिम बनो न, मिला आलम जवानी का।''

उनकी समस्या–पूर्ति की क्षमता की चर्चा किये बिना बात अधूरी रहेगी। एक बार टीकमगढ़ दरबार में समस्या रखी गयी, समस्या के बोल थे।'' मृतक भ्रमर अरविन्द पर नाद नृत्य दोऊ करै।'' इस समस्या की पूर्ति के लिए आधे घण्टे का समय निर्धारित था। दरबार में उपस्थित कविगण इस पर विचार ही करते रहे किन्तु बिहारी जी ने निर्धारित समय में समस्यापूर्ति कर दी, जो इस प्रकार है –

''श्रावण मास सुदेश वृन्द बूँदन जल बरसत,
चलहु लाल तुम लखहु तहँ राधा मुख सरसत।
कठिन काठ कौ भोंर डोर रेशम छवि छाजै,
ताहि फेंक कर अली कमल कर मध्य फिराबै।
कहें बिहारी तेहि देख कर मो मन अति अचरज करै,
यह मृतक भ्रमर अरविन्द पर नाद नृत्य दोऊ करै।''

यह उनकी बहुत प्रसिद्ध और बहुप्रशंसित रचना है।

इसके अतिरिक्त उन्होंने ''साहित्य सागर'' में लक्षण ग्रंथ की पूर्णता के लिए अनेक चमत्कारपूर्ण रचनाएँ की हैं। जैसे – चित्रकाव्य, सर्वतोभद्र गति, कमलबन्ध, धनुषबन्ध, अग्निशास्त्र बन्ध आदि। यह सब साहित्यिक दृष्टि से महत्व नहीं रखता है। इसे साहित्यिक खिलवाड़ कहना अनुचित न होगा।

आधुनिक काल प्रारम्भ होने और खड़ी बोली हिन्दी में गद्य के अतिरिक्त काव्य में भी गति पकड़ने तक बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', सत्यनारायण 'कविरत्न', गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' तथा सनेही मण्डल के अन्य कवि ब्रजभाषा का ध्वज थामे रहे थे। रीति ग्रंथ लिखने और रीतिबद्ध काव्य रचना का युद्ध सं. १८९० वि. तक समाप्त हो गया था किन्तु टीकमगढ़ (बुन्देलखण्ड) दरवार के दो राजकवि ब्रजेश (सं. १९२८–मृत्यु सं. अज्ञात, परन्तु सं. २०१४ तक जीवित होने की जानकारी है) और बिहारी (सं. १९४६–२०१८ वि.) रीतिकालीन परम्परा का निर्वाह करते रहे। दोनों ने लक्षण ग्रंथों की सौदाहरण रचना की। इनकी वर्ण्य वस्तु भी युग सापेक्ष रही। दोनों ने युग पुरुष गाँधी पर लिखा, ब्रजेश ने 'मोहनमाला' तथा बिहारी ने 'गांधी गमन'। परन्तु खेद है कि दोनों को हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्थान नहीं मिला, यहाँ तक कि सन् २००१ में प्रकाशित डॉ. आर.एन. शर्मा के बुन्देली भाषा साहित्य के इतिहास में भी बिहारी का उल्लेख नहीं है। (बृजेश का उल्लेख अवश्य डॉ. भागीरथ मिश्र ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी काव्य शास्त्र का विकास' के दूसरे संस्करण में कर दिया है।)

सं. २०१८ वि. में कवि बिहारी लाल भट्ट ने भगवान श्री कृष्ण के गोलोक में नित्य विहार करने हेतु महाप्रस्थान किया।

उनकी कीर्ति को अक्षुण्य रखना हमारा पुनीत कर्तव्य है।

– पुरानी नजाई, टीकमगढ़ म.प्र.

☐

बुन्देली कहावतों में जीवन दर्शन के प्रमुख तत्व

– डॉ. वीरेन्द्र 'निर्झर'

प्राणी–जगत में मानव अधिक चेतनाशील और ज्ञान सम्पन्न प्राणी है, उसके चैतन्य पर अज्ञान का आवरण झीना होता है, जिसके कारण नाम रूपात्मक जड़–चेतन जगत के सम्पर्क से निष्पन्न उसका अनुभूत्यात्मक अंतर्गत कहीं अधिक व्यापक होता है। उसकी चेतना ज्ञानक्षेत्र के विस्तार एवं विचारों की परिपक्वता के साथ बाह्यजगत और अन्तर्जगत के रहस्यों को जानने के लिए 'क्या है', 'कैसे है' की जिज्ञासा के साथ देखने का प्रयास करती है और 'कैसे होना चाहिए' का निर्णय लेती है। जीवन के रहस्यों के प्रति इस निर्णय प्रक्रिया का निचोड़ अथवा दूसरे शब्दों में जीवन के प्रति व्यक्ति का व्यक्तिगत दृष्टिकोण ज्ञान–विज्ञान की सीमायें खींचती हैं। अतः इस संसार में किसी का परिचय पाने का सही अर्थ है, उसके जीवन–दर्शन को जानना। जीवन मूल्यों के प्रति उसके विचारों को परखना एवं जीवन के प्रति दृष्टिकोण को समझना।

बुन्देली जनपद के भी ठीक ठीक परिचय के लिए उसके जीवन–दर्शन का सम्यक् विश्लेषणात्मक अध्ययन अपेक्षित है। यहां हम बुन्देली कहनूतों के सहारे 'बुन्देली जीवन दर्शन' के कुछ प्रमुख तत्वों–प्रेम, कर्म, आशावाद, पुरुषार्थ, सेवाभाव आदि को समझने का प्रयत्न करेंगे।

प्रेम – प्रेम सृष्टि का कारण और नियामक है। प्रेम के बिना समस्त संसार असार सा प्रतीत होने लगता है। प्रेम की इसी गहराई को परखते हुए कहावतों में उसके प्रति अपना दृष्टिकोण लोकमानस ने कुछ इस प्रकार स्थिर किया है –

बनै तो कोऊ के होकें रऔ,
नई तौ अपनौ करकें रऔ।

ईर्ष्या द्वेष से मुक्त प्रेममय जीवन से ही जीवन का वास्तविक सुख प्राप्त होता है, अतः ''सबसें हिलमिल कें रओ चाइये।'' यह वह अमृत तत्व है जिसके सानिध्य में सब कुछ अपना जान पड़ता है। ऊँच–नीच, जात–कुजात आदि के निरर्थक बंधन उसे नहीं बांध पाते। कहा जाता है –

'प्रेम न देखै जात कुजात'

क्योंकि प्रेम हृदय की मुक्ति है। प्रेम के भावनात्मक बंधन की यही विशेषता है कि उसमें आबद्ध हृदय अपने को मुक्त अनुभव करता है। किसी प्रकार के बंधन उसे स्वीकार नहीं। कहावत है – ''प्रेम में नेम नहीं''

देह मन और आत्मा के सामंजस्य से उद्भूत प्रेम वास्तविक प्रेम होता है। यही ही व्यक्तित्व का विकासक होता है, क्षणिक और टूटने वाला नहीं। कहते हैं –

''साँसी प्रीत न टूटै,
जैसें बेल बिरिछ सें लिपटै, सूख जाय न छूटै।''

किन्तु देहयष्टि की रूपश्री के आकर्षण से प्रभावित प्रेम पतन की ओर ले जाता है, अतः त्याज्य है। कहा जाता है – ''प्रीत करे को जौ फल पाओ, अपुन थुके और हमें थुकाओ'' देह का मोह और अधिकार प्रियता प्रेम की पावन धारा को उच्छवसित कर देते हैं। किन्तु आत्मसंयमित प्रेम भावना में प्रेम के स्थूल उपादान तिरोहित हो जाते हैं और उनके स्थान पर प्रेम की सूक्ष्मता समासीन होने लगती है, जहाँ कहना पड़ता है – ''प्रीतम ढूँढन मैं चली आई आप हिराय।'' ऐसी प्रेम लहरियों से आन्दोलित जीवन ही वास्तव में सार्थक है।

कर्म – ''कर्मन की गत कोऊ ने नई जानी।'' गीता में भी – 'गहना कर्मणो गतिः' कहा गया है। वास्तव में कर्म की गति गहन होती है। किन्तु बुद्धि इस गहनता को पार करने में सहायक है। कर्म ही बन्धन और मुक्ति दोनों है। मात्र उपयोग का अन्तर है, जो हमारी बुद्धि पर निर्भर करता है कि किस वस्तु का कब, कैसा और कैसे उपयोग हमारे लिए हितकर होगा। प्रचलित कहावत – ''जोगी जोग सें जुग जुग जियत'' का योग गीता का ''योगः कर्मसु कौशलम्'' ही है। योग का अर्थ ही जोड़ना होता है। बुद्धि से कर्म का योग ही कर्मयोग है तथा कर्मयोगी बनकर अपना तथा दूसरों का विकास करना ही परम पुरुषार्थ है। बुन्देली जन जीवन ने सदैव इसी पुरुषार्थ को महत्व दिया है और 'चरैवेति' की अमोघ शक्ति को जीवन में उतारा है। उनका विश्वास है कि –

हाँत बाँद कें बैठ न रइये, करिये गोड़ापाई।
दूद–भात नित खाय बिलइया, कब कब भैंस बिसाई।।

श्रमशील व्यक्ति ही सुस्वादु फल का आस्वाद लेता है। किन्तु जो श्रम में आलस्य करता है, बैठा रहता है, उसका सौभाग्य भी बैठा रहता है। कहावत है – ''बैठे बैठे खायें से पार बिला जात।'' अतः श्रमशील बनो। चलने वाले (कर्मरत) का सौभाग्य भी चलने लगता है। ''बैठे से बेगार भली'' कहावत इसी बात की पुष्टि करती है।

कर्म में आलस्य बहुत बड़ा दोष है। कल, परसों, नरसों का कोई निश्चय नहीं है। क्योंकि जिस शरीर से कर्म करना है उसका कोई ठिकाना नहीं है – काल के हाँत कमान, बूढ़ौ बचै न ज्वान।'' शरीर की स्थिति पर ही कर्म की स्थिति निर्भर है। इसलिए आलस्य न करते हुए वर्तमान पर ही अधिक बल देने को कहावतें कहती हैं – ''काल को भगेसो आज नइयाँ, कालकी काल सें लगी।'' जो आज है वह निश्चित है और जो कल होगा वह अनिश्चित, इसलिए जो करना है वह अभी ही कर लेना उचित है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि बुन्देलखण्ड वासियों का कर्मवाद उन्नतिमूलक था। वे चाहते थे कि उनका जीवन पूर्णरूपेण कर्ममय बना रहे उन्हें किसी दूसरे का मुखापेक्षी न बनना पड़े, क्योंकि – 'पराई आसा मरै उपासा'। इसीलिए यहां के लोग सदैव आलस्य से परे अपनी–अपनी योग्यता के अनुसार देश एवं जाति की उन्नति के लिए सदैव जागरूक रहे। वे मानते थे कि ज्ञानयुक्त कर्म में निर्माण की अमोघ शक्ति रहती है। इसी से वे कहते हैं – ''कर्ता सें करतार हारे।''

आशावाद – कर्म पर आस्था रखने वाले बुन्देलखण्डवासी वर्तमान के प्रति उत्साहित और भविष्य के प्रति आशान्वित थे। उनका दृढ़ संकल्प सदैव प्रेरणा रूप उनके साथ था। जिसे वे विकास की अमोघ शक्ति मानते थे। उनका विश्वास था कि ''मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।'' तात्पर्य यह कि निराशावाद और पलायनवाद को उन्होंने कभी महत्व नहीं दिया। वे मानते थे कि निराशावाद से विकसित चिन्ताधुन के समान शरीर को खा डालती है। कहते हैं – ''सोसबो जी मोचबो।'' निश्चित ही सच्ची मुक्ति की ज्योति वहाँ नहीं प्रदीप्त होती जहाँ हम सिर पर हाथ धरे, एकान्त कोने में बैठे बिसूरा करते हैं, बल्कि उसका अदम्य प्रकाश वहाँ विकीर्ण होता है, जहाँ हम आस्थावान बनकर कर्म की ओर अग्रसर होते हैं। लोक मनीषा कहती है – ''जीने चोंच दई सो चुन दैऐ।''

कर्म के कोलाहल में ही जीवन के मधुर संगीत का आनंद लेने वाले व्यक्ति को निराशा कभी हतप्रभ नहीं कर पाती। उत्साह से भारी आशा या आशा से परिपूर्ण उत्साह उन्हें सदैव उद्यत बनाये रखता है। वे थोड़े में ही संतोष प्राप्त कर सुखद भविष्य के लिए कर्मरत रहते हैं। ''मन चंगा तो कठौती में गंगा'' कहावत उनकी इसी आशावादिता का प्रतीक है। यह आनंदपूर्ण मानसिक स्थिति दिव्यता की स्थिति है।, शुद्ध आनंद का स्पन्दन है।

आत्मविश्वास और आशा का योग महत्वपूर्ण है। आत्मविश्वासी अपने कर्म के पूर्णता के प्रति आशावान रह सकता है। जिसने आशा का त्याग किया उससे आत्मविश्वास का पल्ला भी छूट जाता है। आत्मविश्वासी और आशावान लोग सदैव विकास करते हैं तथा शोभा प्राप्त करते हैं। समाज द्वारा वंदनीय भी होते हैं। कहा जाता है ''उअते खाँ सब पाँ लगत।'' ऐसे व्यक्ति को ही जीने का अधिकार है। वे ईश्वर से सौ साल तक जीने की प्रार्थना करते हैं और कहते हैं – आशा की बेल पहारै चड़त।'' किन्तु निराशावादी पलायनवादी बन जाते हैं। जीवन उनके लिए भार रूप होता है और वे धरती के लिए। ऐसे लोगों के लिए कहावतों का निर्णय है –

आस बिरानी जे करें होतन ही मर जायँ।

पुरुषार्थ :– पुरुषार्थ अमृतत्व प्रदान करने की क्षमता रखता है। हमारा पुरुषार्थ या पौरुष इसी में है कि हम सांसारिक जंजालों से भागे नहीं बल्कि उबरने का प्रयास करें। उनसे मुक्ति पायें। उनके सामने अपने शस्त्र न डाल दें। शस्त्र डालने का प्रयास पौरुष नहीं कायरता है। कहा गया है –

कायरन की जिंदगी सें तो मरबो भलो।

भव त्रास से रोते विलखते, जिधर सींग समायें भाग खड़े होना पुरुषार्थ नहीं। पुरुषार्थ तो वह है जो परिस्थितियों के सामने झुकना नहीं बल्कि उन्हें अपने अनुकूल ढाल लेता है। यह पुरुषार्थ या ''पुरुस ही पारस है।'' जिसके स्पर्श से लोहा भी कुन्दन बन जाता है। पौरुष के प्रकाश में कष्टकर प्रतीत होने वाले सभी सांसारिक उपक्रम उसी प्रकार सुखकारी लगने लगते हैं, जैसे ग्रीष्म की श्रान्ति में वृक्ष की छाया। कहावत है –

''पुरस की माया, विरिछ की छाया।''

सेवाभाव :– कहावतों से स्पष्ट होता है कि यहाँ के निवासी दूसरों का सम्मान करना जानते थे। दूसरों की भावनाओं का आदर करते थे। वे जानते थे कि ''मान्स कौ मान्स से काम परत'' अथवा ''मान्सई मान्स के कामें आउत।'' अतः वे अपने तक ही सीमित न रहकर दूसरों के पास भी आते जाते थे, उनसे सम्पर्क स्थापित करते थे, उनके सुखदुख को अपना सुखदुख मानते थे। निम्न कहावतें इसी तथ्य की प्रतीक हैं –

१. तेली को बैल मरै कुम्हारिन सती होय।

२. कोरी को ब्याव कुंदेरो पर पर जाय।

वे दूसरों के उत्थान के लिए प्रयास करते थे। निर्धन और गिरे हुओं की सेवा करना अपना धर्म समझते थे और उसमें सुख का अनुभव करते थें, उनका विश्वास था कि – सेवा करै सो मेवा पावै। इसीलिए उनका परदुःखकातर हृदय सभी प्रकार के विवस, विकल, बलहीन, दीन शापित एवं तापित मानवों के कष्टों को देखकर भर आता है। और वे अपनी पहुँच से भी आगे सेवा करने को प्रस्तुत होते थे। सेवा भावना की इस पराकाष्ठा के प्रति कहीं कहीं विरोधी स्वर व्यंग्य रूप मुखरित हुए हैं –

''अपनी लार तौ सिमटत नइयाँ, जगन्तर कौ भारो बाँदें।''

किन्तु अपनी –अपनी ढपली में अपना–अपना राग तो हर कोई गा लेता है, दूसरा राग अलापने में अधिक आनंद है। ''पराये पूतन सपूती होबो'' मे अपने को अपनत्व देने के साथ–साथ दूसरे को भी अपनत्व प्रदान करने की इनकी भावना श्लाघनीय है।

स्वाभिमान एवं नैतिकता :– स्वाभिमान यहां के निवासियों के रग–रग में समाया हुआ है। वे सम्मान से प्राप्त रूखी–सूखी रोटी भी अपमान से प्राप्त चुपड़ी की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ मानते हैं। वे कहते हैं – ''मान की सूखी भली बिना मान की चुपरी भली नइयाँ।'' बुन्देलखण्ड में न केवल अपने ही प्रति मान सम्मान के लिए लोग सजग हैं बल्कि दूसरों के सम्मान के प्रति भी सावधान हैं। दूसरों को आदर एवं मान देना वे सबसे बड़ा दान मानते हैं।

''हेमदान गजदान सें बड़ो दान सम्मान'' किसी अहंकारी के सामने यहां के निवासी झुकना पसन्द नहीं करते। वे मान को बेचकर अपमान का जीवन जीने की अपेक्षा मर जाना अधिक उत्तम मानते हैं। निम्न कहावत उनकी इसी भावना को और अधिक व्यापक रूप में इस प्रकार व्यंजित करती है –

मरै बौ लरका जो बसोर के झारैं जियै।''

बुन्देलखण्ड वासियों के स्वाभिमान की यह पराकाष्ठा अहंकार नहीं कही जा सकती। अहंकार को तो वे सदैव अपने से दूर रखना चाहते हैं। उनकी मान्यता है कि अहंकार सदैव दुखरूप है। उससे कभी किसी का उपकार होने का नहीं बल्कि मुंह ही काला होता है। कहते हैं – ''बड़े बोल कौ मुँह कारौ।'' तथा ''बड़े बौल कौ सिर मैंचो।''

इस प्रकार अहंकार से मुक्त एवं स्वाभिमान के धनी सदैव स्वच्छन्द रूप से विचरण करने वाले ये बुन्देलखण्डी जन न तो किसी का बन्धन मानते हैं ''चाकर होकें का जीनै''– और न अत्याचारों के सामने झुकना ही जानते हैं – झुके सो मरें। इनकी इसी प्रवृत्ति के कारण चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को इनसे मित्रता बनाये रखने की सलाह दी थी और ''दुष्टाच पुष्टाच'' कह कर सम्वोधित किया था। दुष्ट इस रूप में कि ये किसी का बन्धन स्वीकार नहीं करते और पुष्ट के लिए तो ''सौ डंडी एक बुंदेलखंडी'' कहावत लोकसिद्ध ही है। यहां की अकड़ और पकड़ प्रसिद्ध है। फिर भी बड़ों का सम्मान करना ये भलीभाँति जानते हैं।'' बड़न के सामूँ न्यौर कें चलो चाइये।'' विनम्रता में इन्हें विश्वास है। ये मानते हैं ''आम फलै नैचें नवै।'' या ''नमै सो भारी।'' वे अपनी ओर से किसी को कोई पीड़ा नहीं पहुंचाना चाहते। अतः वे कहते हैं ''पचै सो खावै, रुचै सो बोलै।''

<u>त्याग एवं बलिदान</u> :– उनका विचार था कि ऊँच–नीच, शोषक–शोषित, धनी–निर्धन आदि की खाइयों से मुक्त हम सब प्राणी परस्पर एक दूसरे को मित्र दृष्टि से देखें। एक दूसरे के सुख–दुख में काम आयें। इसके लिए उनकी सहृदयता और परोपकार की भावना तुच्छ स्वार्थपरता से बहुत ऊँचे उठकर मानवता के लिए अपने को भी समर्पित कर देती थी। वह महापतित माना जाता था जो भूखे को बिना खिलाए स्वयं पेट भरने लगता था। कहावत है –

''आप खाएं हरक्कत, बाँट खायें बरक्कत।''

जो भूखे को तृप्त करके स्वयं भोजन करता है वह ही श्रेष्ठ है। ऐसे उदार व्यक्तियों के लिए कभी अन्न की कमी नहीं रहती और कठिन समय में उसे सहायक भी मिल जाते हैं।'' धरम करे धन न घटै'' तथा पंछिन के पियें समुद हिलोरैं नईं घटतीं जैसी कहावतें उनके इसी विश्वास की परिचायक हैं। इसीलिए तो वे उदारता और परदुखकातरता की परम्परा बनाये रखने के लिए सदा प्रयत्नशील थे और अपने लिए प्राप्त दान के धन में से भी दूसरों को कुछ अंश देकर उनका दुख हरने का प्रयास करते थे। यह उनके त्याग की पराकाष्ठा थी – ''दान में सें दाय देयं, तीन लोक जीत लेयं।'' इस प्रकार प्रेम, कर्म, पुरुषार्थ, आशावाद, सेवाभाव, स्वाभिमान आदि श्रेष्ठ और समाज एवं व्यक्ति के उत्कर्षक तत्वों को बुन्देली जीवन में महत्वपूर्ण स्थान मिला हुआ था। इस महत्व को इस निष्कर्ष से भी परखा जाना चाहिए कि इन लोकमूल्यों की आभा दिन प्रतिदिन की कहनूतों तक बातचीत के हर लमहे में अनुस्यूत है।

– अध्यक्ष हिन्दी विभाग
सेवा सदन महाविद्यालय, बुरहानपुर

□

गीत

– स्व. श्री शारदा प्रसाद उदैनिया 'मनोज'

सबने कहा अमोलक जिसको, सबने जिसे अलभ्य बताया।
लेकिन ग्राहक मिला न कोई, ऐसा रतन दिया ही क्यों था?
कैसा कंचन दीप न जिसने तिलभर तिमिर पिया आँगन का
मोती व्यर्थ हुए पलकों के जो न बढ़ाया मोल नयन का
जलधर वरसे तो क्या बरसे हर चातक रह गया पिपासित
गीत हो गया व्यर्थ रह गया जो अनकहा दर्द जन जन का
फूल सभी निर्गन्ध डालपर ऐसा चमन दिया ही क्यों था सबने....

डग–डग छलका रूप जहाँ पर पग पग मिले मधुर आमंत्रण
पल पल थकन बढ़ी चरणों की क्षण क्षण फसु स्नेह के बंधन।
माना मुझे गुजरना भर था मेरे लिए राह भर थी ये
भूल गया मरघट की महिमा ऐसा पनघट का आकर्षण
इसमें दोष पखेरू का क्या उलझ गया चंदा तारों में।
जिसने बिखरा दिया बसेरा ऐसा गगन दिया ही क्यों था सबने....

नगरी नई मदभरा मौसम स्वाभाविक जो मुझे भा गई।
उस पर अपने विकल स्वरों में कोमल अपनी पीर गा गई
भीड़ भाड़ में कोलाहल में किसकी आँख लगी हैं अब तक
मेरी हर उपलब्धि स्वयं को भुला क्षण भर नींद आ गई।
तुझको यही शिकायत मुझसे मैं निष्क्रिय बन ठहर गया हूँ।
जिसने मोहक नींद बना दी ऐसा सपन दिया ही क्यों था। सबने....

तब से सदा चला ही हूँ मैं जबसे यहाँ आँख हैं खोली
लेकिन मेरे लक्ष्य सदा तू रहा खेलता आँख मिचौली।
पीड़ा सहन शक्ति से बढ़कर सुख का नाम करण ले बैठी
हर पत्थर मेरा परिचित हर काँटा मेरा हम जोली।
या अचरज हैं जो अब मुझको कभी साध्य की याद न आये।
जिसने सिद्ध उपेक्षित कर दी ऐसा जतन दिया ही क्यों था। सबने...

□

बुन्देली का गौरव – बुन्देलखण्ड केसरी

– डॉ. संतोष भदौरिया

बुन्देलों की भूमि बुन्देलखण्ड कई मायनों में ऐतिहासिक तथा महत्वपूर्ण है। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान बुन्देली भाषी क्षेत्र की जनता ने अपनी क्रांति चेतना और ओजस्विता के अनेक मानदण्ड स्थापित किए। सन् १८५७ की क्रांति से लेकर भारत छोड़ो आंदोलन तक के स्वाधीनता संग्राम में बुन्देलखण्ड की सहभागिता का ग्राम काफी ऊँचा रहा है। परन्तु विडम्बना यह रही कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पाँच दशक बाद भी इस क्षेत्र के महत्वपूर्ण योगदान को स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में यथोचित महत्व नहीं मिला।

हिन्दी पत्रकारिता ने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में व्यापक राष्ट्रीय संवेदनाओं से संपृक्त होकर जनमानस को स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु आन्दोलित एवं प्रेरित किया। 'बुन्देलकेसरी' पत्र का प्रकाशन बुन्देलखण्ड की शोषित पीड़ित जनता की अभिलाषाओं की मूक वाणी को स्वर प्रदान करने के लिए शुरू हुआ। 'बुन्देलखण्ड केसरी' साप्ताहिक पत्र था। इसका प्रथम अंक १८ जून सन् १९२९ में प्रकाशित हुआ। यह पूर्णतया हस्तलिखित पत्र था, जो बहुत ही प्रभावशाली एवं समीचीन संपादकीय लेखों एवं रचनाओं से परिपूर्ण रहता था। 'बुन्देलखण्ड केसरी' का मुख्य ध्येय पूर्णस्वतंत्रता था।' अभय और मतवाला होकर निर्भय गाना जाऊँगा' का मूलमंत्र लेकर निकलने वाले इस पत्र ने संपूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में स्वदेशी भावना की अलख जगायी।

बुन्देलखण्ड के गांधी मगरौठ (राठ) निवासी दीवान शत्रुघन सिंह के देश प्रेम और स्वतंत्रता की आकांक्षा ने इस पत्र के प्रकाशन की नींव डाली। दीवान शत्रुघन सिंह द्वारा यह महसूस किया गया कि स्वाधीनता संग्राम के सफल संचालन के लिए एक समाचार पत्र की अत्यन्त आवश्यकता है। उनका यह मानना था कि यह समाचार–पत्र जनता को अंग्रेजी दमन और कांग्रेस की नीति से अवगत करायेगा ताकि उसमें राजनीतिक चेतना और देशप्रेम का विकास हो सके। 'बुन्देलखण्ड केसरी' पत्र के प्रकाशक दीवान शत्रुघन सिंह स्वयं थे, जबकि संपादक का कार्यभार रामेश्वर दयाल शर्मा और मौदहा (हमीरपुर) निवासी रामगोपाल गुप्त संभालते थे। रामगोपाल गुप्त 'रणधीर' उपनाम से पत्र का संपादन करते थे। 'बुन्देलकेसरी' पूर्णतया साइक्लोस्टाइल पत्र था। इसने सन् १९३५ तक संपूर्ण बुन्देलखण्ड को जागरित एवं प्रोत्साहित किया।

'बुन्देलखण्ड केसरी' के संपादक रामगोपाल गुप्त ने ही इस पत्र के प्रेस व्यवस्था की नींव डाली। इसके लिए विभिन्न स्रोतों से धन एकत्रित किया गया। साइक्लोस्टाइल मशीन एवं आवश्यक कागज दीवान साहब की मदद से जुटाया गया। अस्थायी प्रेस की व्यवस्था दीवान साहब के गांव मगरौठ में एक हरिजन के मकान की गयी। बड़े गोपनीय तरीके से इस पत्र की सामग्री तैयार की जाती थी। गाँव के खण्डहरों में बैठकर लेख लिखे जाते हैं। स्वाधीनता आंदोलन से सम्बन्धित देश दुनिया में घटित विभिन्न महत्वपूर्ण समाचारों को अनेक तरीकों से एकत्र कर इस पत्र में छापा जाता था। 'बुन्देलखण्ड केसरी' की प्रतियाँ बुन्देलखण्ड के विभिन्न जिलों के कोने–कोने में पहुंचाई जाती थी। ग्राम जगखर (राठ) जिला हमीरपुर निवासी रामदयाल और सुखलाल पत्र की प्रतियाँ लेकर रातों रात उन्हें यथास्थान पहुंचाते थे। ये दोनों ही एक दिन में पचास मील से भी ज्यादा की पैदल यात्रा करते थे। इस्लामपुर निवासी श्यामबिहारी चौबे ने इस पत्र की दिलोजान से मदद की। इन्होंने 'बुन्देलखण्ड केसरी' के संपादकीय लेखन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

वस्तुत: हिन्दी पत्रकारिता और अंग्रेजी शासन दोनों का रिश्ता संघर्ष का रहा है। अंग्रेजी शासन ने स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति को अनेक बार कुंठित किया। जुर्माना, जेल और जब्ती पर यकीन करने वाली अंग्रेज सरकार ने संचार के हर उस माध्यम को सख्ती से कुचला जिससे स्वाधीनता की अलख को प्रखर किया जा सकता था। अंग्रेज सरकार ने स्वाधीनता आंदोलन के दौरान अनेक हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं को प्रतिबंधित किया। पत्र के प्रकाशक, संपादक एवं उससे जुड़े स्वतंत्रता संनानियों को अनेक तरह की यातनाएं दी गयीं। अंग्रेज शासन ने हिन्दी पत्रकारिता के विकास को अवरुद्ध किया। इसी क्रम में 'बुन्देलखण्ड केसरी' अंग्रेजों की कोप दृष्टि से नहीं बच सका। अंग्रेजी सरकार द्वारा जब्त किए गए प्रकाशनों में एक अनियतकालीन साइक्लोस्टाइल पत्र यह भी या जिसका १८ दिसम्बर सन् १९३३ का अंक जब्त कर लिया गया। इस प्रतिबन्धित अंक के संपादक भी रणधीर थे। यह काल्पनिक नाम स्वतंत्र प्रेस द्वारा मुद्रित और प्रकाशित अंक है। जो पूर्णतया साइक्लोस्टाइल है। 'बुन्देलकेसरी' के इस जब्तशुदा अंक एवं अन्य अंकों को देखने से पता चलता है कि इनमें बहुत सारी विस्फोटक सामग्री प्रकाशित होती थी। जिसमें विभिन्न राष्ट्रप्रेमी कवियों द्वारा राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत कविताएं, विचारोत्तेजक लेख और कांग्रेस पार्टी की नीतियों का खुलासा रहता था।

'बुन्देल केसरी' पत्र के संपादकीय विचारशील एवं कांग्रेस नीतियों से प्रभावित होते थे। अपनी नीति को स्पष्ट करते हुए इस पत्र के संपादक ने अपने संपादकीय में लिखा है कि – ''इसमें

सन्देह नहीं कि अखबार अन्यायों, जुल्मों और पर्दे में होने वाली घटनाओं का स्पष्टीकरण करता है। मूक गरीब जनता की आवाज बुलन्द करता है, साथ ही उन्हें ठीक रास्ते में लाने का सतत् प्रयत्न करता है।'' अपनी नीति को और स्पष्ट करते हुए संपादक लिखता है – ''हमारा पत्र किसी दल विशेष का पत्र नहीं वरन् तमाम दलों का समन्वय है आपसी विचार विनिमय का एक साधन है। इसके द्वारा खास राष्ट्रीय तबके को दबाने का प्रयास नहीं किया जाएगा। हाँ, हमारा कार्यक्रम और नीति कांग्रेस की होगी और उसी का प्रतिपादन हम करेंगे। आवश्यकता पड़ने पर हम कांग्रेस की आलोचना भी करेंगे। वह वर्ग, जो राष्ट्रीय नहीं है, जो प्रतिक्रियावादी और देशघाती है, उसकी अवश्य ही मुखालफत की जाएगी और उसे राष्ट्रीय बनाने की कोशिश की जाएगी। उपर्युक्त पंक्तियां इस बात का यकीन दिलाती है कि 'बुन्देलखण्ड केसरी' पत्र का मुख्य ध्येय स्वतंत्रता प्राप्ति और देश प्रेम की भावना को जागृत करना था। संपूर्ण देश की घटनाओं और निष्पक्षता के साथ कांग्रेस की कार्यप्रणाली को इस पत्र में जगह दी जाती थी। नीरक्षीर विवेक इसका मूलमंत्र था।

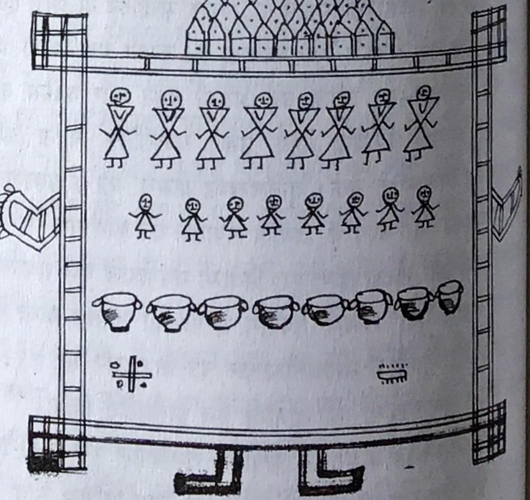
'बुन्देलखण्ड केसरी' एकमात्र ऐसा पत्र था, जो बुन्देलखण्ड की जनता को तत्कालीन सविनय अवज्ञा आन्दोलन की तैयारी तथा नेताओं के विचार, विभिन्न क्षेत्रों में आंदोलन का श्री गणेश, क्रियान्वयन एवं सरकारी प्रतिक्रिया की रिपोर्ट देता था। गाँव का मुखिया कांग्रेस का कार्यकर्ता होता था। गांव में जो भी शिक्षक या शिक्षित व्यक्ति होता था वह अनपढ़ ग्रामीण व्यक्तियों के मध्य ऊँची आवाज में 'बुन्देलखण्ड केसरी' अखबार की विभिन्न खबरें पढ़ता था। लोग इस पत्र से समाचार सुनने की उत्सुक रहते थे। समय–समय पर जारी रिपोर्ट से पता चलता है कि अनायास ही संपादकों को चेतावनी देना, पत्रों को जब्त कर लेना, या प्रेस को तहस नहस कर देना, उच्चाधिकारियों का शौक बन गया था। सरकारी दबाव और आर्थिक परेशानियाँ ऐसी थी कि 'बुन्देलखण्ड केसरी' को अपने अस्तित्व की रक्षा करना हर पल कठिन प्रतीत होता है। यह पत्र अपना स्पष्ट उद्देश्य लेकर चल रहा था। जिसके बारे में संपादक ने लिखा – 'हम एक पत्रकार की हैसियत से सबकी बातें सुनना चाहते हैं और चाहते हैं कि सभी इस पत्र को ऐसा ही समझकर इससे अधिकाधिक लाभ उठाने की कोशिश करें। साथ ही लोग इस बात को कभी न भूलें कि हमारा पत्र राजनैतिक सामाजिक, आर्थिक और नैतिक क्रान्ति करना चाहता है। यह पत्र अत्याचारियों का यही अत्याचार पीड़ितों का है। लोगों का दृष्टिकोण बदल देना उन्हें वर्तमान हालातों से अवगत कराना और उसे दूर करने के लिए कटिबद्ध कर देना इस पत्र का उद्देश्य है।

'बुन्देलकेसरी' के निर्भीक लेख, कविताएं, कार्टून एवं आंग्लविरोधी टिप्पणियों से भरे इस पत्र के प्रति जनता की रुचि बढ़ी और इस पत्र की हजारों प्रतियां प्रकाशित होने लगी। अंग्रेजों के खिलाफ आग के गोले उगलने वाले इस साप्ताहिक पत्र से संपूर्ण बुन्देलखण्ड के राज्य कर्मचारियों में खलबली मच गयी। पूरा अंग्रेज प्रशासन एवं गुप्तचर इस पत्र को छापने वाली साइक्लोस्टाइल मशीन को पकड़ने के लिए पूरी शक्ति से जुट गए। 'बुन्देलखण्ड केसरी' की छपाई मशीन को पकड़ना अंग्रेज सरकार के कर्मचारियों का एकमात्र लक्ष्य बन गया था। बुन्देलखण्ड की जनता इस पत्र के प्रकाशन को एक आंदोलन के रूप में ले रही थी। इस पत्र की खोज के लिए सैकड़ों कांग्रेस कार्यकर्ताओं से हस्ताक्षर के नमूने सिर्फ इसलिए लिए गए ताकि 'बुन्देलखण्ड केसरी' के लिखने वाले का पता लग सके। 'बुन्देलखण्ड केसरी' की तलाश में रामगोपाल गुप्त (संपादक) के पिता के घर की तलाशी ली गयी किन्तु वहाँ पर न तो प्रेस ही मिली और न ही कोई आपत्तिजनक वस्तु। पुलिस संपादक के पिता को थाना ले गयी वहाँ उन्हें धमकाया और कहा कि अपने लड़के से अखबार छपवाते हो, कांग्रेस की मदद करते हो, तुम्हारा घर कुर्क कर लिया जाएगा, दुकान जब्त कर ली जाएगी।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को विस्तृत और शक्तिशाली बनाने के लिए 'बुन्देलखण्ड केसरी' नामक हस्तलिखित पत्र गुप्त ढंग से प्रकाशित होता रहा। इसके संपादक रामगोपाल गुप्त उर्फ रणधीर ने अनेक यातनाएं सहकर फरार रहते हुए इस पत्र को अनवरत जारी रखा। अंग्रेस सरकार संपादक और 'बुन्देलकेसरी' के प्रेस को पकड़ने के लिए वर्षों परेशान रही किन्तु उसे सफलता नहीं मिली और यह पत्र अनवरत छपकर अंग्रेजों के विरुद्ध जनाक्रोश के गोले उगलता रहा।

– सहा. प्राध्यापक,
शा. म.ल.बा. उत्कृष्ट महाविद्यालय, ग्वालियर

□



अहोई आठें

– नीरज सोनी, छतरपुर

कविरत्न स्व. श्री हरिदेव जी

- श्रीनिवास शुक्ल

बुन्देल-भूमि रत्नगर्भा है यह सर्वविदित है। जहाँ जड़ रत्न सुषमा, श्रृंगार में श्री वृद्धि करते हैं वहीं काव्य-रत्न भाव-जगत का न केवल अलंकरण करते हैं अपितु उसमें लोकोत्तर रस-संचार एवं करते हैं अपितु उसमें लोकोत्तर रस-संचार एवं अलौकिक आनन्दानुभूति का उन्मेष करते हैं। श्री हरिदेव जी इस भूमि के ऐसे ही काव्य-रत्न थे।

सामान्य कद-काठी, सफ़ेद कुर्ता-धोती, हाथ में छड़ी, आँखों पर चश्मा, आकर्षक व्यक्तित्व यही थे 'हरिदेव' जी। उनका पूरा नाम था रामनाथ गुप्त। 'हरिदेव' तो कविता ने अपनी पहचान के लिये उपनाम के रूप में जुड़वा दिया था। उनकी काव्य-सृष्टि ने इस क्षेत्र में अपना वर्चस्व भली भाँति स्थापित कर लिया था और 'हरिदेव' नाम से ही उन्हें अधिक सम्बोधित किया जाता था इसलिये सभी की सुविधा की दृष्टि से यहां भी उनके कवि नाम 'हरिदेव' जी के रूप में ही प्रयुक्त करना समीचीन है। 'हरिदेव' जी का जन्म तत्कालीन देशी रियासत अलीपुरा के हरपालपुर कस्बा में ३ जनवरी सन् १९०९ में हुआ था। हरपालपुर के प्रतिष्ठित व्यापारी श्री गजाध र लाल गुप्त पिता थे। 'हरिदेव जी दो भाई अर्थात् रामनाथ स्वयं और जानकी प्रसाद तथा तीन बहिनें, उनके माता पिता बस यही था उनका परिवार। हरपालपुर में प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने के उपरांत नौगांव के हाई-स्कूल से मैट्रिक पास किया। अध्ययन के प्रति उनकी रुचि विशेष थी। इसलिये स्वाध्याय से विष्णु सहस्त्रनाम, रामचरित मानस, रामचंद्रिका, कवि-प्रिया, रसिक-प्रिया आदि का गहन अध्ययन-मनन किया। नाटक देखने और अभिनय करने में भी उनकी रुचि रही है। छतरपुर रियासत में स्व. महाराजा विश्वनाथ सिंह के कृपा-पात्र श्री विंदु जी, महाराज की बड़ी प्रसिद्धि थी। वे नाट्य-कला में निष्णात, लोकप्रिय-कवि, ललित गायक और राम-भक्त भी थे। 'हरिदेव' जी को विंदुजी के सम्पर्क में आने का सुयोग मिला और उनकी प्रेरणा से काव्य-सर्जना की ओर उनका आकर्षण बढ़ा। सन् १९४४ से १९४८ तक वे हरपालपुर में मजिस्ट्रेट के न्यायालय में रीडर के पद पर रियासत की सेवा में रहे। छतरपुर के नगरिया परिवार की श्रीमती तुलसीबाई के साथ उनका विवाह हुआ था। उनको एक पुत्र एवं दो पुत्रियाँ हुई। सन् १९४८ के पश्चात् उनकी ससुराल-प्रेम ने उन्हें छतरपुर बुला लिया और फिर प्रायः स्थायी रूप से छतरपुर रहकर उन्होंने निर्बाध रूप से साहित्य-साधना की स्थानीय सिद्ध प्रसिद्ध गांव की देवी मंदिर के पास एक कोठरी (कमरा) में उनका निवास और काव्य-साधना का स्थायी स्थल था।

अपनी कोठरी से निकलकर वे प्रतिदिन नगर में दो चक्कर अवश्य लगाते थे। प्रातः ८-९ के बीच नगर के जाने-माने गीतकार भी सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष' के घर। वहाँ थोड़ी देर बैठते फिर मेरे घर और मेरे घर से स्व. डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त के घर (जो पूर्व में मेरे पड़ोस में ही रहते थे) उपस्थिति देना। यह उनकी नियमित दिनचर्या का अंग बन गया था। इन स्थानों पर बैठकर बतयाना, अनौपचारिक चर्चा करना, उसी तारतम्य में साहित्य चर्चा भी हो जाती थी। साहित्य-शास्त्र और आचार्यत्व की चर्चा भी वे इस ढंग से कर जाते थे कि किंचितमात्र बोझिल नहीं होती थी। कवि का स्वभाव होता है कि वह अपनी कोई नवीन रचना अपनों के बीच सुनाने के लिये अवश्य ही व्याकुल रहता है किंतु 'हरिदेव' जी को ऐसी व्याकुलता का शिकार होते कभी नहीं देखा गया। हां यदि आप ही स्वयं किसी रस, अलंकार, छंद विशेष के लक्षण ज्ञान की जिज्ञासा से प्रश्न कर बैठे और दृष्टांत रूप में कोई छंद सुनाने का आग्रह कर बैठें तब वे अवश्य ही कुछ न कुछ सुनाते। उनके उठने-बैठने से आपकी दैनंदिन-चर्या में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं आता था। आप अपनी नित्य-क्रिया में यदि व्यस्त हैं तो आप उससे निपटें, वे अकेले ही बैठे रहेंगे। जब आप निपट कर सुचित्त हो लें तभी चर्चा हो। कुछ देर चर्चा अवश्य हो। उनसे चर्चा होने पर अपने साहित्यिक ज्ञान में अभिवृद्धि होती थी और शुद्ध-साहित्य-रचना के लिये मार्ग-दर्शन भी मिलता था। साथ ही यह भी आभास होता था कि उन्हें भी किसी न किसी रूप में ऊर्जा मिलती थी। यह तो रहा उनका प्रभात कालीन पहला चक्कर। सायंकाल पांच बजे पश्चात् उनका दूसरा चक्कर लगता था। यह चक्कर मेरे पिता जी स्व. पं. राजाराम जी शुक्ला 'रत्नेश', की लोहे वाली दुकान पर आकर रुक जाता था। मेरे पिता जी स्वयं अच्छे कवि थे और छतरपुर में प्राचीन काव्य-परंपरा का अलख जगाये रखने में अग्रणी थे। वैसे तो किसी भी समय उनके पास कोई साहित्य-चर्चा करने पहुंच जाए तो वे उसमें रुचि लेते थे किंतु सायंकाल तो वे दुकानदारी को तिलांजलि देकर साहित्य-चर्चा को ही प्रमुखता देते थे। संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित और कर्मकाण्ड के विशेषज्ञ स्व. पं. रामप्रसाद जी त्रिपाठी स्व. पं. राम किशोर जी शास्त्री, लोक-कवि स्व. श्री रामदास जी नामदेव, हाजिर जवाब स्व. श्री कलू शुक्ल (मैंमार) खलीफा स्व. श्री गोली ताम्रकार, सैर गायक दामोदर (दमरू) नामदेव, फत्तू खां, शेख नत्थू आदि का दरबार तो प्रायः नित्य ही पिता जी की दुकान पर लगता था। और इस दरबार में श्री 'हरिदेव' की सक्रिय भागीदारी होती थी। जब कभी आचार्य कविराज स्व. श्री बिहारी बिजावर से छतरपुर आते तो मेरे पिता के पास अवश्य आते थे। यहीं बैठकर नगर में विशिष्ट अवसरों पर आयोजित होने वाली साहित्यिक-गोष्ठियों की एवं सैरों तथा फागों की फड़बाजी के विभिन्न कार्यक्रमों की रचना हुआ करती थी। उसके लिये अपनी काव्य-सर्जना से मेरे

पिताजी, स्व. श्री रामदास जी नामदेव तथा श्री 'हरिदेव' जी प्रमुख रूप से फड़बाजी का साहित्य–भण्डार भरा पूरा रखते थे। इनकी भूमिका के कारण कभी ऐसा अवसर नहीं आया कि साहित्यिक प्रतिद्वन्दिता में पराजय का मुख देखना पड़ा हो।

छतरपुर में सैर–गायकी के दो दल थे। एक दल था प्रसिद्ध लोककवि स्व. गंगाधर व्यास के नाम पर और दूसरा दल था स्व. पं. परमानंद पाण्डे का। इन दोनों दलों में साहित्यिक प्रतिद्वन्दिता (फड़बाजी) चलती रहती थी। व्यासदल के पक्षधर मेरे पिताजी, स्व. रामदास जी, स्व. हरिदेव जी थे। इसी प्रकार मऊरानीपुर में व्यास–दल का नेतृत्व राष्ट्रकवि स्व. श्री घासीराम व्यास करते थे और पाण्डे–दल का नेतृत्व स्व. श्री घनश्यामदास पाण्डे के हाथ में था। झांसी में स्व. श्री नाथूराम जी माहौर व्यास–दल के मुखिया थे। इस प्रकार बुन्देलखण्ड के विभिन्न स्थानों में ये फड़वाजी फलती–फूलती रही।

श्री हरिदेव जी ने सैरें और फागें प्रचुर मात्रा में लिखी हैं। किन्तु उनकी काव्य–प्रतिभा का प्रकाश घनाक्षरी और सवैयों में दर्शनीय है। ये बृज–भाषा और बुन्देली के ऐसे निखरे हुए यशस्वी कवि थे जिन्हें यदि आचार्य कवि की संज्ञा दी जाय तो असंगत नहीं होगा। यद्यपि आचार्य कवि की संज्ञा उसी को दी जाती है जिसने शास्त्रीयता के आधार पर रस, अलंकार छंद आदि के लक्षणों को परिभाषित करनेवाले लक्षण ग्रंथ की रचना की हो किन्तु हरिदेव जी के छंद ही काव्य–शास्त्र के लक्षणों से परिपूर्ण हैं इसलिये उन्हें आचार्य कवि से सम्बोधित करने में मुझे कोई अतिश्योक्ति प्रतीत नहीं होती।

जब चंद्रधर शर्मा गुलेरी की ''उसने कहा था'' नामक कहानी आदर्श कहानी का प्रतिमान बन सकती है और पूर्णसिंह जी के ''नयनों की गंगा'' जैसे लेख ललित निबन्ध के प्रतिमान बन सकते हैं तो 'हरिदेव जी' के छंद आचार्यत्व के प्रतिमान क्यों नहीं माने जा सकते। 'हरिदेव जी' रचित वाणी–वंदना से ही उनकी काव्य प्रतिभा और काव्य–शिल्प का आभास हो जाता है। देखिये–

वर दे वर वाणी विलासिनी तू, निज दास पै देवि दया कर दे।
कर दे कर दे मम शीश पै छांव, उछाव के भावन सौं भर दे।
भर दे गुण–गौरव की गरिमा, रच छंद प्रबंध मनोहर दे।
हर दे 'हरदेव' के शाप त्रिताप, महामहिमायी मां वर दे।

यह सिंहावलोकन सवैया भाव, भाषा, अलंकार की दृष्टि से अनूठा है। बुंदेलखण्ड केसरी छत्रसाल की तलवार की प्रशस्ति में रचित ''करवाल–किरण'' नामक उनकी वीर–रस–प्रधान ओजपूर्ण रचना वैशाख–कृष्ण एकादशी सम्वत २००९ में प्रकाशित हुई। विंध्य–प्रदेश शासन द्वारा यह रचना पुरस्कृत भी की जा चुकी है और इस प्रकार कवि की प्रथम प्रकाशित कृति को पुरस्कृत किया जाकर कवि का उचित सम्मान किया गया। इस कृति के सभी छंद जड़ाऊ हैं, शिल्प निर्दोष है। रूपकोत्प्रेक्षा का उदाहरण रूप एक छंद देखिये –

दौर दलती थी दुष्ट देश–द्रोहियों के दल
पल में दिखाती दीप्ति दिव्य दामिनी सी थी
कायर कलंकी करी कंभ के बिदारने को
जोभ भरी जंग में मृगेन्द्र–भामिनी सी थी
'हरिदेव' चौकस चकत्ता चतुरंगिनी के
चीरने को चारों ओर पौन गामिनी सी थी
वीर छत्रसाल तेरी तेग तुरकों को वेगि
कौल करने को क्रुद्ध काल कामिनी सी थी।

इसी प्रकार एक एक छंद विविध अलंकारों का उत्कृष्ट उदाहरण है जिसमें मालोपमा, संदेहालंकार, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, भ्रमालंकार, अत्युक्ति, चंचलातिशयोक्ति, विभावना, गढ़ोक्ति, स्वभावोक्ति, रूपक, अलंकार समाविष्ट हैं।

इसी प्रकार सावन तीज संवत् २०३३ में प्रकाशित 'हरिदेव जी' की द्वितीय कृति 'बुन्देलखण्ड–वावनी' है। इसमें बुन्देलखण्ड का प्रतिबिम्ब है। यहां के टीले, टौरियां, पर्वतराज विंध्य, परम–पुण्य सलिला प्रवाहिनी सरितायें, वन–सम्पदा, प्रकृति का प्र औषधियों का आगार, रत्नों की खान, दुर्गम दुर्ग, यहां के पर्व, गहने, रामराजा, मतंगेश्वर, जुगलकिशोर आदि मंदिरों का उल्लेख है। एक छंद में यहाँ की विभूतियों को भी गिनाया गया है –

लाल हरिकेश, व्यास पजन बिहारी जहाँ
तुलसी मुनीश भये केशव कवीशरा
कवि 'हरिदेव' आल्हा ऊदल में भूमिपाल
मर्दन विशाल छत्रसाल से सपूतरा
देवलदे दुरगा सी बाई साव झाँसी भई
लाला हरदौल बई प्रीति की परम्परा
गुनिक अगन्य धर्म जन्य सी न देखी अन्य
धन्य धन्य है बुन्देलखण्ड की वसुंधरा।

बुन्देलखण्ड छत्रसाल की कहानी है, बलिदानी है, दानी है, पानीदार है–

दानी भो अमान जाकी कीरति अमानी और
छत्रसाल आदि की कहानी है बुन्देलखण्ड।
प्रात पुण्य वानी देश–प्रेम सौ प्रमानी सोई
पानीदार वीर बलिदानी है बुन्देलखण्ड।

बुन्देलखण्ड पौरुष, पराक्रम का प्रतीक, एकता का राग, धरनी का अनुराग, भारत का भाग्य और वनस्थली का सुहाग सा प्रतीत हुआ है कवि को – ''भारत कौ भाग कै सुहाग है वनस्थली कौ
एकता कौ राग, अनुराग धरनी कौ है
पौरुष कौ पूत, दिव्य दूत है स्वतंत्रता कौ
महामजबूत देश–द्रोहिन अनी कौ है''

बुन्देलखण्ड – वैभव का व्याप केवल बावन–तिरेपन छंदों में समेट पाना तो असंभव सा है किंतु इस बुन्देलखण्ड–बावनी ने इस भूमि के वैभव का बामन रूप सफलतापूर्वक दिग्दर्शित कराया है।

बुन्देलखण्ड – बावनी में बुन्देलभूमि का गौरवगान करते के साथ कवि ने उसके प्रति अपनी आस्था और राष्ट्रीय स्वाभिमान

का परिचय दिया। ओज के छंद रचने में कवि जितना यशस्वी हुआ है वहीं श्रृंगार रचना में भी वह कितना रसस्वी है यह विन्ध्य की धना (बुन्देलभूमि की सुन्दरी) का मनोहरी चित्र देखिये –

''मांथे शीश फूल सो है कानन करन फूल
अंबर अतूल सुख मूल रंगना के हैं,
कवि 'हरिदेव' कंठ लल्लरी, बिचौली, हरा
भुजन बजुल्ला बरा कर ककना के हैं
छीन करि कर्धनी नितम्बन सँवारी छवि
गति मतवारी कुच कुंभऊ घना के हैं
विंध्य की धना के पग पग्त हना के पारै
लोकन सनाके जे झनाके पैजना के हैं।''

'हरिदेव' जी की प्रकाशित, तीसरी रचना ''मन के गीत'' है। इसमें बृज एवं बुन्देली भाषा से हटकर खड़ी बोली में, गीत–शैली में प्रणीत कुछ रचनायें हैं। इनसे प्रमाणित होता है कि वे वर्तमान काव्य–शिल्प से अछूते नहीं हैं। क्षितिज पर नाचती चाँदनी, तारे–सितारे जैसे गगन दीपों द्वारा धरती का सिंगार, कहीं पर जीवन के धधकते प्रश्नों से तप कर समाधान की भाँति दमकता कुंदन सा मानव कहीं पर चटकते–टूटते आस्था के स्वर, पुरुषार्थ की बाहों में बसा प्रलय का आवेग, और बाल–सुलभ–किलकारियाँ प्रायः यही विषय–वस्तु है ''मन के गीत'' की।

कवि की शेष अन्य कृतियाँ अप्रकाशित है। उनमें खण्ड–काव्य ''दुर्गावती'', ''रस–बिन्दु'', ''राष्ट्र–पताका'' समस्या–पूर्ति के स्फुट छंद और लोक–काव्य में सैकड़ों सैरें, फागें, ख्याल, लावनी आदि हैं।

खण्ड–काव्य दुर्गावती, की विषय–वस्तु गौंड़वाना की इतिहास प्रसिद्ध वीरांगना का आख्यान है। कालिंजर के पराक्रमी, शौर्यवान और प्रतापवान शासक कीर्तिसिंह की पुत्री दुर्गावती अपने पिता के समान ही साहसी वीर थी। दलपत राय नामक शूर वीर गौड़वाना युवराज से दुर्गावती का प्रेम विवाह हुआ। यही युवराज कालांतर में गौड़वाना नरेश बना और एक युद्ध में लड़ते–लड़ते गौड़वाना नरेश दलपतराय का प्राणोत्सर्ग हो गया। रानी दुर्गावती ने गौंड़वाना की स्वतंत्रता की रक्षा के लिये बादशाह अकबर से युद्ध करते हुए अपने प्राणों की बलि दे दी। बुन्देलखण्ड की वीरांगना झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की भांति रानी दुर्गावती भी अमर वीरांगना है। 'हरिदेव' जी ने इस ओज प्रधान खण्ड काव्य में दुर्गावती के पराक्रमपूर्ण व्यक्तित्व को रेखांकित किया है। दुर्गावती के संक्षिप्त दाम्पत्य जीवन का आश्रय लेकर श्रृंगार–रस परक नख–शिख, चित्रण, प्रेम–मिलन आदि का रमणीय अंकन कवि ने किया है। स्थल स्थल पर भयानक, रौद्र वीर और करुण रस का समावेश भी हुआ है। घनाक्षरी और सवैया छंदों का सकल प्रयोग हुआ है।

''रस–बिन्दु'' नामक रचना पच्चीस घनाक्षरियों का संग्रह है। इसमें संयोग और वियोग श्रृंगार की मार्मिक रचनाये हैं। यह रचना रीति परम्परा से प्रभावित है। नायिका–भेद के प्रचुर उदाहरण इसमें हैं। ''राष्ट्र–पताका'' 'हरिदेव' जी की राष्ट्रीय–भावनाओं को व्यक्त करने वाली रचना है। इसमें भी पच्चीस छंदों का संकलन है। गांधी, सुभाष, नेहरू आदि राष्ट्रीय नेताओं का चित्रांकन इसमें हैं। 'हरिदेव' जी की स्फुट रचनायें उनकी उपर्युक्त प्रकाशित और अप्रकाशित कृतियों से कहीं अधिक हैं। कानपुर से प्रकाशित होने वाली ''सुकवि'' नामक पत्रिका में उनकी समस्या–पूर्ति–परक रचनायें प्रकाशित होती रही है। इस पत्रिका में मेरे पिता जी तथा स्व. श्री रामदास नामदेव की इसी प्रकार की रचनायें प्रकाशित होती रही हैं। यह पत्रिका प्रसिद्ध साहित्यकार स्व. श्री ग्या प्रसाद शुक्ल 'स्नेही' जी के कुशल सम्पादन में अनेक वर्षों तक प्रकाशित होती रही। लखनऊ से प्रकाशित होने वाली राष्ट्रीय स्तर की प्रतिष्ठित मासिक पत्रिका 'राष्ट्र–धर्म' में ही 'हरिदेव' जी की रचनायें स्थान पा चुकी है। 'तुलसी–दल' 'विन्ध्य के आधुनिक कवि' मधूक के फूल' में हरिदेव जी के संक्षिप्त परिचय सहित रचनायें प्रकाशित हुई हैं। छतरपुर में अथवा इस अंचल में आयोजित कोई कवि–गोष्ठी एवं कवि–सम्मेलन ऐसा नहीं होता था जिसमें 'हरिदेव' जी उपस्थित न हों। उनके द्वारा रचित वाणी–वंदन से ही कार्यक्रम का शुभारंभ होता था। हरिदेव जी को काव्य–शिल्प–सौष्ठव यहां सदा सराहा जाता रहा है और आज भी सराहा जा रहा है। यहां के यशस्वी कवि के रूप में उनका यथेष्ट सम्मान हुआ है। अयोध्या की एक साहित्यिक संस्था के द्वारा उन्हें सन् १९४६ में 'काव्य–भूषण' की उपाधि से अलंकृत किया गया। हरपालपुर की तुलसी समिति ने सन् १९४७ में उनकी काव्य–प्रतिभा पर उन्हें स्वर्ण–पदक प्रदान किया गया तथा हरपालपुर के ही नारायण मण्डल ने सन् १९४९ में रजत–पदक देकर उनका मूल्यांकन किया। सन् १९५३ में तत्कालीन विंध्य–प्रदेश शासन ने उनकी 'करवाल किरण' को पुरस्कृत करके उनका सम्मान किया। और जब मैं नगर पालिका परिषद छतरपुर का अध्यक्ष था तब मैंने नगर पालिका द्वारा इस क्षेत्र के प्रतिष्ठित कवि एवं साहित्यकारों का प्रतिवर्ष अभिनंदन किये जाने की परम्परा का सूत्रपात किया और सन् १९६९ में 'हरिदेव' जी का अभिनंदन किया जो जिला साहित्यकार अभिनन्दन समिति के माध्यम से किया गया।

होना यह चाहिये कि हरिदेव जी, पं. राजाराम जी शुक्ल 'रत्नेश' श्री रामदास जी नामदेव, आचार्य कवि श्री बिहारी लाल जी भट्ट (कविराज बिजावर), श्री रमेश पाण्डे, श्री देवी प्रसाद जी 'प्रीतम' जैसे रचनाकारों का अप्रकाशित साहित्य जागरूक और सम्पन्न साहित्यिक संस्थाओं द्वारा प्रकाशित कराये जाने का यथाशीघ्र क्रियात्मक उपक्रम किया जाए। उसके बहुमूल्य साहित्य को सुरक्षित रखा जा सके। और साहित्य–जगत उससे लाभान्वित हो सके।

– शुक्लाना, छतरपुर

□

राखी की कथा

- रवि प्रताप रावत "ऋषि"

जब मैं भौत हल्को हतो तब हमाई माताराम एक कथा सुनाओ करत हतीं, कओ करत तीं कै जा कथा राखी औ परी की आए, तब हमें जा कथा सुनबे में बड़ी नौनीं लगत ती, काएसें परीअन की किस्सा कानियां सबई मोड़ा-मोड़ियन हां नौनी लगती हैं। पै अब मैं किस्सा-कानियन हां कछु ज्यादा महत्व नईं देत; पै एक दिना मैने एई कथा की एक "फिलम" देखी जौन सें मोए ई कथा को महत्व समझ में आओ। तब मैने सोची कै जब ई कथा की "फिलम" बन सकत ता काए न ई हां अपनी "बुन्देली भाषा" में भी पद प्रतिष्ठा दई जाए। हल्के मैं जोन कछु हमें हमाई माताराम ने जा कथा सुनाई हम उसई सुनाए दइत, अब चाए ई में कौनऊ कमी होय चाएं न होए जो अपुन औरन की पसन्द के ऊपर है।

ऐसें ऐसें -............एक राज्य में एक राजा राज करत हते। उनके दो ब्याव भए ते, पैली रानी तो भगवान हां प्यारी हो गई तीं, पै अपनी एक निसानी ई संसार में छोड़ गई ती, एक प्यारी बिटिया जी कौ नाव राखी हतो। देखत में बड़ी खबसूरत लगत ती राखी। ऊ की किलकारी से पूरौ राजमहल चहकत रात हतो। राजा अपने राज-काज में बिदे रात ते सो वे राखी पै ज्यादा गौर न कर पाउत ते। राखी के देखा भाली के लाने राजा ने दूसरों ब्याव कर लओ। नई माताराम के आवे से राखी भौत खुश हती। कछु दिन तो सब ठीक-ठाक रओ पै जैसई दूसरी रानी कै दो बिटियन नें जनम लओ, उसई रानी ने राखी हां "तेल में हुन देखवो शुरू कर दओ। राजा लौ इतनौ समय हतो न कै वे राखी की व्यथा सुन पाउते।

एक दिना की बात है राजा अचानक बीमार पर रये। राखी अपने पिता जी की खूब सेवा करवै और दूसरी रानी की बिटियां कभऊं राजा के ऐंगर न आवें। राजा साब की हालत दिन-पै-दिन बिगड़न लगी, सबरे वैद राजा-साब कौ इलाज करके थक गए, पै राजा की बीमारी पै कोनऊ असर न परो। औ एक दिन राजा साव सोई ई संसार में विदा लै गए। अब राखी की परवाह करवे बारो कोऊ न हतो। विचारी राखी अब ई संसार में अकेली रै गई ती। अब तो वा राखी हां औरई आंखन न देखत ती। औ सौतेली बैनें तो और ज्यादा हैरान करती तीं। सौतेली मताई खुद तो बढ़िया पकवान खावै औ राखी हां बचन-खुचन खावे हां देवै।

एक दिना मताई ने राखी के सामूं चांओर धर दये बीनवें हो। चाऔर इतेक लौ हते कै राखी हां बीनत-बीनत संजा हो गई। भूखी-प्यासी राखी बैठी-बैठी रोऊंन लगी। राखी, कौ रोबौ सुनकें चिरईयां आ गई। चिरइयन ने पूछी - "राखी तुम रो काए रई" "हमाई दूसरी मताई ने जे चाओंर बीनबे धर दए औ कई कै जौ लौ जे न बिन जैहें तौ लो खैबे न मिलहें।" राखी ने कई।

चिरईयन ने कई "तुम चिंता न करौ चाऔर धर दो जे तो हम बीने दईत।" राखी ने सबरे चांओंर फैला दए। चिरईयन ने अपनी चोंच से सबरे चाऔर बीन डारे। राखी ने देखो सो बड़ी खुश भई अब तौ वे चिरइयां राखी की सखी बन गई तीं। राखी अब खूब खुश रान लगी ती, उके चिरईयन के अलावा और भी जानवर सखा-सखी बन गए ते। अब कभऊँ भी राखी के ऊपर कौनऊ मुसीबत आ जाए सबरे जानवर राखी कौ संग देवें। जौ सब कछु देखके राखी कौ काम इतनी जल्दी कैसें हो जात सौतेली मत और दोई सौतेली बैनें राखी सें खूब जरन लगी तीं। औ, वे राखी सें और काम करआउतीं। अब तौ वे राखी हां तनक-तनक सी बात पै मारन-पीटन लगी तीं।

एक बेर महलन में खीर बनी पै राखी हां "छिटकी लौ नई डारी गई।" विचारी राखी ठाड़ी ठाड़ी देखत रई। जब रात भई सो राखी ने देखौ कै राखी के सामू खीर धरी ती। राखी सोसन लगी कै जा खीर कीने इते धर दई। जब राखी ने देखो सो राखी के सबरे जानवर मित्र ठाड़े तें। राखी ने जल्दी-जल्दी खीर खाई और कटोरा नैचें धरों के बिलईया ने कटोरा चाट कै साफ कर दओ औ मों में चपा कें उतई धर दओ।

ऐसई-ऐसें राखी की जिन्दगी कट रई ती। एक दिना नगर में खूब हल्ला-गुल्ला सुना रओ तो, राखी ने छज्जे पै सें देखो कै नगर में डुण्डी पिट रई ती। एक आदमी ढोल पीट रओ तो एक कै रओ तो "सुनौ......सुनौ.........सुनो....... राजा के कुंवर को आज जनमदिन है सो राजा ने संजा कें शाही भोज को आयोजन करो है। एई कांजें कुंवर अपनी पसन्द की लड़की चुनहें, ओई कुंवर को ब्याव हुए। इसे सबई राजा की बेटी ई, आयोजन में भाग लैवे संजा कें महलन में आ जइयो। सुनौ......सुनौ........सुनौ......

जब दूसरी रानी और ऊकी मोड़ियन न जा मुनादी सुनी सो फूली न समानी, उनने सोची कै अब हमाई बेटियनई हां राजा की बहू बनने। दोई बेटी अपनी-अपनी खबसूरती बताऊन लगी। दोई बेनें अपने-आप हां ज्यादा खबसूरत, समझ रई ती। दोई बेनें फिर जे उन्ना पैने, फिन वे उन्ना पैने औ तख्ता के सांमू ठाड़ी हो-हो अपनी सकल निहारें। औ उते राखी बिचारी फटे-चिथे उन्ना पैनें अपनी किस्मत पै रोवे लगी ती। मन तो ऊ कौ भी राजा के इते जावे कौ करत तो पै अपनी हालत देख कैं बिचारी मन मसक कै रै जाएं। तनक देर में ऊने बड़ी हिम्मत करकें अपनी सौतेली बैनन

सें कई "हमई हां एक पुराने से बिना फटे कोनऊ साजे से उन्ना दै दो, हम भी राजा कै इते हो रए कारक्रम में जावो चाइत ते।

राखी की बातें सुनकें दोई बैनें खूब हंसी, फिन अपनी मातारम सें बताई उनकी मातारम नें राखी के झुतरा पकर कैं बाहर काड़ दओं और कई – "तुमाई शकल है राजा के इते जावे की। पैला तनक अपनी शकल सुधार ले फिन जइए राजा लै जा जाकें अपनों काम कर, वे वासन–भांड़े औ उन्ना धोले। बड़ी आई, तोए बनने रानी सपने देखवो छोड़ दे।"

सौतेली मताई की मार औ बातें सुनकें विचारी राखी अपनों सौ मौं ले कें चली गई और अपने सखा–सखियन के संगै का जा कें रोन लगीं। अब तो बेचारे जानवर भी कछु नई कर सकते ते। हरां–हरां संजा होन लगी राखी बिचारी और तान कें रोन लगी ती दोई सौतेली बैनें सज–धज के बग्गी पै बैठ के राजा के महलन चल दईं तीं औ राखी छज्जे पै ठांडी देखत रै गई तीं। राखी हां रोऊत–रोऊत विलात देर हो गई और रोऊतई रोऊत ऊहां ऊंग आ गई और वा सो गई।

राखी अबे सोइअई हती कै उऐ कौनउ नें बेटा कै कें जगा दओ। राखी की आंख खुली तो ऊने का देखो कै सामूं एक फक्क सफेद कपड़ा पैने औ पंख लगाए प्यारी सी औरत ठांड़ी ती। वा औरत परी लोक सें आई एक परी ती और ऊकौ नाव हतों "लाल परी"। राखी ने ऊ की कोद बड़ी गौर से देखो और फिर ऊसें पूछो – "अपुन कौ आओ? अपुन कौ नाव का है? औ अपुन कां सें आई?" राखी ने परी सें एक संगें मुलक के लौ सवाल कर दये। राखी के सवालन पै परी हरा के हंसी फिन बोली – "बेटा हम तुमाई मां जैसे हैं, हमें तुमाई मातारम नें तुमें देखवे हां पोंचाओ। बेटा हमाऔ नाव है लालपरी।

"मां" राखी ने कई औ लाल परी के रारें से लिपट गई। फिन लाल परी राखी सें बोली "राखी तुमें राजा के इते नई जाने का, तुमाई सौतेली मताई और बैने तो चली गई पै तुम नई गई।"

"मां, हम कैसें जाएँ हमाए लो न तो साजे उन्ना आएं, न बग्गी औ न सजवे कौ कौनऊँ समान" राखी ने ज्याव दओ।

"बेटा तुम चिन्ता न करौ हम तुमें आयोजन में भेजवी।"

"माँ कैसें भेजहौ?" "तुम सवाल भौत करतीं, चलौ अब तुम ओई करौ जो कछु हम कांए। जाओ तुम एक कुमढ़ा (कद्दू) लै आओ।" राखी दौड़ कैं गई और बगिया में से एक बड़ौं सौ कुमड़ा टोर लै आई। कुमड़ा परी के सामूं धर दओ। परी ने एक छड़ी घुमाई और तनक देर में ऊ कुमड़ा बग्गी बन गओ। राखी ऊ हां फटी–फटी आंखन सें देख रई ती। राखी हां होश में लियाकें राखी सें दो चुखरवा लियावे हां कई राखी गई और अपने सखा दो चुखरवन हां लै आई। परी ने फिन सें अपनी छड़ी घुमाई वे दोई चुखरवा दो घोड़न में बदल गए। ऊके बाद परी ने एक बड़े से चुखरवां हां सारथी बना दओ, फिन का हतो, हो गई बग्गी तैयार। ऊके बाद परी ने राखी के उन्नन पै एक छड़ी घुमाई और ऊके उन्ना सोने–चांदी के बन गए। राखी ने फिर अपने पावन कोद देखो ऊ के पांव तौ बिना चप्पलन के हते परी एक छड़ी पावन कोद घुमाई और राखी के पावन में हीरा जड़ी चप्पलें आ गईं। अब तो राखी हाली–फूली न समा रई ती। राखी जैसई बग्गी में बैठन लगी कै लालपरी ने पांछू से आवाज दई – "राखी, सुनौ जावे से पैलां जा बात ध्यान राखियो के तुम रात के बारा बजे सें पैला आ जइयो, नई तर सब ऊसई को ऊसो हो जैहे।"

राखी ने शर्त पै हामी भरी और चल दई महलन की कोद। जब राखी ने कमरा के भीतर पांव धरो कै, सब राखी हां देखत रै गए। कुंवर राखी के ऐंगर आए और राखी हां लिवा लै गए फिन उने अपने ऐंगर बिठार लओ। राखी की सौतेली मताई और बैनन ने भी राखी हां देखो पै ऊ हां चीन न पाई नाच–गाना औ खाना–पीना में समय कबे निकर गओ पतौई नई चलो। दिवार पै टंगी घड़ी ने जब बारा बजाए कै राखी एकदम सें ठांड़ी हो गई और हड़बड़ाहट में भगी, ऐई जल्दी में राखी को एक जूता उतई छूट गओ। कुंवर भी राखी के पांछू बाहर लौ भगत आए, उनने नैंचे देखो के एक जूता तो राखी कौ नैचें डरो तो। कुंवर ने जूता उठाओ औ प्रण करो कै अगर ई के संग कौ दूसरौ जूता औ पैनबे वारी हां न ढूंढ़ पाए ता कभंऊ ब्याव न करवी।

राजा साब ने अपने मंत्रीयन सें कई कै दूसरौ जूता ढूंढ़ो और पैनवे वारी हां ढूंढ़ौ कुंवर कौ ब्याव ओई बिटिया सें करी जैहे जी के पांव में जो जूता आ जैहे। नगर औ ऐंगर–पास के सब राज्यन में सैनिक जूता लैकें ऊ बिटिया हां ढूंढ़न लगे। इते राखी की सौतेली मताई ने राखी हां एक कमरा में बंद कर दओ तो कै कऊँ राखी कौ पांव न ऊ जूता में आ जाए। जैसई सैनिक उनके महल में आए कै दोई बैने अपने अपने पांव में जूता पैरन लगी, पै कौनऊ के पावं में ऊ जूता न आवै। इतने में सब जानवरन ने मिलके राखी कौ कमरा खोल दओ। जैसई सैनिक राखी कै ऐंगर जूता लैकें गए कै ऊकी सौतेली मताई बोली कै "जा तो हमाई नौकरानी आई हां जौ जूता काएं पैरा रए जा तो घर सें बाहरई लौ नई निकरी।"

सैनिक बोले – "महारानी हमें राजा साब कौ आदेश है कै नगर की कौनऊ मोड़ी न छूट जाये।" सैनिकन ने जैसई राखी हां जूता पैराओ सो जूता राखी के पांव में पट्ट से हो गओ । सैनिक राखी हां लुवा कें राजा लौ पोंच गए, कुंवर औ राखी कौ ब्याव धूमधाम सें हो गई। राखी नें पिता जी की सबरी जायजाद सौतेली मताई औ बैनन हां दै दई।

– बसारी, छतरपुर (म.प्र.)

☐

बुन्देली लोकगीतों में पावस-ऋतु -

'राजा किवरियाँ खोलो – रस की बूँदें परीं'

– रमेश शंकर सक्सेना

प्रकृति के क्षण–क्षण में, छण–छण परिवर्तन होता है। एक निश्चित व्यवस्था के अन्तर्गत् परिवर्तन होना अवश्य संम्भावी है। क्या जड़ और क्या चेतन? सभी कुछ परिवर्तनशील है, गतिशील है। कुछ भी तो स्थिर नहीं है यहाँ। विश्व–नियन्ता की यह अस्थिर व्यवस्था ही तो अत्यन्त सुन्दर, सुखद और सुहानी है। इसी व्यवस्था में आवद्ध प्रकृति और पुरुष नवोन्मोषकारी चेतना पाता है, और प्रगति के सोपान चढ़ता है। उल्लास और उन्माद की सरिताओं में स्नान करके जीवन और जगत की चिन्ताओं से मुक्ति पाता है। विगत् को भूलकर आगत् के स्वप्निल साज–सजाता है। परिवर्तनों में ऋतु–परिवर्तन की एक सुन्दर व्यवस्था है। प्रत्येक ऋतु के पश्चात् परिवर्तन होता है, और दूसरी ऋतु अपना साम्राज्य स्थापित कर लेती है। ग्रीष्म के पश्चात् पावस ऋतु–परिवर्तनशीलता का सर्वश्रेष्ठकाल है।

पावस, जी हाँ पावस। इस मौसम में क्षण–क्षण परिवर्तन होता है। कभी अम्बर में सूरज मुस्कुराता दिखलाई देगा, तो कभी दर्शन ही नहीं होंगे। कभी श्यामल–कजरारे घनों से आच्छादित आकाश, तो कभी निर्मल वितान ताने शुरभ्र प्रकाश। कभी बिजुरी की चमक, तो कभी बादलों की सड़क कभी रिम–झिम नन्हीं–नन्हीं बुँदियों की बरखा बहार, तो कभी तड़–तड़ बरसती बड़ी–बूँदों की मूसलाधार। कभी सोंधी सुगन्ध लिये नम बयार, तो कभी उमस बढ़ाता, पसीना चुचुवाता शुष्क वातावरण। कभी तेज, कभी मंद चलती–पवन। लुभावनी रम्या प्रकृति के बिखरे इन्द्रधनुषी रंग। चटकीले, रसीले विविध दृश्य मानव को सम्मोहित करते हैं। पुलकित रहते हैं और मन–प्राण को आपूरित।

पावस में बुन्देलभूमि का तो कहना ही क्या? विन्ध्यपर्वत श्रृंखलाओं की ऊँची नीची पहाड़ियाँ टेकड़ियाँ सपाट मैदान हरे रंग कौ मुड़ारछौ (पगड़ी या साफा) बाँधे गाछ–बिरछ, रुमाल से हिलाते पत्ते। अलसायी, उनींदी, विरक्त भाव से लेटीं सूखी नदियाँ–नाले। गात–पात झार कर भभूत से रमाये साधु बाबा बने झाड़–झाड़ियाँ। मुरझाई, कुम्हलाई लता–बेलें। सहमें–सहमें से सिकुड़े सिमटे ताल तलईयाँ – वीर भोग्या, वसुन्धरा का सन्देश देते हैं। तो मृदुल हँसी बिखेरती यहाँ की कोकिल कंठी रमणियाँ, और सहस्त्रों–सहस्त्रों वीर काव्यों और श्रृंगार–काव्यों के साज सजाये खुले पृष्ठों का बुन्देली गवरूँ जवान – अपनी लोक–संस्कृति, लोक रंग और लोक–गीत–संगीत से गहरा नाता जोड़े विशिष्ट है, बेजोड़ है। वस्तुतः बुन्देलभूमि की हर सुबह वह उत्सव है, और शाम एक साँस्कृतिक समारोह की समापन संध्या। मयूरी सी नाचती उमंग, इठलाती मुस्कुराती, विराती (चिढ़ाती) यहां की लोक जीवनशैली। मनमोहक प्राकृतिक सौन्दर्य, अपरिमेय पौरुष के धनी बुन्देली मानस की अलग पहचान है। यह पहचान अत्यन्त रोचक, आकर्षक और मनभावन है। यहां का लजीला, ममतीला देहाती लोक–मन और उसकी मनुहार पूर्ण आतिथ्य की गंवई प्रस्तुति – मानव तो क्या ब्रह्म को भी आकर्षित करती है। नेह से रंगी, प्रेम से पगी, मिसरी सी घोलती ललित बुन्देली भाषा बेजोड़ है। कोई शानी नहीं है। सबकी निराली शान और अलग पहचान।

कृषि कर्म से जुड़ा लोक–जीवन पावस के प्रथम पयोद का परस पाकर प्रफुल्लित हो उठता है। प्रकृति के प्राँगण में उल्लास की, उन्माद की और उत्साह की सरिता उमड़ पड़ती है। अजीब सी चहल–पहल, पुलक प्रसन्नता और भविष्य के स्वर्णिम सुखद आश–जोत से आपूरित लोक मन विहँस उठता है। उमड़–घुमड़ कर कजरारे बदरवा देख उसकी मन मयूरी नाच उठती है हिय की हुलास वाणी के सहारे निकल पड़ती है, और वह गाने लगता है :–

"अरे–ऽ हां–आं–ऽ–धरती माता तैने काजर दये। अरे काजर दये। सेंदुरन भर लई माँग। अरे हाँ–आ–ऽ– सेन्दुरन भर लई हो–ऽओ–ऽ। पहर हरिलिया अरे ठाँड़ी भई। सो मोह लियो जगत सँसार।।"

कितना सजीव चित्रण है। वस्तुतः पावस ऋतु का अपना अलग ही आनन्द है। सर–सरितायें उफनकर मचलने लगते हैं। घास–पात, लता–बेलें अंखुवाने (अंकुरित) लगते हैं। धरती माता हरे रंग की मखमली चूनर ओढ़ लेती है। वन श्री सौन्दर्यमयी हो जाती है। सुपुप्त भावन–मन और प्रकृति तरंगायित होकर आनन्द मग्न हो उठता है। इस सुरम्य वातावरण में–आबाल, वृद्ध, बनितायें सभी पुलकित हैं। प्रमुदित हैं। नन्हीं–नन्हीं बुंदियाँ धरा पर आईं और नंग–धड़ंग नन्हें–नन्हें बालक घर सें विहंसते किलकते निकल पड़े। गाते–झूमते :–

"बरसो राम झला–झलियाँ।
खाय किसान मरे बनियाँ।।"

हे राम! खूब झला–झल बरसो ताकि अच्छी फसल हो और सेठ जी का अनाज न बिकै, जिससे उन्हें घाटा लग जाये।

किसान भी अपने बैलों के गले में घंटियाँ बाँधकर हर–बखर जुआँ में डाल निकल पड़ता है अपने खेतों की ओर। खेत जोतने, हरैंती का सगुन मनाने। धरती माता के अन्तर से उमड़ते वात्सल्य रस का पान करने। अपने पिया को बखर लेकर जाते देख उसकी गोरी धना भविष्य के सपने संजोती है। अच्छी फसल से भरपूर

पैदावार हो और उसकी कामनाऐं पूरी हों। एक आश जगाती है। वह मन में। पुरुषार्थ को ललकारती– वह मन ही मन गाने लगती है –

''चँदा पै खेती करों, सूरज पै खरयान।
जोवन के बदरा करों। मोरे पिया बखर कों जाँय।।''

क्या बात है? यदि होंसला बुलन्द हो, साहस और पुरुषार्थ हो और हो दृढ़–निश्चय तो क्या धरा और क्या गगन? सभी की ऊँचाईयाँ पाना सरल है। सुगम है। रमणी की साँस–साँस पुरवाई बनकर मचल उठती है। यही तो उसके जीवन का मधुवन्ती चषक है और है रसवन्ती कसक। मन की इन्हीं ऊँचाईयों से तो वह ऊर्जा पाती है। साहस सँजोती है। हर परिस्थिति में प्रसन्न रहने का, मस्त रहने का से तो वह ऊर्जा पाती है। साहस सँजोती है, हर परिस्थिति में प्रसन्न रहने का, मस्त रहने का।

जब कोई पावसी सुहागिन सिर पर टोकरी रखकर अपने पिय को भोजन देने, रोम–रोम से विहँसती, इठलाती, अधरों से मुस्कुराती, पलकों की देहरी के आतुर मन, मुग्ध नयन, लाज भरी घूंघट काढ़े, रूपगन्ध बाँधे– डगर–डगर खेतों की ओर जाती है। तभी बीच में ही बैरिन बरसा से उसकी तन्द्रा टूट जाती है। वह गुनगुना उठती है – ''हम पै बैरिन बरसा आई, हमें बचा लेव भाई।'' पर कौन किसकी सुनता है। पानी ज्यादा बरसने लगता है। वह मन–मार कर रुक जाती है। उसकी उल्लासमयी पीड़ा गीतांकुर बनकर फूट पड़ी :–

''भींज गई रे, राजा भींज गई रे। मै तो मकोरा तरें ठाँड़ी भींज गई रे।
घुँघटा भीजे भींजन दईयो, नयनन खों लईयो बचाय। भींज गई रे...''

एक दूसरा गीत है –

''कौन गली जाऊँ बरस रहीं बुंदियाँ।
गैला में भींजे मोरी सुरंग चुनरिया, मोरी सुरंग चुनरिया।
छूटै न नेहा, अरै पिया कौ न छूटे सनेहा, बरस रहो मेहा–
चूनर भींजन कौ मौय डर नहीं लागै,
डर लागै जी छूटे सनेहा–मोरे रामा।
गैला में बरसै बदरिया, ओरे रामा गैला में बरसे।।
छूटे न नहो अरे पिया का न छूटे सनेहा –''

यहाँ नायिका विवश है और खेतों पर उसका नायक प्रतीक्षारत्। बादल और बरसा की छेड़–खानी से वह आशंकित हो उठता है। वह अधीर मन से उसे खोजने चल पड़ता है। तभी दूर से ही उसे अपनी गोरी धना आती दिखलाई दी। पास आने पर देखा–छप्–छप् करती पानी से निचुरती धोती, अँगिया और गोरे–गोरे गालों पर काजल की काली और माँग के सिन्दूर की लाल–लाल लकीरें गंगा–यमुना सी वही जा रहीं हैं। उसका रूप–सौन्दर्य देख नायक विहँस उठा। दोनों की आँखें चार हुईं। मुस्कान बिखरी और जलधर की रसधार के साथ लोक–गीत की धार बहने लगी। वे दोनों समवेत स्वर में गाने लगे :–

''मेहा में भींजे चुनरिया, गोरी धना मेहा में भींजे चुनरिया।
करहन–करहन आ गई नरवदा हो, आ गई नर–वदा।
उमड़–घुमड़ गरजे बदरिया; हो गोरी घना मेहा में भीजे चुनरिया।।
साहुन महिना गोरी मेंहदी रचा ले, री मेंहदी रचा ले –
नैनों में डार ले कजरिया। गोरी घना मेहा में भीजे चुनरिया।
कारे–कारे बदरा ऐसे बरसियो रे–ऐसे बरसियो –
पिया न छोड़ पाँय जा मड़ईया। गोरी धना मेहा में भींजे चुनरिया।।
अमवा की डार तलें झूला ड़रो है, रे झूला डरो है –
दूर कहूँ बाजे मुरलिया। गोरी धना मेहा में भींजे चुनरिया।।''

दोनों ही अपनी–अपनी भावनाओं की रस–धार में बहे जा रहे हैं। जहाँ पुरुष 'मेहा' कहता है, तो स्त्री 'नेहा' और अंत में दोनों ''नेहा'' कहते हैं, गाते हैं, स्वीकारते हैं। वस्तुतः नेह की रसधार ही हो सबसे बड़ी रसधार है।

इन चित्रों में जहाँ दाम्पत्य के सुखद संयोग से नायिका अपने सौभाग्य पर हर्षित है, गर्वित है। वहीं एक दूसरा चित्र भी है। जब कोई अल्हड़ नायक संयुक्त परिवार की मर्यादाओं के वृत में टीसती सच्चाई से बेखबर–साँझ से ही अपनी प्रियतमा की प्रतीक्षा करने लगता है, और रूठकर अपनी अटरिया के झंझर किवाड़ बंद कर लेट जाता है। परन्तु अपने दैनिक कार्यों के पश्चात् जब नायिका–प्रियतम की अटरिया पर जाती है, तो किवरियाँ लगी देखकर दुखी हो जाती है। वह अपने राजा से मनुहार करती है, उसकी टीसती पीड़ा गीत बनकर फूट पड़ती है। आप भी सुनिये – दो बोल कसक के, पीड़ा के, टीस के –

''मोरे राजा किवरियाँ खोलो, रस की बूंदें परी।
महाराजा किवरियाँ खोलो, रस की बूंदें परीं।
ऐलें आँधी बेहर आई, दूजें बादल भौत दिखाई–
तीजें अधिक अंधेरी छाई। उठी है घटा–घनघोर।
रस की बूँदें परीं, महाराजा किवरियां खोलो,
पहली बूँद गिरी अरुणाई, मोरे माथें आई जुन्हाई –
मोरी देह भई है सरवोर। रस की बूँदें परीं, महाराजा......

संयुक्त परिवार की मर्यादाओं ने उसे कसकर जकड़ रखा है। वह दाम्पत्य को खुलकर भोगना चाहती है परन्तु मर्यादाओं की, संस्कारों की एक मजबूत पकड़ उसे जकड़े है। ग्राम्य–सँस्कृति की समृद्ध संयोजना का एक सच इन गीतों में स्पन्दित होता है। यही वह साँस्कृतिक भाव बोध है, जो नागर सभ्यता से लोक संस्कृति को जीवंत बनाये हैं; प्राणवान बनाये हैं।

पावस ऋतु प्रिय मिलन की मन–भावनी ऋतु है। मदन भाव जागृत करने वाली पावस ऋतु जहाँ संयोगिनों को आल्हादित करती है, वहीं विरहिनियों के हृदय में 'दवारि' सी लगती है। वह अपने प्रियतमों की प्रतीक्षा में पलक–पाँवड़े बिछाऐ हैं। एक

विरहिणी कारी बदरिया से प्रार्थना करती है कि वह 'वीरन' के देश में बरसे। जिससें उन्हें मेरी सुधि आ जाये –

''बदरिया बरसो वीरन के देसा में।
काना सें आई कारी बदरिया, काना सें बरस गये मेघ।
बदरिया बरसो वीरन के .....
अगम से उनहारी कारी बदरिया, पच्छिम बरस रहे मेघ।
बदरिया बरसो वीरन के....
किनकी भर गई ताल–पुखरियाँ, किनके भरे बेला ताल।
बदरिया बरसो वीरन के......
ससुर की भर गई ''ताल–पुखरियाँ, वीरन के भर गये बेलाताल
कारी बदरिया तोरी पईयां परें, कौदा बरस जा वीरन के देस में
मो दुखिया की तुम करो सहाय, तो आँखन में रखहो कजरा बनाय।
बदरिया बरसो वीरन के देसा में......''

कारे–कजरारे बादलों ने उसकी विरह व्यथा से दयार्द्र होकर 'वीरन' के देश में बरसना स्वीकार किया या नहीं। पर यहाँ अवश्य वह अपने रौद्र रूप में गरज–तरज कर बड़ी–बड़ी बूँदों से बरसने लगे। बादलों की बूंदों की तरह वह स्वयं आसमान से धरती पर गिर पड़ी। उसका नायक अपनी ही मस्ती में परदेश में विराजमान है। और यहां बैरिन बरसात आ गई। परेशान चिन्तित ग्राम्य वधूटी की हताशा गीतांकुर बनकर फूट पड़ी –

''मोरे आये नही साजनवा, बैरिन आय गई बरसात।
रिमझिम–रिमझिम बरसत पानी। मोरे घर की भींत पुरानी।
खपरा–खाड़ी कछु न हो पाये, सबरो घर चुचात।
बैरिन आय गई बरसात।
जितनी बूंद गिरी ऊपर सें। कड़ी न वाहन वे छप्पर सें।
नहीं बैठवे कों जाँगा हैं। सबरो धर चुचात।
बैरिन आय गई.....
पूरे घर आँगन में कीच मची है।
सूखी जाँगा न नेक बची है।
रिप्टी पांव गिरी देहरी पै, अबलों कमर पिरात।
बैरिन आय गई.....
बिजली बेर–बेर है चमकत।
गरज–गरज घन फिर–फिर तड़फत।
मोरी छाती हूँ तड़कत है, देख–देख जा कारी रात।
बैरिन आय गई...।

यथार्थ की सच्चाई से व्याकुल नायिका का व्यथित होना स्वाभाविक है। वह प्रिय के आगमन की आशा वल्लरियों में मिलन के पुष्प खिलाने को मछली की तरह फड़फड़ाती है। प्रियतम की अपेक्षा से उसका अन्तरमन घायल है। वह मान करके भूखे स्वाभिमान की ज्वाला में तड़पती, प्रियतम की स्मृति में सो जाती है। पर बैरिन बरसा है कि उसे चैन से सोने भी नहीं देती। वह उसी के ऊपर बरस जाती है। जगा देती है दुखी नायिका को। उनींदी, व्यथित, व्याकुल विरह वेदना से आहत् नारी की पीड़ा को व्यक्त करने वाली वाणी के बोल हैं :–

''बरसो अटरिया पै पानी, सिजरिया पै भींज गई राजा।
गद्दा भी भींजे, सुपेती भी भींजी, भींज गई अँगिया हमारी।
सिजरिया पै भींज गई राजा। बरसो अटरिया पै पानी सिजरिया पै।''

संयोग–वियोग के ऐसे अनन्त पावसी लोकगीत हैं जो हृदय तंत्री को झकझोर देते हैं। मन–प्राण को आपूरित कर देते हैं। और आनन्द रस की वर्षा करते हैं। वास्तव में लोक–वातायन में पावस के आनन्द का तो कुछ वर्णन ही नहीं किया जा सकता। उसका क्या कहना? कहीं बाँसुरी बज रही है, तो कहीं दूर से ही अलगोजा (वीन) के स्वरों की मिठास कानों म घुल–घुल जाती है। धुले–पुछे पत्थर पर अट्टा–चंगला पड़ाधिक ऊअल खेला जा रहा है। बूढ़े–सामने ढेरा पर सन/अमारी कातकर रस्सी बट रहे हैं। किशोरियाँ ''चपेटा'' खेल रही हैं तो किशोर ''चकरी'' चला अपनी शेखी बघार रहे हैं। रात को 'आल्हा', 'सीताहरन' 'सीता–वनवास' हो रहा है तो कहीं ''सैरो'' और 'भजन' की बहार है। कभी 'कबड्डी' तो कभी 'घोड़ा अमानसाई' – यानी सर्वत्र एक चहल–पहल और उत्सव की नाँई हुलास। उत्सवों में 'राखी' और 'कजरी' तो बड़े हैं ही परन्तु सम्पूर्ण पावस ऋतु में रोज ही कोई न कोई उत्सव होता ही है? विस्तारभय से चर्चा न करें। सावन के झूलों की बात करना चाहूँगा, जो सामूहिक आनन्द और हुलास के प्रतीक हैं। झूलों के साथ ही साथ दिल की उमंगे भी झूलने लगतीं हैं। गाँव के बाहर बाग–बगीचे में या खेत की मेंड़ पर आम अथवा बरगद की डाल पर झूले डल जाते हैं। प्रिय–प्रियतम आत्मविभोर होकर वर्षा की फुहार का आनन्द लेते झूला झूल रहे हैं। प्रेम–रस से सराबोर तृप्त हो रहे हैं। लोक–गीतों के स्वर गूंज रहे हैं।

''हिड़ोला झूलन लगी रे बालमा।
जब मैं झूला झूलन बैठी –
चुनरिया सर–र–सर–र उड़ी रे बालमा।
जब मैं झूला झूलन बैठी –
अंगिया तड़ा तड़ टूटी रे बालमा।।''

किन्तु लोक मानस में राधाकृष्ण की छवि अत्यन्त सूक्ष्मता से अंकित है। जिसके कारण वह अपने हर सुख दुख में उन्हें स्मरण करता है। फिर राधा–कृष्ण तो रसिक बिहारी हैं लीलाधारी है। राधा–कृष्ण को सम्बोधित करके अनेक झूला गीत प्रचलित हैं। बानगी स्वरूप आप भी रसास्वादन कीजिये –

''सखि री झूला–झूलत जुगल किशोर।
रिमझिम–रिमझिम मेहा बरसे, छाई घटा घनघोर
मोर बोले, पपीरा बोले, दादुर करत किलोर।
सखी री झूला झूलत जुगल किशोर।

जो यह रहस सुने ऊ गावे, हरि सुमरे दोऊ कर जोर।
प्यारे लाल अटल पद पायें, जायें न जग के दोर।
सखि री झूला झूलत जुगल किशोर।''

एक अन्य गीत है –

''झूलन चलो हिंडोला, वृषभान नंदिनी।
सावन की तीज आई। नव घोर घटा छाई।
मेघन झरी लगाई परे बूंद वंदिनी। वृष भान नंदिनी, झूलन चलो।
सुंदर कदम्ब की डारी। झूला घलो है प्यारी। पहनो सुरंग सारी।
मानो विनय हमारी। मुख चंद की उजारी। मृदुहास फंदनी।
झूलन चलो।
मम मान सीख लीजे। सुंदरि न देर कीजे। हम तो विलोक जीजे।
हमारे संग हो लीजे। सुन्दर नंदिनी–झूलन चलो.......''

वर्षा ऋतु में समवेत हिस्सेदारी का एक उत्सव और है। जो प्रतीकात्मक रूप से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। परन्तु अब शनैः शनैः इस बात को लोग भूल जा रहे हैं कि यह सब आखिर है क्या? यहाँ थोड़ी सी चर्चा ही करूँगा। यह उत्सव है ''भुँजरियों'' का या ''कंजरियों'' का। वैज्ञानिक शोधों से कृषकों को अपना बीज सुरक्षित रखने के अनेक उपाय अब प्रचलित हो गये हैं। परन्तु एक समय था जब किसान अपनी पुरानी परिपाटी पर चलकर अगली फसल के लिए बीज ''कुठिया/बंडा/खोंड़िया'' में भुसा–नीम के पत्ता इत्यादि डालकर सुरक्षित रखता था। आसाढ़/सावन की बरसात से कहीं उसका बीज खराब तो नहीं हो गया है। इसे परखने के लिए वह अपने ही खेत की मिट्टी और पलाश के पत्तों के दोना बनाकर कुछ दोनें बोकर देखता है कि हमारा बीज कितना अंकुरित होता है। इन्हें कजलियाँ कहा जाता है। ऐसी मान्यता है कि जिस वर्ष कजलियाँ अच्छी जमती हैं। उस वर्ष फसल अच्छी होगी। फिर सभी लोग ''कजरी'' लोक गीत गाते हुए एक स्थान पर एकत्रित होते हैं। पंक्ति बनाकर छोटे–बड़े सभी तालाब के किनारे बैठ जाते हैं। स्त्रियाँ बालिकायें गीत गाते हुए तालाब में उन दोनों को सिराने (विसर्जित) करने के पहले कुछ पौधे (कजरियों के) तोड़ लेती है; फिर चार–चार। छः–छः पौधे बैठे हुए पुरुष वर्ग को देती जाती है। पुरुष उनको लेकर श्रद्धाभाव से मस्तक पर लगाता है कुछ कान में खोंस लेते हैं। यानी महिलायें अपनी–अपनी सुघड़ता का प्रमाण देती हैं कि हमने इतनी कुशलता से बीज को सहेजकर रखा है, और हमारी फसल ऐसी है। पुरुष भविष्य की आशा से अन्न महाराज को मस्तक नवाकर सिर पर धारण करता है। फिर तालाब में नीबू डालकर बन्दूक से निशाने बाजी होती है। सामूहिक उल्लास का अवसर हो और बुन्देली–मानस अपनी शूर वीरता को परखने से चूक जाये? ऐसा हो ही नहीं सकता। बुन्देलखण्ड में कहीं–कहीं भुजरियों का मेला भी लगता है। पर छोटा–मोटा हाट–मेला सरीखा तो प्रायः हर गाँव में आयोजित हो ही जाता है। अपने आप बिना किसी प्रयास के। 'कजरी' गीत बड़े ही भावपूर्ण होते हैं और महत्वपूर्ण हैं। इनका रसास्वादन अपने पाठकों को फिर कराऊँगा। लेकिन एक भावपूर्ण चित्र कवि घनश्याम के शब्दों में प्रस्तुत है –

''पहिरें पट रंग–बिरंगन के तन अंग–अनंग जगावती हैं।
द्रग में कजरा, सिर पै कजरी, मुख सों कजरी घुनगावती हैं।
''घनश्याम'' तला पै झला के झला, खड़ीं खोंटे भुजान हिलावती हैं।
दुनियाँ को डुबाइवों हाँतन सों, दुनिया को मनो दिखरावती हैं।।''

कितना सजीव चित्रण है? कजरियों का मेला दर्शनीय है। पावस का आनन्दमूर्त हो उठता है। विशाल जल राशि के अथाह सरोवरों में नीबू को या फुग्गा को निशाना बनाकर चलतीं बंदूकें, कजरी गाती रमणियाँ, पपीरा (सीटी) बजाते फुग्गों से खेलते, विहंसते बच्चे, चकरी चलाते किशोर, अलगोजा (वीन) बजाते प्रौढ़, और बीच–बीच में रमतूला की ध्वनि आनन्द रस को बढ़ा देते हैं। खेतों में धान की पकी सुनहरी बालियाँ, घुंघरू से बाँधे सोयाबीन की फलियाँ जुनई का कलियोंदार लंहगा और उस पर उर्द, मूंग की फलियों के जड़े सलमा–सितारे सरसराती नम बयार, विचरते रँभाते पशु और उछल कूँद करते बछड़े–प्रकृति के प्राँगण में पसरे श्रम सर्जन से विहंसता, आत्मसुख पाता बुन्देली लोक–मन किशोर–किशोरियों के मुख पर दमकता गंवई, अल्हड़ रूप सौन्दर्य और उससे सुवासित व्यक्तित्व की पावसी छटा, जीवन और जगत की जटिलताओं को नकारती अनुरागमयी रस की धार अन्तस को कहीं गहरे तक भिगो जाती है। बुन्देली वातायन के इस सौन्दर्य बोध की तीक्ष्णतम रसधार को शब्दों में नहीं बांधा जा सकता। क्योंकि यह तो रस की बात है, और जो ''रसिक होय सो जाने।'' इस मदमाते मौसम में तो दिल की किवरियाँ। मन की किवरियाँ खोल कर आनन्द रस की अमृती बूंदों को नैनन निहारिये, पान करिये। भींग जाईये तन से, मन से, प्राण से–और और मैं तो लोक–गीतकार के साथ गाना चाहता हूँ – ''राजा किवरियाँ खोलो, रस की बूँदें परीं''

– पंकज पुल के पास, बल्देवगढ़
जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)

□

एक दिन मन–पंछी उड़ जैहें,
लाल चोंच के हरे सुआ न, ई पिंजरा में रैहें,
हाड़–मांस मरबे पै कूकुर, गीद–चील मिल खैहें।
गिन–गिन कें जे जम की नाईं, तुमसें बदला लैहें,
लैवे खों हरिनाम न लैहें, छूटां गारी दैहें।
सज–धज कें जो चले पावनें, साजी–बुराई न सैहें,
पिंजरा रितै रात 'जगदीश्वर', भुकाभुकें भग जैहें।

– जगदीश रावत 'जगदीश्वर', छतरपुर

बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिक कहानी -

औज बड़ी कै फौज?

– पं. गुणसागर 'सत्यार्थी'

ओरछा राज्य की अष्टगढ़ियों में सबसे बड़ी ओरछा राज्य के अधीनस्थ रियासत थी चिरगांव। ओरछा राजदरबार में चिरगांव के राव साहब की महाराजा के बाद पहली कुर्सी लगती थी। यदि राव साहब अनुपस्थित रहते तो वह कुर्सी खाली रहती थी। उस कुर्सी पर अन्य किसी को बैठने का अधिकार न था। ऐसे चिरगांव के राजवंश में उस समय रावसाहब श्री बखत सिंह जू देव का शासन था। वे प्रजा–पालक, कर्मवीर, अन्य पशु–पक्षियों के रक्षक एक कुशल प्रशासक थे। बात १८४२ ई. की है जब कालपी में अंग्रेजों की बड़ी छावनी थी, उस छावनी के फिरंगी झांसी आते जाते समय चिरगांव के बारह पत्थर वाले मैदान में डेरा डालकर विश्राम करते थे। इसी क्रम में कालपी से कुछ गोरे बारह पत्थर वाले मैदान में अपने तम्बू तानकर मौज–मस्ती में थे। राव साहब कहीं प्रवास कर गए हुए थे। किले के दक्षिणी भाग के नीचे एक पक्का सरोवर था ''चौपड़ा''। चौपड़ा के चंदेवा पर राज्य की दो पलेर मोरें किलोल कर रहीं थीं। फिरंगियों ने उन मोरों को ज्यों ही देखा कि उनके मुंह में पानी आ गया और उन सुन्दर मोरों को अपने शिकार का निशाना बना बैठे। गोरों के लिए मोरों का मारना भले ही साधारण बात रही हो, परन्तु चिरगांव राज्य के संस्कारों में वह असाधारण घटना अवश्य थी। महारानी जू को अनुचर ने जाकर सूचना दी – हुजूर सरकार! चौपड़ा पर खेलती हुई दो मोरों को गोरों ने मार गिराया है। सुनते ही महारानी जी की त्योरी चढ़ गई। म्लेच्छ गोरों का इतना दुस्साहस? इसका न्याय यही है कि ''खून के बदले खून''। महारानी ने उन अंग्रेजों का हुक्म देकर वध करवा दिया।

दो अंग्रेजों का वध अंग्रेजी छावनी रूपी बारूद के ढेर में एक चिन्गारी का काम कर गया। राव साहब भी झुकने वाले न थे। झुकते भी क्यों? अपराध तो उन्हीं फिरंगियों का था जिन्होंने दो सुन्दर मोर मारे थे। बस मंगल पाण्डेय के कारतूस कांड की भांति मोरों की मौत युद्ध का कारण बनते देर न लगी। अंग्रेज अपना फौज–फाटा और तमाम लश्कर लेकर चिरगांव पर टूट पड़े। कई दिन तक युद्ध हुआ, अन्त में अंग्रेजों ने तोपें दागना शुरू कर दिया। उत्तर दिशा से किला ध्वस्त हो गया। राव साहब ने रात्रि में पूरे परिवार को सुरक्षित स्थान पर पहुंचा कर अंग्रेजों से खुलकर लड़ने की योजना बनाई। वे रातों रात सपरिवार चिरगांव से कूच कर मोहनगढ़ एवं बल्देवगढ़ होते हुए परिवार को टीकमगढ़ के किले में सुरक्षित पहुंचाकर लौटते तब तक अंग्रेजों का चिरगांव में बहुत कहर बरस चुका था। अंग्रेजों की फौज चिरगांव नगर में प्रवेश कर लूट–पाट करती हुई किले के मुख्य द्वार पर पहुंच गई।

किले के मुख्य द्वार पर रक्षक सिपाही के रूप में एक लंगड़ा मेहतर बैठा था, जिसका नाम था बुद्धा। अंग्रेज अफसर ने उस पर अपना रौब जमाते हुए पूछा – मैन, टुमारा राजा कहां गया? वह रात में ही कहीं चले गए, मुझे नहीं मालूम कहां गए? बुद्धे का उत्तर सुनकर अंग्रेज ने बड़े प्रेम से कहा – मैन, राजा आ गया, आगे जाने दो..... टुम हमारा मैंन बन जाओ, हम टुमको बहोट इनाम डेगा। टुम हमको बटाओ कि माल–खजाना कहाँ है?...

सुनकर बुद्धे ने मन ही मन सोचा कि एक दिन सभी को मरना पड़ता है। मालिक के नोंन–पानी की भंजा कर मरना बेहतर है। बुद्धा अकेला था, वह पैर से अपंग था, बैसाखी के सहारे भाग भी नहीं सकता था, जबकि अंग्रेजों की बहुत बड़ी तादाद में सशस्त्र सेना उसकी छाती पर खड़ी थी। बुद्धे ने मन में सोचा घबड़ाने का काम नहीं है – औज बड़ी कै फौज? बस उसने नमक हलाली उपाय सोच लिया और अपनी औज (सूझ–बूझ) का परिचय .. कहा मेरे लिए जैसे राजा थे, वैसे ही आप भी मेरे मालिक हैं। लेकिन मैं माल–खजाना आपको कैसे बतला दूँ? मेरे मालिक मुझसे नाराज होंगे। अंग्रेज अफसर ने कहा – वो टो मर गया, अब वो आने वाला नहीं है। टुम हमको खजाना बटाओ हम टुमको माला माल कर देंगे। बुद्धे ने मन में कहा – नोंन पानी की भंजाने का अब है मौका। वह बोला – हुजूर, खजाना थोड़ा नहीं है पांच सौ लोग मेरे साथ चलें तभी ले जा पाएंगे। अंग्रेज अफसर ने पाँच सौ सैनिकों को बुद्धे के साथ अन्दर जाने का हुक्म दिया। पाँच सौ गोरा पल्टन को लेकर बुद्धा बैसाखी के सहारे किले के अन्दर गया वह सब को लेकर बारूदखाने में जा पहुंचा। अंग्रेज अफसर ने पूछा कहां ले जा रहा है? बुद्धे ने कहा इसके बाद दो कमरे पार करने पर हम खजाने तक पहुंच जाएंगे। कह कर उसने देखा कि पूरी फौज बारूदखाने के भीतर आ चुकी है। बस उसने अपनी तम्बाखू वाली थैली से चकमक पथरी निकाली और पथरी को दूसरी पथरी पर रगड़ दी। चिनगारी छूटते ही बारूद बोल उठी, धमाकों के साथ अंग्रेजों की पूरी फौज राख का ढेर बन गई। बुद्धे का वह बलिदान बुन्देलखण्डी उक्ति बना गया कि – ''औज बड़ी कै फौज?'' अंग्रेजों की शेष बची फौज के साथ लड़ते हुए राव साहब श्री बखत सिंह जू देव पनवाड़ी तक गये जहां पर चरखारी के राजा पारीछत जी ने उनका साथ दिया और वे अंग्रेजों से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। उनकी आन–बान और शान की खुशबू तथा बुद्धा नामक अपंग दलित की बलिदानी गाथा ने एक अनूठा इतिहास रच दिया कि ''औज बड़ी कै फौज?''

धन्य बुन्देला वीर है, धन्य उनन के ज्वान।
नमक हलाली हो गई, बुद्धे की पहचान।।

– **'ज्योति कलश', कुण्डेश्वर, जिला टीकमगढ़ म.प्र.**

□

कानियाँ के मुखड़ा

- डॉ. नारायण दास गुप्त 'कमलेश'

कानियाँ सी झूठी, न बात सी मीठी।
बिना मुखड़ा के, 'कमलेश' लगे सीठी।।

हमाऔ ननिआउगे एक गाँव में हतौ। हुनाँ ठेठ बुन्देली बोली, बोली जात्ती। हमाये नाना बब्बा ठेठ बुन्देली में वीरता की ज्ञान–विज्ञान की प्रेम–ब्यौहार की बड़ी नोंनी काँनियाँ सुनाउत्ते। दिन बूड़ौ सोई पुग–गली के मोंड़ी–मोड़ा, जनी मान्स सबरे ब्यारी करकें अलाव पै आ जात्ते। आग सें खूब तपाई होत्ती। बारा बजे नों जड़कारे की गत ऐसे मजे में कट जात्ती कै ठंड को पतोउ नई परत्तो।

आजकाल तो जा टी.वी. संस्कृति ने सब सामाजिकता मटियामेंट कर दई। दिन बूड़े सेंई सबरे टी.वी. से चिपकजात न काउ की हीर पीर की चिंता न काउ की मदद की। अलाय पै, प्रेम–मोहब्बत की, एक दूसरे के दुख–दर्द की सब बातें होत हतीं और पुग–परौसी एक दूसरे के कामें आउत हते। गरीब–अमीर सबकी जाड़े की गतें हँसी–खुशी सें कट जात्तीं।

हाँ तो हमाये नाना बब्बा जो कहाँनियाँ सुनाउत्ते उनके पैलें सुनवे वारिन को अपनी ओर आकर्षित करवे के लाँनें मुग्ध करवे के लानें अतिश्योक्तिपूर्ण, चमत्कार, पूर्ण एक मुखौटा (भूमिका) सुनाउत्ते। जाकों कोउ 'लगाम' कत कोउ 'मुखड़ा' कत। कऊँ कऊँ 'मिर्च–मसालो' नोंन–मिर्च' कई जात है। बिना ई के काँनियाँ में मजा नई आउत है।

एक – काँनियाँ सी झूँठी। न बात सी मीठी।। घरी–घरी कौ विश्राम। जानें सीताराम। शक्कर कौ घोरौ। सकल पारे की लगाम। तापै चढ़ बैठौ बुल बुलिया पठान। हाथ भर के ज्वान, सवा हाथ की दाढ़ी। माटी के बैल, टटेरिन की गाड़ी। मियाँ–बीबी दोऊ जने बैठे चले जात हैं। चलत–चलत महूक की अड़िया में ठेबौ लगत है। जासें नदी निकर परत है। मियाँ–बीबी दोऊ जने वह जात हैं। बहत–बहत कंपू कानपुर के घाट पहुँचत हैं। उनकों पकर लये जात हैं। कैद कर लये जात हैं। मिश्री कौ जेल खानों जलेबियँन के पैकरा लडुअँन की – मारा मार होत है। मियाँ साथ कछू खात हैं। कछू बगरात हैं। खाँतन में उनें बड़ौ कष्ट होत है।

दो – कोंच से शहर में चम्पो भटियारी जाकी – टका–टका भरे की आँख पान खाय तौ– गरे में पीक दिखाय। ककरा मारौ तौ लोहु कढ़ आय। होरी कैसी झाँक–दिवारी कैसौ दिया। नेंनूं कैसौ लोंदा। पूनों कैसौ चंदा। कनेर कैसी डार छरी छुआ देव तौ लोट जाय। लिपट जाय। पलका पै हिरा जाय। तो बारा बरस लों ढूँढ़ें न मिलै। छमक–छमक – चौगहे पै चली जाती है। जाकी बेंदी देखें दस मरें घुँघटा देख पचीस। जने पचासक तब मरें जब तनक उघर जाय पीठ। जाकी इलवानी, सिलवानी बेर घाट कौ पानीं। घोड़ा पियै तो असवार मरै। अस्वार पियैं तो घोड़ा मरै। मरै तो मरै न मरै तौ बीस कोस लों पछम्मों करै। और बाके मर्द की का पूँछियत? बार रखायें। माँग काढ़ें काँनन में मुरकी पैरें। गरे में मोतीं मूँगन की मालां पैरें। गल मुच्छा रखायं। पान खाँयँ। आँखन में सुरमा लगाँय। हातँन में सोने के चूरा पैरें। मिरजई पैरें परधनी पैरें।। झब्बादार पनैंयाँ पैरें। कमर में एक तरफ लोंग लायची कौ बटुआ खोंसें। एक तरफ तरवार डारें। जाकी आठ अंगुल चौड़ी कलाई। और गज भर चौंड़ी छाती। जैसें आला–ऊदल कौ अवतारी होय। जा बुन्देलखण्ड के भटियारी और भटयारे ऐसे होंय ऊकें राजा–रानी और ठाकुर–ठकुरँनँन को का कैवो? न कैवे वारे कों दोष न सुनवे वारे कों दोष, दोष बाकों जानें बात बनाकें ठाड़ी करी।

तीन – चार सखी आपुस में लर बैठीं बोलीं चलौ सखी राजँन–दरवार हम सुकमार कै तुम सुकमार? पहली बोली – "मकरा पूरे मकरी बुनें ताके पैरें मेरौ कूलौ छनें।" दूसरी बोली – "खस–खस कौ दानों नौं, बेर बीनों नौं बेर छानौं, ताकी राँधी मैंने खीर। तोऊ उठी पेट में पीर।।" तीसरी बोलीं – "मेरी परौसिन कूटै धान। झनक परी ती मेरे कान। वा ससरी ने धमके करे। हातँन फफोला मेरें परे।। हम सुकमार कै तुम सुकमार।" चौथी बोली – "देवर घर सें उड़ी पतंग। हवा लगीती मेरे अंग। नंद न देती झपट किवार। तो उड़ जाती कोस हजार। हम सुकमार कै तुम सुकमार। चलौ सखी राजँन दरवार।" सबने कई, हमाई भई हार सबसें जाँदा तुमईं सुकमार। तुमई सुकमार।

– आलमपुर, जिला भिण्ड म.प्र.

□

चौकड़ियाँ

– उमाशंकर खरे 'उमेश'

लखतन सुद बुद बिसरी तन की, का छब बरने उनकी।
नौंनी लगत सलौंनी सूरत, नबल–लाड़ली धन की।।
रुच–रुच रचौ कौन बिधना नें, नजर लगत दरपन की।
कहत 'उमेश' दमक रई दुति जा, उनके गौर बदन की।।

छूतन छुई मुई सीं हो गइं, कछु पीरीं कछु हो गइं।
कनक–लता सी लली–लाड़ली, नब कैं दूनर हो गइं।।
घूंघट पट नटखट ने खोलो, नैनन हूं में खो गइं।
कहत 'उमेश' लाज की मारी, पानी–पानी हो गइं।।

– साकेत नगर, पृथ्वीपुर, जिला टीकमगढ़

बुन्देलों की सैन्य व्यवस्था

- एन.के. जैन

साम्राज्य का स्थायित्व शासक की सैनिक योग्यता के साथ ही उसकी समुचित सैन्य व्यवस्था पर निर्भर करता है। बुन्देलों की सैन्य व्यवस्था और उनके युद्ध के अपने तरीके थे जिससे उन्हें सफलता मिल सकी। मुगलकाल में बुन्देलखण्ड के चार प्रमुख राज्यों ओरछा, चंदेरी, दतिया पन्ना की सैन्य व्यवस्था एक सी ही थी। राजाओं के अन्तर्गत एक बड़ी स्थायी सेना राजधानी में रहती थी। यह युग युद्ध और फौजी चढ़ाइयों का था, जिसमें सैनिकों का महत्व बढ़ गया था। अत: सभी वर्गों के लोग जो अस्त्र–शस्त्र संचालन कर सकते थे, भाड़े के सैनिक बन गये थे।

बुन्देलों की सेनाओं में बुन्देलों के अलावा विभिन्न जातियों और श्रेणियों के लोग रहते थे जैसे धंधेरे, चौहान, चंदेल, पमार, परिहार, बनाफर, गूजर सेंगर भदौरिया, लोधी, बड़गूजर, दसोंधियाँ, खँगार, रावत, बैस गोंड़ दौआ (अहीर) आदि। यहाँ तक कि असैनिक जातियों के सैनिक कायस्थ, चौबे, गहोई, ढीमर छीया आदि को भी इनमें स्थान मिल जाता था। इसके अलावा नागाओं के अखाड़ों के दल भी बुन्देले राजाओं को सहायता प्रदान करते थे–जिसका पता बुन्देलखण्ड में फैले मठों और गढ़ियों से पता चलता है।

दोआव के बंगश पठान भी बुन्देलों को वर्षा समाप्त होने से यमुना पार कर मदद करते थे, छतरपुर से १३ मील दूर उत्तर पूर्व में कुर्रहा छत्रसाल द्वारा प्रदत्त पठानों की जागीर थी, वे बंगश के विरुद्ध छत्रसाल की सेना में लड़े थे।

बुन्देली सेना में मुसलमान सरदार के विभिन्न विवरण मिलते हैं जैसे जैन खाँ, फौजे मियाँ, नाहर खां, अली खां। पराजित मुगल सेना के सैनिक भी बुन्देलों की सेना में मिल पाते हैं, जिनकी निष्ठा पर संदेह नहीं था, उदाहरण के तौर पर छत्रसाल के एक पत्र के अनुसार एक बार जब धामोंनी के फौजदार शेख अफगन ने मउसहानिया पर आक्रमण किया तो छत्रशाल ने उसे पराजित कर दिया। उसकी पराजित फौज के सैनिकों ने जान बचाने के लिये छत्रशाल की सेना में आने की इच्छा प्रकट की। उस पर छत्रसाल अपने पुत्र जगतराज को लिखते हैं। – ''जो फौज ऊकी हती सो गप लई, फौज से कही कि तुम घटियाई तो न करिहौ, तो हम तुमई सबकों मरवा डारें। सबैने इमान दवो फौज रही आई।''

बुन्देलों में अन्य राजपूत सरदारों की तरह आत्म सम्मान की भावना बहुत अधिक थी, वे अपने अक्खड़पन के लिये भी विख्यात थे जैसा कि बुन्देला सरदार चंपतराय का अपमान, औरंगजेब द्वारा होने से वे जीवन पर्यन्त मुगलों से संघर्ष करते रहे, और उसका पुत्र छत्रसाल तो अत्यधिक संघर्षवान रहा।

बुन्देले मैदानी युद्धों की अपेक्षा छापामार युद्ध करने में अधिक कुशल थे, इसे स्थानीय भाषा में 'कंजाकी' कहा जाता था, क्योंकि बुन्देलखण्ड में प्राकृतिक स्थल छिपने के लिये पर्याप्त थे, चम्पतराय, छत्रसाल इसी का फायदा लेते थे।

ओरछा के मधुकर शाह के समय (१५५४–९२ ई.) से लेकर छत्रसाल की मृत्यु (१७३१ ई.) तक बुन्देलों के पास ओरछा ऐरच, झांसी, दतिया, धामोनी, सागर, शाहगढ़ कालिंजर अजयगढ़, जैतपुर, करहरा, कन्हरगढ़ (सेवढ़ा) आदि के किले गढ़ियाँ थीं, ये सब ऊँची पहाड़ियों पर घने जंगलों के बीच होते थे उन्हें चारों ओर समीप की नदी नालों और खाइयों से घेर दिया जाता ताकि उन तक पहुंचना असंभव नही तो बहुत कठिन अवश्य हो जाये।

बुन्देलों के किलों और गढ़ियों की सुरक्षा का भार वहां नियुक्त किलेदार पर होता था, उनका कार्य क्षेत्र में शांति सुरक्षा बनाये रखना होता था, सैन्य दलों का संगठन और नेतृत्व सेना नायक करते थे। राजा सेना का प्रधान सेनापति होता था। हथियार तोप ढालने का कार्य लोहार करते थे। जुझार सिंह के समय झांसी का किलेदार बसंत और छत्रसाल के समय कालिंजर का किलेदार मान्धाता इसके उदाहरण हैं।

बुन्देलखण्ड के बुन्देला राजाओं की सेना में पैदल, घुड़सवार, प्रशिक्षित हाथी और तोपखाने होते थे, पैदल, घुड़सवार तीर कमान, तरकस, ढाल, तलवार नेजा भाला, बर्छी कुल्हाड़ी, बन्दूक गुर्ज, सैहथी, सांग। सैनिक कवच (बख्तर) शिरस्त्राण भी धारण करते थे। हाथी और घोड़ों की रक्षा के लिये उन पर लोहे की जालीदार झूले जैसा कवच पड़ा रहता था जिसे पाखर कहते थे। हाथियों के मस्तक पर तवे भी चढ़े रहते थे। हाथी की सूंढ़ में लोहे की छड़ मारके पकड़ा दी जाती थी। हौदे में सवार राजा, सरदार के लिये अस्त्र शस्त्र रहते थे।

बुन्देले सैनिक अच्छे योद्धा, तीरंदाज, बन्दूकची तोपची भी होते थे। हाथी पर लदीतोप को हथनाल और ऊँटो पर नदी तोप को सुतरनाल कहा जाता था।

बुन्देलखण्ड में बड़ी–बड़ी अष्टधातु की तोपें भी ढलती थीं। उनमें एक–एक मन बारूद भरी जाती थी। उस समय झांसी के किले में बहुत सी तोपें थीं। वीरसिंह के काल की कड़क विजली और ओड़झा के उदोत सिंह के समय की भवानी शंकर तोप आज भी झांसी के किले में हैं। इस भवानी तोप का अभिलेख

इस प्रकार है।

''सरकार श्री राजु उदोत सिंह जू देव तोपभवनी शंकरा सं. १७८१ दारू गोला पे सेटी ११/७१/३ उस्ताद जू राम।

सेवढ़ा के किले में छोटी–बड़ी ५२ तोपें रखी जाती थी। दतिया के किले के प्रवेश द्वार पर राजा पारीक्षित के काल सं. १८८८ की ढली एक बड़ी तोप रखी है। इस तोप का नाम सतंग गर्भछार संभवतः इसलिये रखा गया था कि इसके छड़ाके की आवाज से गर्भवती स्त्रियों के गर्भ गिर जाने की आशंका बनी रहती थी। और जगह जिनमें भगवां (छतरपुर) बिजावर (छतरपुर) में भी किलों में तोपें देखी जा सकती है।

बुन्देले राज्यों के गाँवों चौकियों सीमावर्ती स्थानों में थाने स्थापित किये जाते थे।

सुप्रसिद्ध दतिया के राव दलपत की सेना के बारे में मनूची अपने यात्रा विवरण में लिखता है कि उसकी सेना में १५००० सवार और बहुत से पैदल थे। उन्हें हाथियों को रखने का शौक भी था, उसके दक्षिण में मलावर और श्रीलंका के हाथी खरीदे थे और फिर जिंजी में ही अन्य ८० से भी अधिक हाथी खरीदे थे बुन्देल सैन्य संगठन के बारे में हमें छत्रसाल की सेना के संबंध में अधिक प्रमाणिक और विस्तृत सूचना उनके पन्नों से मिलती है। छत्रसाल की राजधानी पन्ना में २५–३० हजार सेना रहती थी, छत्रसाल के राज्य में चालीस परगने थे, हर परगने में ४००–५०० सैनिक रहते थे। सैनिक चढ़ाइयों में कूच का दिन भी निर्धारित किया जाता था। देवी की बलि चढ़ाने की तथा जादू टोना की भी प्रथायें थीं।

छत्रसाल के हर परगने में एक मुसद्दी होता था इन सब की वेतन उसी परगने की आय से मिलती थी। छत्रसाल के पास मऊ–महेवा में १०० तोपों का एक तोपखाना था, पन्ना में ५० तोपें और मऊ–महेबा में २०–२५ तोपें थीं। छत्रसाल के एक अन्य पत्र के उल्लेखांनुसार सागर अधिकृत कर लेने पर छत्रसाल ने वहां के किले भी सुरक्षा के लिये सात तोपें रखवायी थी और २००० की सेना थी। छत्रसाल की स्थायी सेना में पैदल सेना के सिवा १२००० घुड़सवार भी थे। छत्रसाल के पत्रों के अनुसार कुल मिलाकर उसकी स्थायी सेना में ४१–४२ हजार पैदल १२००० सवार, ३०० छोटी तोपें थी।

छत्रसाल के विश्वस्त सेनापतियों में बलिदीवान, लच्छेरावत, राममणि दौआ, नारायण पवार बागराज परिहार मान्धाता थे।

बुन्देलखण्ड के छत्रसाल और चम्पतराय सहित ओड़झा, चंदेरी, दतिया के राजे रजवाड मुग़लों के मनसबदार रहे थे और उन्हें अपने मनसबों के अनुसार सुसज्जित सेना में पैदल, सवार, बंदूकची, तोपची, भारवाहक पशु आदि रखने पड़ते थे। इससे बुन्देलखण्ड में बुन्देली की सैन्य दलों की संख्या और उनकी सैनिक शक्ति का अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

इस प्रकार बुन्देलों की सेना में यह भी ध्यान रखा जाता है कि कूच के दौरान किसानों की फसलों का नुकसान न हो अगर होता तो उसका ध्यान रखकर उचित मुआबजा दिया जाता था।

संदर्भ :–

१. छत्रप्रकाश

२. वीरचरित्र केशव ग्रन्थ

३. पन्ना रिकार्डस छत्रसाल का हिरदेशाह को पत्र, अन्य छत्रसाल के पत्र, पन्ना रिकार्डस छत्रसाल का पन्ना के फौजदार माधता को पत्र ११मई १७३० छत्रसाल पृ. १३० ए

– सहा. प्राध्या. इतिहास,

महाराजा महा. विद्या., छतरपुर

□

मामुलिया

– डॉ. प्रेमलता नीलम

मामुलिया सी जिन्दगी कहुँ काँटे कहुँ फूल
लें ओ संवार अखीर में, होत सवई सें भूल।।
लइयो–लइयो चमेली के फूल,
सजइयों मोरी मामुलिया,
सज बस्न–बरन सिंगार!
सिरइयों मोरी मामुलिया......
कोंन लगाये बमूला के बिरछा,
और जरिया की डार।
सिरइयो मोरी मामुलिया.......
वन तुलसी गुलवंगा बेला,
जिनने रची कचनार।
सिरइयो मोरी मामुलिया
बालापन के सपने सुहाने,
और अंसुअन की धार।
सिरइयों मोरी मामुलिया.......
निरदई जग जो पीर न जाने,
और निठुर करतार।
सिरइयों मोरी मामुलिया.......
माई बाबुल की देहरी छूटी,
छूटो वीरन नेह अपार।
सिरइयो मोरी मामुलिया........
छूट गई संग की गुइयाँ,
छूटी रार तकरार।
सिरइयो मोरी मामुलिया..........

– एच.२७, समीप लॉ कॉलेज, दमोह म.प्र.

युद्ध संस्कृति की धरोहर वाला क्षेत्र : देवगढ़

– डॉ. श्यामबिहारी श्रीवास्तव

लोक की अवधारणा अनंत है। लोक में घटित घटनाओं, सामयिक परिस्थितियों एवं अंतर्दशाओं के बीच बनते–बिगड़ते लोक संस्कार संस्कृति के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान बनाते रहते हैं। मानवीय क्रियाकलापों में रूप ग्रहण करती लोक संस्कृति क्षेत्रीय विविधताओं के साथ किसी विराट कल्पना से भी अनुस्यूत रहती है। हमारे बुन्देलखण्ड की यह लोक संस्कृति कुछ विशिष्ट स्वरूप वाली रही है। इस विशिष्टता का कारण इस क्षेत्र में होने वाली युद्ध की घटनाएं रहीं है। शक, हूण, कुषाण, गुप्त, नाग, भारशिव, वाकाटक, पमारे चंदेल बुन्देला, मुगल, मराठा, अंग्रेज आदि जातियों और वर्गों की संघर्षपूर्ण घटनाओं ने इतिहास में इस क्षेत्र को कई विशिष्ट नाम भी दिए। चेदि, जुझौति, जेजाकभुक्ति, दशार्ण, बुन्देलखण्ड आदि नाम इस क्षेत्र की संघर्षपूर्ण ऐतिहासिक गतिविधियों के कारण ही हुए। परन्तु इन नामों से भी एक विशिष्ट नाम इस क्षेत्र को पुराणकाल में प्राप्त हुआ। 'विष्णु धर्मोत्तर पुराण' में इस क्षेत्र को 'युद्ध देश' की संज्ञा दी गई है।

"चेदि नैसधयोः पूर्वे, विंध्य क्षेत्रश्च पश्चिमे।
रेवा यमुनयोर्मध्ये, युद्धदेश इतीर्यते।।"

उपर्युक्त श्लोक के अनुसार चेदि और नैषध के पूर्व में, विंध्यक्षेत्र के पश्चिम में एवं रेवा तथा यमुना नदियों के बीच का क्षेत्र 'युद्ध देश' कहा गया है। युद्धों की निरंतरता ने ही इस क्षेत्र को यह नाम दिया होगा। 'जैसा देश वैसा वेश' की कहावत के अनुरूप इस युद्ध देश की संस्कृति को 'युद्ध–संस्कृति' के रूप में चिन्हित करना अत्युक्ति नहीं होगी। लोक संस्कृति को आन्दोलित करने वाले निरंतर होते रहने वाले युद्ध राजाओं और आक्रान्ताओं के लिए भले ही प्रतिष्ठा और पराक्रम के प्रतीक रहे हों, पर सामान्य जन–जीवन इनसे त्रस्त और आतंकित ही रहा होगा।

युद्धों की अधिकता के कारण युद्ध संस्कृति पनपी होगी। युद्ध कलाओं का उत्तरोत्तर विकास किया गया होगा। युद्ध संगीत, युद्ध साहित्य, शस्त्र विद्या, दुर्गनिर्माण कला इसी युद्ध संस्कृति की देन है। वर्तमान समय में युद्धों से संबंधित कलाओं, शस्त्र–अस्त्र विद्याओं, संगीत और साहित्य में युगानुरूप परिवर्तन और विकास कर लिया गया है परन्तु तत्कालीन युद्ध संस्कृति के भौतिक प्रमाण दुर्ग एवं गढ़ियाँ अपने क्षत–विक्षत, विरूपित, खण्डित स्वरूप में हमें आज भी प्राचीन युद्धदेश की युद्ध संस्कृति की याद दिलाने के लिए विद्यमान हैं। बड़े छोटे नगरों में, गांवों के किनारे, बस्ती से हटकर एवं दुर्गम वनांचलों की पहाड़ियों तथा टीलों पर बनाए गए दुर्ग और गढ़ियां शत्रु के अप्रत्याशित आक्रमणों को रोकने और रक्षा करने का काम करते रहे होंगे। एक युद्ध कलाविद का मानना है कि युद्ध की प्राचीर पर बैठा एक धनुर्धर एक सहस्र शत्रुओं पर भारी पड़ता है।

बुन्देलखण्ड में दतिया जिले के अंतर्गत सेंवढ़ा क्षेत्र की एक विशिष्ट पहचान है। इस क्षेत्र ने पुराण काल से ही युद्ध झेले हैं। उत्तर पश्चिम की ओर से आने वाले शत्रु आक्रमणकारियों को रोकने के लिए इस क्षेत्र में सैनिक अभियान होते रहे। विंध्याटवी के इस भूभाग में सैनिक अभियान होते रहे। विंध्याटवीं के इस भूभाग में डेमेट्रियस तथा वसुमित्र के बीच युद्ध हुआ था। वसुमित्र ने डैमेट्रियस की सेनाओं को परास्त कर सिंध नदी के तट पर होने वाले यज्ञ की रक्षा की थी।

दसवीं, ग्यारहवीं शताब्दी में इस क्षेत्र में पमारों का आगमन प्रारंभ हुआ। पमारों ने पवांया को अपनी राजधानी बनाकर सत्ता विस्तार करते हुए एक बड़े भूभाग पर अधिकार कर लिया था। सेंवढ़ा के निकट बेरछा पमारों का एक प्रमुख ठिकाना बन गया था। नाडौल के चौहानों एवं अनहिलबाड़ा के चालुक्यों के दुतरफा आक्रमणों से पमारों के अपने मूल ठिकानों धारानगरी (धार) तथा आबू (राजस्थान) से पैर उखड़ गये थे और वे इस क्षेत्र की ओर आ गए थे। पवाया, कैरुआ, करैरा तथा बेरछा पमारों के गढ़ थे। अपनी सुरक्षा के लिए पमारों ने अनेक किलों और गढ़ियों का निर्माण कर लिया था।

पवाया के पमार राजा पुण्यपाल के चार पुत्र थे – रतनशाह, जैतशाह, शंकरशाह, चंद्रहंस। रतनशाह करैरा, जैतशाह कैरुआ, शंकरशाह बेरछा तथा चंद्रहंस घाटी मयापुर के जागीरदार बनाए गए थे। शंकर शाह के दो पुत्र थे – कनक सेन और रतन सेन। कनक सेन को बेरछा एवं रतनसेन को रतनगढ़ का इलाका दिया गया था। इन रतनसेन ने ही रतनगढ़ का किला बनवाया था जिसे खिलजी शासक अलाउद्दीन ने तेरहवीं शताब्दी में ध्वस्त कर दिया था। इसी किले के ध्वंस पर आज रतनगढ़ वाली माता का प्रसिद्ध मंदिर है।

रतनगढ़ के समीप लगभग पांच किलोमीटर दूरी पर घने जंगल में देवगढ़ का किला है। संभव है यह किला भी बेरछा या पवाया के पमार शासकों ने ही बनवाया हो। कुछ समय पूर्व बुन्देला शोध संस्थान सेंवढ़ा के निदेशक डॉ. सीता किशोर खरे तथा दतिया के डॉ. रामस्वरूप ढेंगुला के साथ देवगढ़ का किला और उसके आसपास के दुर्गम क्षेत्र को देखने का अवसर प्राप्त हुआ था।

ग्वालियर से डबरा होते हुए आएं तो मुख्य सड़क से उतर कर जिगनिया, किटोरा होते हुए १५–२० किलोमीटर कच्चा मार्ग देवगढ़ तक जाता है। किला गांव से लगभग एक किलो मीटर है। यदि ग्वालियर से बेहट होते हुए आएं तो रनगवां मोड़ से दक्षिण की ओर १५–२० किलोमीटर दुर्गम पहाड़ी रास्ता है। गिट्टी और मुरम से एक सड़क इस स्थान के लिए अब बनाई जा रही है। वाहन देवगढ़ के दो किलोमीटर पहले ही छोड़ देने पड़ते हैं। पहाड़ी ढलान के ऊबड़–खाबड़ मार्ग पर पैदल ही देवगढ़ दुर्ग तक जाना पड़ता है। देवगढ़ दुर्ग के पूर्व और दक्षिण ओर की जंगली जमीन पर ग्रामीणों ने थोड़े से खेत बना लिए हैं, पर देख कर ऐसा लगता है कि नाममात्र के इन खेतों की उपज से सालभर की गुजर बसर शायद ही होती हो। अन्य प्रकार की मेहनत मजदूरी करके ही गुजारा होता होगा। विकास योजनाओं के चरण अभी यहां सिर्फ इतने ही पड़े हैं कि एक अदद कच्ची सड़क है टूटी फूटी, बिजली के खंभे और लाइन तो दिखती है पर बिजली कभी नहीं आती। लोग अपनी पिछड़ी विपन्न दशा में भी विवशता भरी संतुष्टि से ग्रस्त हैं। डाकुओं का आतंक लोगों के मन में इस तरह समाया हुआ है कि किसी सिपाही को भी बंदूक लिए देखते हैं तो डाकू की आशंका से थर–थरा कर भागने लगते हैं।

विंध्यपर्वत श्रृंखला की इस उपत्यका में जहां आमखोह हैं, उसी के ठीक सामने लगभग आधा किलोमीटर दूर एक स्वतंत्र पहाड़ी पर देवगढ़ का अजेय दुर्ग बना हुआ है। जिस पहाड़ी पर यह दुर्ग बना है, उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे विधाता ने इस पहाड़ी की रचना देवगढ़ दुर्ग के लिए ही की हो। जितनी लम्बाई, चौड़ाई में पहाड़ी है, किला उतने पूरे क्षेत्रफल में फैला हुआ है। इस दुर्ग की अधिकतम लम्बाई पौन किलोमीटर और अधिकतम चौड़ाई १०० मीटर के लगभग होगी।

देवगढ़ के किले का मुख्य द्वार पश्चिम दिशा में है। पहाड़ी के नीचे से किले तक जाने वाले मार्ग अब पूरी तरह नष्ट हो चुका है। जानवर चराने वालों, शहद, लकड़ी आदि एकत्र करके ले जाने वालों के आवागमन से ऊबड़–खाबड़ पगडंडिया हैं जिनपर उगे झाड़–झंखाड़ आसानी से चलने नहीं देते। पास के खेत में काम कर रहे किटोरा निवासी श्री कुंवरपाल पारदी बड़ी मुश्किल से हमारे मार्गदर्शक बनने को तैयार हुए थे। हमारे साथ बंदूकधारी सुरक्षागार्डों को देखकर उनके घर की स्त्रियों को आशंका हो गई थी कि कहीं ये लोग कुंवरपाल को पकड़कर न ले जायें। हम लोगों के समझाने और विश्वास दिलाने के बाद वे हमें देवगढ़ दुर्ग तक ले चलने को तैयार हो गए थे।

देवगढ़ दुर्ग पर चढ़ने के लिए जहां से पगडंडी शुरू होती है, वहीं नीचे कुछ दूरी पर दो प्राचीन मंदिर हैं। एक मंदिर जानकी जी का है। मंदिर के बाहर एक मढ़ी में दक्षिण मुखी हनुमान की मूर्ति है। निकट पार्श्व में यज्ञवेदी है जो इस बात का प्रतीक है कि कभी वहां किसी ने यज्ञ कराया होगा। जानकी मंदिर की दालान लगभग पच्चीस फुट लम्बी है। दालान में बने गर्भगृह में सिंहासन पर जानकी जी की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इस प्रतिमा के बगल में एक अन्य चतुर्भुजी मूर्ति है जिसकी बांयीं जांघ पर एक नारी मूर्ति है। चतुर्भुजी देव प्रतिमा के एक हाथ में गदा है। गर्भगृह के चारों ओर परिक्रमा बनी हुई है। एक कोठरी भी है। शायद पुजारी के लिए। किन्तु पुजारी वहां रात में रहता नहीं है। पूजा करने के उपरांत गांव चला जाता है। मंदिर की दालान की छत पर जाने के लिए सीढ़ियां हैं। छत लदाव वाली है। छत की मुंडेर की दरार में एक हराभरा तुलसी बिरवा बिना पानी मिट्टी के देखकर आश्चर्य हुआ। दालान की बाहरी दीवाल के ऊपरी भाग में रंगीन तैलचित्र हैं। हाथी तथा मोर पक्षी के चित्र अभी स्पष्ट बने हुए हैं। युद्धों की विभीषिका के समय भी कला और संस्कृति अपना विकास करती रही, मंदिर की दीवार पर बने रंगीन चित्र इस बात का प्रमाण हैं।

देवगढ़ का किला जिस पहाड़ी पर स्थित है, उसकी ऊँचाई लगभग पांच सौ फुट है। पहाड़ी पर चढ़ने के लिए कभी पक्की सड़क बनाई गई थी पर अब उसका अनुमान भर शेष है। जमीन की सतह से १००–१५० फुट ऊँचाई पर एक बावड़ी बनी हुई है जिसमें ऊपर के घाट के लगभग ३० फुट नीचे एक बड़ा दरबाजा है। बावड़ी के इस दरबाजे से किले के ऊपरी भाग तक भीतर ही भीतर एक सुरंगनुमा रास्ता है। संभवत: शत्रुओं के आक्रमण के समय बावड़ी से पानी इसी मार्ग से किले में पहुंचाया जाता रहा होगा। बावड़ी के ऊपरी घाट की बगल में एक समाधि संभवत: राजपरिवार के किसी सदस्य की बनी है। समाधि से करीब १०० फुट ऊपर की ओर एक और दरबाजा है। इस दरबाजे से ऊपर की ओर चूने पत्थर की बनी सड़क दिखती है। जो बीच–बीच में टूट गई है। सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यही सड़क कभी किले के ऊपरी भाग से नीचे तक गई होगी। इस सड़क पर ३० फुट ऊपर चढ़ने के बाद १००–१५० फुट पर तिरछे में एक और दरबाजा है। यहाँ के निर्माणों की शैली से लगता है कि इस दरबाजे पर ड्योढ़ीवान बैठता रहा होगा। यहां से दायीं ओर नक्कारखाना फिर एक दरबाजा है। चारों ओर दालानों के खंडहर हैं। चूने पत्थर की दीवालों के भग्नावशेष दूर–दूर तक फैले हैं।

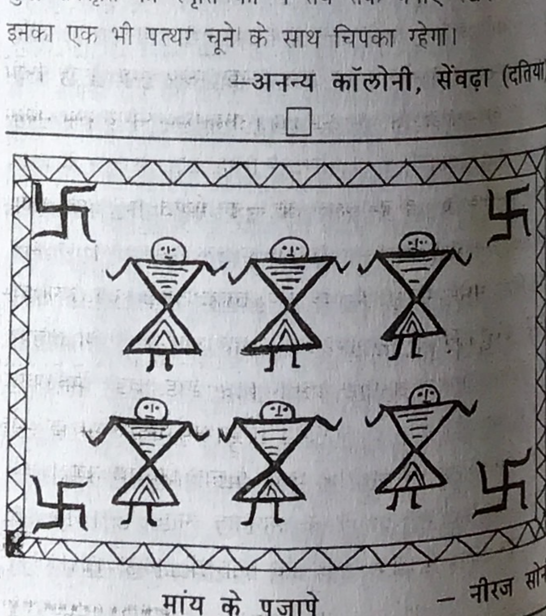
किले के दक्षिण–पश्चिमी छोर पर पहाड़ी के ऊँचे और कम चौड़े भाग पर ऊँची दीवारों से घिरी निरीक्षण चौकी है। इस पर लगभग ५०० सैनिकों के साथ शत्रुओं पर नजर रखने के लिए कोई प्रमुख सरदार रहता होगा। किले के मुख्य द्वार से ऊपर दुर्ग के भीतरी भागों तक पहुंचने के लिए सीढ़ियां भी रहीं होंगी क्योंकि किले के भीतरी निर्माण असमतल पहाड़ी पर हैं। सीढ़ियों वाले मार्ग के ऊपर दो तिरछी मोड़ें पार करने के बाद फिर एक दरबाजा

है जो टूट चुका है। इस दरवाजे के अंदर से देवगढ़ दुर्ग के रनिवास तथा अन्यान्य निर्माणों के अवशेष प्रारंभ हो जाते हैं। कमरों के दरवाजों की चौखटें कटावदार, मोटे लाल पत्थर की हैं। आंगन के चारों ओर दालानें और कमरे हैं इनमें से कुछ टूट रहे हैं, कुछ अभी साबित हैं। छतें पुरानी लदाव शैली की हैं। यह अंतःपुर दो मंजिला बना है। आंगन में एक ओर छत पर जाने के लिए सीढ़ियां हैं जो कमरों की छत से लगी किले की प्राचीर पर भी पहुंचाती हैं। कुछ वर्ष पूर्व इस भवन का उपयोग सशस्त्र पुलिस बल के अस्थायी निवास के रूप में किया जाता रहा है। सैनिकों द्वारा बनाए गए मोर्चे अभी भी हैं। किले की इस पूर्व दिशा की ओर वाली प्राचीर से सिंध नदी का तटीय सौंदर्य, धवा, कैरी, खैर और दक्खिनी बबूल के विरल झाड़ों को यहां से देखा जा सकता है। दूसरी मंजिल के कमरों में मारतोड़ें, बनी हुई हैं जिनसे शत्रुओं पर गोली वर्षा की जाती रही होगी। इस भवन के निकट एक मंदिर में हनुमान की आदम कद प्रतिमा है। मंगल और शनिवार को श्रद्धालु यहां पूजा अर्चना के लिए आते हैं। मंदिर परिसर में एक लम्बी दालान है जो अब टूट रही है। इस मंदिर के पश्चिम तरफ पास ही साठ फुट लम्बा चौड़ा तथा १५ फुट गहरा चूने पत्थर से निर्मित जलाशय है। इस जलाशय में जल एकत्र कर सेना तथा दुर्ग निवासियों के निस्तार के काम में लिया जाता रहा होगा। जलाशय से १०० फुट उत्तर तरफ एक ३० फुट व्यास का विशाल कुआ है। कुएं पर बड़े—बड़े घाट थे। इस कुएं में भौंर मच्छ के बड़े—बड़े बीस—पच्चीस छत्ते लगे हुए हैं जिन्हें देखकर भय लगता है। आसपास विविध वनस्पतियां, कांटेदार झाड़ियां और छोटे—बड़े वृक्ष पनप गये हैं। दुधी वृक्ष भी हैं जिसकी **कोंस से चिपचिपा दूध जैसा सफेद तरल पदार्थ निकलता है।**

पहाड़ी के उत्तर—पश्चिम छोर पर चौड़े भाग में राजनिवास, दरबार हॉल जैसी इमारतें हैं। पहले इन इमारतों का स्वरूप बहुत भव्य रहा होगा। अब ये टूट फूट रही हैं। दुर्ग के इस भाग में संभवतः सर्वाधिक सुंदर भवन थे। प्रवेश द्वार से इस भाग तक की दूरी कम से कम पौन किलोमीटर होगी। राजपरिवार की सुरक्षा की दृष्टि से भी यह स्थान उचित प्रतीत होता है। एक बड़े दरवाजे में से अंदर घुसकर एक विशाल प्रांगण है। प्रांगण के चारों ओर दो मंजिला दालानें और कमरे हैं। ऊपर की मंजिलें ध्वस्त हो रही हैं। पश्चिम की ओर बनी दालानें अभी साबित हैं चूने के प्लास्टर वाली मोटी—मोटी दीवालें अभी ठीक—ठाक हैं। ऊपर की मंजिल पर जाने के लिए सभी कोनों में सीढ़ियां हैं। इस दुर्ग की रचना में एक खास बात यह देखने को मिली कि इस राजनिवास के विशाल आंगन में तीस—चालीस फुट लम्बा—चौड़ा वर्गाकार चबूतरा बना है जिसका उपयोग संभवतः आम सभाओं और समारोहों के लिए किया जाता रहा होगा। इस भाग के राजनिवास होने की पुष्टि इन भवनों के पार्श्व में बने बुर्जों के ऊपर रखी विशाल तोपों से होती है। राजनिवास के पश्चिम पार्श्व में लगभग सात फुट लम्बी एवं तीन फुट व्यास की एक तोप है जिसका निशाना ग्वालियर की ओर है। इस तोप से लगभग २०० फुट दूर दक्षिण ओर एक दूसरी तोप लगभग सोलह फुट लम्बी एवं सात फुट व्यास वाली है। इस तोप का निशाना दक्षिण—पश्चिम दिशा में नरवर की ओर है। संभावना है कि इस दुर्ग पर और भी कई छोटी—बड़ी तोपें रही होंगीं जिन्हें यहां से अन्यत्र ले जाकर बेच दिया गया होगा। वर्तमान समय में ग्वालियर, झांसी जैसे राष्ट्रीय पुरातात्विक संरक्षण वाले दुर्गों में ही इस प्रकार की विशाल तोपों के नमूने शेष बचे हैं। अन्य अधिकांश दुर्गों की तोपें काट—काट कर बेंच डाली गईं। दुर्ग भी धीरे—धीरे ढहा दिए गए और युद्ध संस्कृति की धरोहरों को नष्ट कर दिया गया। अष्टधातु की बनी ये वजनदार तोपें ढालने वाले कारीगर उस राजाशाही जमाने में इस इलाके में थे। पुराने सेंवढ़ा के शीतलामाता और अलीखेरे के आसपास जले हुए लौह अयस्क के ढेर इस बात की पुष्टि करते हैं कि यहां कभी तोपें ढालने का काम होता रहा होगा। देवगढ़ का किला दुर्गम चढ़ाई वाला है। चारों ओर सीधी खड़ी पहाड़ी पांच सौ फुट ऊँची। फिर उसके ऊपर पचास फुट ऊँची दुर्ग की प्राचीर दुर्लंघ्य है। दुर्गमता के कारण ही संभवतः यहां ये दो विशाल तोपें अभी बची हुई हैं। इन पर काटने के निशान बने हैं पर इन्हें चोर काट नहीं पाए।

घने जंगलों और पहाड़ियों में बने देवगढ़ के किले में पमार शासकों को शत्रुओं से सतत सावधान रहना पड़ता होगा। इस दुर्ग पर मंदिर, मजार, जलाशय, कुआ आदि आस्था एवं जीवन रक्षा के लिए सभी उपाय किए गए थे परन्तु विलासिता और मनोरंजन **के प्रतीक चिन्हों का कोई अवशेष यहां नहीं पाया गया। इन** किलों की अब न कोई उपयोगिता रह गई है और न इनसे कोई काम सध रहा है। इसी से सतत् उपेक्षित ये किले अब नष्ट हो रहे हैं परन्तु युद्ध संस्कृति की स्मृति को ये तब तक बनाए रखेंगे जब तक इनका एक भी पत्थर चूने के साथ चिपका रहेगा।

—अनन्य कॉलोनी, सेंवढ़ा (दतिया)



मांय के पुजापे — नीरज सोनी

बुन्देली बाल मनोरंजन

– घनश्याम कश्यप

भारत के धड़कते हृदय में पसरी लोक संस्कृति की बोली है – बुन्देली। लगभग तीन करोड़ लोग इसे बोलते हैं। बुन्देली जनता हँसमुख, मेहनती और स्वाभिमानी है। दिल्ली की बड़ी हुकूमतें भी इसे नहीं झुका सकीं। पिछला इतिहास और वर्तमान राजनीति इसकी गवाह है। झांसी, जबलपुर, सागर जैसे शहरों में यदि कोई बाहरी भाषा में रौब झाड़े, तो वहां के लोग बन्देली में बेखौफ कह देते हैं – ''महराज, गिटिर पिटिर तौ बोलो जिनों, नौने नौने कओ अपुन कन का चाउत। इस बोली के संस्कार बच्चों को जन्म से ही मिलते हैं। तब उनकी शारीरिक शक्ति नगण्य होती है। भाषिक क्षमता रोते तक सीमित रहता है। बालानां रोदनं बलम्। नवजात शिशु का रोना मंगल सूचक होता है। इस पर स्त्रियाँ सरियाँ (सोहर) गाती हैं – मोरे डरे डरे कहराय, कनैया जू भौं में डरे। ऐसे मंगल गीत, लोरियाँ माँ का दुलार और परिजनों के प्यार भरे बोल नवजात शिशु के अवचेतन में समाकर उसके सकारात्मक व्यक्तित्व की नींव रखते हैं। मनोविज्ञान बाल विकास में शैशव, लड़कपन और किशोर वय के तीन सोपान बताता है। नवजात शिशु कपड़ों में लिपटा टुकुर–टुकुर देखता है या सोता है। भूख या असुविधा की स्थिति में वह रोता है। दो वर्षों में वह बोलना शुरू करता है। चार पांच वर्षों में शैशव लड़कपन में बदल जाता है। इस बीच बच्चे में बोलने, चलने, फिरने, परिजनों के पहचानने और **परिवेश को समझने की शक्तियां तेजी से बढ़ती हैं।**

शुरू से ही परिवार में बच्चे पर लाड़–दुलार की वर्षा होती है और उसे खुश रखने के लिए मनोरंजक क्रियाकलाप, खेल आदि आयोजित किए जाते हैं। इनसे बुन्देली लोक संस्कृति की अलग पहचान बनती है। यद्यपि बुन्देली लोक साहित्य का संकलन और प्रकाशन पिछले दशकों में हुआ है, किन्तु बच्चों को गुदगुदाने वाले बुन्देली गीतों, रोचक लोक–कथाओं और बच्चों के खेलों का लिपिबद्ध किया जाना शेष है। आधुनिकता की नजर लगने से, यह सरस सामग्री कहीं लुप्त न हो जाए, इसलिए कुछ उदाहरण यहाँ लिपिबद्ध किए जा रहे हैं। चार–पाँच महीनों का बच्चा जब हँसकर, मुस्कुराकर, हाथ पैर चलाकर अपनी प्रतिक्रिया करने लगता है, तो माँ तथा परिजन उसका ध्यान आकृष्ट करने के लिए कई उपाय करते हैं। वे पुचकारते हैं, गुद–गुदाते हैं, उसके सामने चुटकियाँ, तालियाँ झुनझुना बजाते हैं, उसे 'राजा भैया', 'बिन्नू राजा' कहकर बुलाते हैं और 'अई ता ऽ ऽ' का खेल उसके साथ खेलते हैं। 'अई ता' कहकर माँ बच्चे की निगाह से दूर हटती है और फिर 'अई ता' कहकर बच्चे के सामने आ जाती है। ऐसा ही अन्य परिजन करते हैं। इससे बच्चा हँसता है और हाथ पैर चलाता है।

'फुल्ल मठा', 'थाई थाई', 'कोंड़ी के रे', 'अटकन चटकन' आदि खेलों से बच्चों का खूब मनोरंजन होता है। इनमें से दो एक खेलों का खुलासा करना प्रासंगिक है। पहले 'फुल्ल मठा' यह मठा भाने की क्रिया का अनुकरण है। इसमें बच्चे को खड़ाकर उसके दोनों हाथ पकड़कर, आगे पीछे कर कहते हैं –

फुल्लक फुल्लक दूद मठा, सेरक दूद पसेरक पानी,
दई कौ लौंदा खाय जिठानी, फुल्ल मठा, अई फुल्ल मठा।

ऐसे लयात्मक बोल सुनता, हिलता–डुलता बच्चा खुशी से दुहरा हो–हो जाता है। खूब–हँसता, खिलखिलाता है। अब 'थाँई थाई थपरी' का खेल। यह खेल खिलाने वाला बच्चे का हाथ थाम, हथेली पर दूसरे हाथ से थपकियाँ देता है। फिर वह बच्चे की बाँह पर दो उंगलियाँ चलाता, डूड़े बैल की चाल बताता हुआ उसकी काँख में गुदगुदाता है। बीच में बच्चे की हथेली पर बुढ़िया की गिरस्ती के सामान रखे हुए बताए जाते हैं और उसकी एक एक उंगली पकड़कर बच्चे के प्रियजनों के नाम पूछे– बताए जाते हैं। इस खेल के लयात्मक बुन्देली बोल इस प्रकार हैं –

थाई थाई थपरी। गैया ब्यानी कबरी।
बच्छा भऔ सेत। नाव धरौ गनेस।
इतै डुकरिया चकिया धरै। इतै डुकरिया चूली धरै। इतै पानी भरै। इतै बैठे–परै।
जा उँगरिया की की? जा मम्मी की। जा की की? जा पापा की।
जा उंगरिया की की? जा भैया की। जा की की? जा कक्का की।
(अँगूठा पकड़ कर कहते हैं) जो गैया को खूंटो। माझ कौ चंदा मुन्ना राजा कौ।
(अब डूड़े बैल की यात्रा) डुकरो अपने भाँड़े–कूँड़े समारियो। डूँडा आउत हैं। डूडा बैल पाट की छड़ी। चल मोरे डूँड़ा रात भई। चल मोरे डूँड़ा पारइ पारें।
तो खों देऊँ खरी–बिनौरा। तोरे धनी खों गुरधानी। औं कुलकुल–कुल कुल।
काँख में कुदा गुदाने (कुलकुलाने) पर बच्चा खूब खिलखिलाता है। वह फिर इस खेल की फरमाइश करता है। भरपूर बाल मनोरंजन।

लड़कपन की सीढ़ी चढ़ते बच्चों को खूब रिझाता है 'कौड़ी के रे' खेल, जो संपूर्ण बुन्देलखण्ड में प्रचलित है। इसके बोल भी देखिये।

कौंड़ी के रे, कौंड़ी के रे। पाँव पसेरी के रे।

उड़ गए तीतुर, बस गई मोर। सरीं डुकरिया लै गए चोर।
चोरन के घर खेती पाती। भई डुकरिया मौटी–ताजी।
मन मन पीसै, मन मन खाय। बड़े गुरु सों जूजन जाय।
जूज–जूज कें छपन छुरी।
गोरे हैं गुरयान जी। कारे हैं कलयान जी।
भैंस कौ सींग पोलो है। पत्ताल कौ पानी डोलो है।
राजा कौ बेटा, भंडारी कौ नाती, ब्याउन जात है, चलाउन जात है।
छींकै ऊकी नाक कटै। पादै ऊ के पौंद कटैं। औं धूतू–तूतू...
धूतूतूतू...तूऊ।

खटिया पर लेटे बूढ़े बब्बा भी अपने पैरों के पंजों पर झुलाते नन्हें को, उसके विवाह में स्वयं रमतूला बन जाने के लिए 'धूतूतूतू' करते हुए, मानो स्वप्न लोक में जा पहुंचते हैं। कैसा सपनीला है यह बुन्देली बाल मनोरंजन। पांच वर्षों का बाल विकास रोज सपने सजाने और उन्हें साकार होते देखने का सुहाना सफर है। जसोदा मैया अपने कंचन महल में इसकी साक्षी बनी थी, तो बुन्देलखंड की ललकौरी वधू अपने गोबर लिपे गरीब आँगन में धन्य होती है। घर में नए सदस्य के आने की आहट से ही ऐसे सपने, समारोह बन जाते हैं जब ढोलक पर 'अरगन्ने' के ऐसे लोक गीत गूँजते हैं।

अँगना में हरी हरी दूबा घिनौचिन केवड़ा महराज।
पहले पहर कौ सपनो सुनौ मोरी सास जूं महराज।

बच्चों के खिलौनों का विवरण देते ये बुन्देली बोल भी कम मनोरंजक नहीं।

चटकौआ लै लो आई बंजारिन बड़ी दूर से।
ना कोउ लेवे बाँझ बँझोटी लेवै कोउ लरकौरी। चटकौआ लेलो...!

काहे खों रोबै राजा मुन्ना, सबेरे खुनखुनियाँ मँगादेऊँ तोय!
अपने गुपाल जी खो झूला डार झुलाउंगी।
जब मेरौ कान्ह खिलौना मागै,
चकरी, भौंग औ चटकउआ, चन्द्र खिलौना ला दऊँगी! अपने....!

'चटकौआ', 'खुनखुनियाँ' जैसे खास बुन्देली और सस्ते खिलौने, बच्चों को रिझाने के लिए।

लड़के लड़कियों के ५–१२ वर्षों के आयु वर्ग अर्थात् लड़कपन के खेलों के नाम–रूप बदल कर, चाँइ–माँई, आँख मिचौनी, छुआ–छाई, लँगड़ी, कबड्डी, गिल्ली डंडा, गुलाम डंडा, आलम कोड़ा आदि बन जाते हैं। टेलीविजन प्रसारणों से क्रिकेट खेल बुन्देली शहरों से अब कस्बों गाँवों में भी पहुंच गया है। झांसी के ध्यानचंद्र–रूपसिंह के हॉकी खेल ने कभी बर्लिन ओलंपिक में धूम मचाई थी। ऐसे तमाम खेल बिना परिजनों की सहायता के, बच्चे चार–छः या अधिक खिलाड़ियों के साथ, समूह बनाकर खेलते हैं। लड़कपन की ऐसी बाल क्रीड़ाएं कुछ बारहमांसी होती है तो कुछ मौसमी। चपेटा, नौरता, सुआटा, ढिरिया, साँझी आदि लड़कियों के खेल हैं। जन्माष्टमी गणेशोत्सव में लड़के–लड़कियां सजाने में पूरा उत्साह दिखाते हैं। नौरता–सुआटा में रंगबिरंगे चौक पूरने में लड़कियाँ अपनी कला–प्रियता का खूब परिचय देती है। 'गौर की झाँई' दिखाती वे अपने हास–परिहास का परिचय देती है; जब गाती हैं –

पराई गौर की झाँई देखों – नाक नकटी देखों कान बूचे देखों।

इसी तरह 'गौर कौ पेट पिरानों – हप्पूँ' कार्यक्रम भी हास्य रस से सराबोर रहता है। लड़कियों की सृजनात्मकता पुतरा–पुतरियाँ बनाने में खूब निखरती है। उनका भावात्मक लभाव इन सलौनी पुतरियों के प्रति कैसा होता है? एक बुन्देली किशोरी विवाह के बाद ससुराल जाते हुए, अपने परिजनों को संदेशा भेजती है –

हमारे खेलत की चिकन पुतरियाँ, नदिया में दीजौ सिराय।

कितना आत्मीय और सम्मानपूर्ण विसर्जन।

कथा कहानियों की चर्चा के बिना बाल मनोरंजन का यह लेख अधूरा ही रहेगा। अतः संक्षेप में इनकी भी चर्चा। बुन्देली लोकांचल कथा–कहानियों की खान है। पशु–पक्षियों की, परियों की, राजाओं की, जादूगरों की, जन साधारण की अनगिनत लोक–कथाएँ, बाल मनोरंजन में सर्वाधिक योगदान करती है। दादी नानी की कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। गाँवों की अथाइयों पर तो रात में कहानियों की झड़ी लगती है। इनका संकलन हो सके तो कई 'पंचतंत्र' बने। बानगी के लिए दो बुन्देली लोक कथाएँ प्रस्तुत हैं।

एक लड़इया और ऊँट

ऐसें ऐसें एक डाँग में एक लड़इया हतौ। ऊने बमूरा की पत्ती चरत एक ऊँट देखौ। ऊके पास जाकें लड़इया बोलो–दाऊ राम–राम। ऊँट ने बलबला कें 'राम–राम' करी। धीरें–धीरें दोई दोस्त बन गए। एक दिना लड़इया ने ऊँट के पास जाकें डकार लई 'ओइ हाँ'। फिर कन लगौ–दाऊ आज खूब डँगरा चीमरी (खरबूजा) खाए, सो अफरा चढ़ रऔ। ऊँट कन लगौ – भैया, चीमरी खूब मीठी होतीं। हमें सोऊ खाने। लड़इया बोलो–दाऊ, आजइ राते चलौ, गाँव के लिगा कछवारी में। मन भर के खइयौ। रात खों दोई कछवारी में घुसे और डँगरा–चीमरी खान लगे। लड़इया जल्दी अफर गऔ औ बायरें कढ़ कें 'हुआ–हुआ' करन लगौ। ईसें रखनवारे जग गए औ लट्ट लें के दौरे। उनने उजार कर रए ऊँट खों खूब लट्ट दए। कुटत कुटत ऊँट डाँग खों भगौ। दूसरे दिना जब लड़इया मिलौ तौ ऊँट बोलो–लड़इया ससुर! तैनें 'हुआ–हुआ' करकें हमें कुटवा डारौ। अब दोस्ती खतम।

दो : दो मल्ल और करामाती डुकरिया

एक समै की बात है। पूरब और पच्छिम के दो नामी मल्ल हते। उनको डीलडौल हातियन कैसौ और दाव–पेंचन में दोउ उस्ताज। उने अपनी पैलवानी कौ घमंड हतौ। एक बेर दोउ मिले

तो कन लगे – आज ईको फैसला हो जाय कै हम दोउन में सें बड़ौ पैलवान को है। अब गैल में कऊँ अखाड़ौ तो हतौ नइ, सो दोऊ मल्ल पास के गाँव में गए। उतै उने एक सरी सी डुकरिया रँटा (चरखा) कातत दिखानी। ऊखों मल्लन ने सब बातें बताईं। डुकरो बोली के ई गाँव में अखाड़ौ काँ से आओ, पै तुम चाओ तो हमाए हात की मुलाम गदिया पै कुस्ती लड़ लो। दोऊ मल्ल डुकरो कौ मौं देखन लगे। तबई डुकरो ने अपनी गदिया सामने फैलाई। वा फैल कें ऐसी बड़ी हो गई, कै ऊपै चड़े मल्ल चिंटा, से दिखायँ। वे कुस्ती में भिड़े, सोउ डुकरो ने अपनी मुठी बंद कर लई। फिर डुकरिया कॉन लगी – भइया कुस्ती में को जीतौ। मुठी में चपै दोउ मल्ल हाहा–थराई, करन लगे और बोले – डुकरो माता, हम दोई मल्ल हारे औ तुम जीतीं। तुमाई करामात से हमाऔ घमंड चूर हो गऔ। अब हमाए प्रान वचन देओ। डुकरो ने मुठी खोली तौ दोऊ मल्ल चुट्टी दे कें भगे। कानिया हती सो पूरी हो गई।

विस्तारभय से लेख में कहानियों के उदाहरणों का सार प्रस्तुत किया गया है। कहानी सुनानेवाले तो उनमें नमकमिर्च मिला ऐसा मिठास पैदा करते हैं कि लंबी होती कहानियाँ भी श्रोताओं को थकाती नहीं। स्थानीय जन समाज से जुड़ी बोली का मिठास ऐसा होता है कि महाकवि विद्यापति जैसे संस्कृत के पंडित को कहना पड़ा था – देसिल बयना सब जन मिट्ठा। बुन्देली बोली में समायी माटी की सुगंध से महकती लोक कथाएँ बाल क्रीड़ाएँ और बाल गीत पूरे बुन्देलखण्ड के बाल जगत में खूब लोकप्रिय हैं।

अन्त में बाल मनोरंजन के निहितार्थों का थोड़ा खुलासा और। मनोरंजन की यह सामग्री बच्चों को अपने प्राकृतिक परिवेश से जोड़ती है। मोर, तीतर, लड़इया, ऊँट, बबूल, डॉग, कछयारी, डँगरा चीमरी आदि का परिचय बच्चे हँसते–खेलते पा लेते हैं। लोक संगीत, कहानियाँ, कानातें, पहेली बुझौअल आदि लोक तत्व बच्चों के भावात्मक और बौद्धिक विकास में सहायक बन उन्हें संतुलित व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। अनेक पीढ़ियों के सुदीर्घ अनुभव से विकसे बाल मनोरंजन के क्रियाकलाप व्यावहारिक मनोविज्ञान पर आधारित हैं। इनसे बच्चों का शारीरिक, भाषिक और सर्वांगीण विकास सहज और सुनिश्चित होता है। बचपन में खेल खेल में सामाजिक संस्कारों और जीवन के कार्यव्यापारों की समझ से बच्चों की भावी जीवन–यात्रा सुगम बनती है। विवाह में रमतूला बजने, गैया के बछड़े होने, मठा भाँने, कछवारी में खरबूजे लगने, धोखेबाज मित्र की करतूत से दोस्ती खतम होने जैसे कार्य व्यापार बच्चों की जिज्ञासा, कुतूहल, समझ आदि आन्तरिक शक्तियों का पोषण करते हैं। जीवन मूल्यों के अंकुरण की क्रिया की तलाश भी बाल मनोरंजन के क्रियाकलापों में की जा सकती है। ऐसे तमाम तत्व बुन्देली लोक संस्कृति की पहचान में सहायक हैं।

– ४२, खेड़ापति कॉलोनी, ग्वालियर म.प्र.

□

कछु तो बोलो प्यारे लाल

– दिनकर राव 'दिनकर'

कोने कर दय ऐसें हाल,
कछु तो बोलो प्यारे लाल।
करिया पर गये गोरे गाल,
कछु तो बोलो प्यारे लाल।।

लोक गज सहनाई बजी हे,
बंसवाद की मोर नची हे।
चौतरफा अब मचो हे सोर,
कुरसी चंदा नेता चकोर।।

आदरसों को परो अकाल, कछु तो बोलो प्यारे लाल।
अनीत की गोदी खेले नीति,
दुर्योधन ने बाजी–जीती।
गाँव गली में भए दुशासन,
सेवाधरम के फूटे बासन।
कोन बरन को आ गओ काल, कछु तो बोलो प्यारे लाल।

चोरों की अब तकदीर खुली,
सत्ता सुख की जागीर मिली।
चित्त भी उनकी पट्ट भी उनकी,
खेली चौपर अपने मन–की।

भए फकीरे मालामाल, कछु तो बोलो प्यारे लाल।
गाँव शहर विकास की गंगा,
समरथ बोलें हर हर गंगा।
सुख सुविधा के डरे हैं झूला,
धरे सुदामा जरो न चूल्हा।
खुशहाली की उड़ी गुलाल, कछु तो बोलो प्यारे लाल।

ऐसीं कैसी करी दवाई,
आगी सें अब आग बुझाई।
आखें जैसें भरे तबेला,
गाँठ में नहियाँ एकऊ धेला।

महंगाई ने खेचीं खाल, कछु तो बोलो प्यारे लाल।
कोन कोन को करें बखान,
एक दुकान को सब सामान
भाँत–भाँत के लगा मुखौटा,
बिन पेंदी के नचे हें लोटा।
देसी गाना बिदेसी ताल, कछु तो बोलो प्यारे लाल।

कैसें अपने भाग खुले हैं,
सुआ घोंसुआ बाज मिले हैं।
जिन खों समझो जीवन दाता,
प्रान हरन के लगें विधाता।

बन गए उत्तर आज सवाल, कछु तो बोलो प्यारे लाल।

–सागर □

बुंदेलखंड के लोकधर्म में देववाद – एक दार्शनिक अवलोकन

– विवेक निधि घोष

लोक का दर्शन मूल रूप से आध्यात्मिक है। आदिकाल से वर्तमान तक लोक के वैचारिक सोच में धार्मिक विचारों का स्थान सदा से सर्वोपरि रहा है। बुंदेलखंड का लोकचिंतन धर्म से प्रभावित ही नहीं अपितु प्रेरित भी है। यहाँ का धार्मिक इतिहास धर्म की विविधताओं से भरा हुआ है। यहाँ के लोगों की धर्मभावना, भूतवाद, बहुदेववाद, एकेश्वरवाद, और सर्वेश्वरवाद तक विकसित हुई। एक ओर तो लोकजीवन में धर्म की दार्शनिकता को अपनाकर जीवन के साथ अविच्छिन्न संबंध स्थापित किया गया तो दूसरी ओर आध्यात्मिकता की भावना का उदय हुआ।

धर्म की धारणा के अंतर्गत लोक उन सब अनुष्ठानों और गतिविधियों को ले आता है जो मानवीय जीवन को गढ़ती और बनाए रखती है। हमारे प्रथक–प्रथक हित होते हैं, विभिन्न इच्छाएं होती हैं और विरोधी आवश्यकताएँ होती हैं, जो बढ़ती हैं और बढ़ने की दिशा में परिवर्तित भी हो जाती हैं। उन सबको घेरकर एक समूचे रूप में प्रस्तुत कर देना धर्म का प्रयोजन है।

लोकमानस में गतिमाह विचार प्रक्रिया के बिखरे हुए प्रत्ययों में भी एक क्रम है और यही क्रम लोक–चिन्तन को को लोक दर्शन में परिवर्तित करता है। लोकमन के समन्वयकारी पक्ष नें उसमें अद्‌भुत एकरूपता स्थापित की है। उदाहरण के तौर पर लोक के ईश्वर विचार में ही ब्रह्म (अद्वैत) की अवधारणा का भी महत्वपूर्ण स्थान है। वह जगत की व्याख्या जगत को नश्वर मानकर करता है किंतु अपने जगत में ही शास्वत नैतिक नियमों को उपस्थित मानता है। यह अपने कर्मफल सिद्धान्त में स्वर्ग एवं नर्क जैसे लोगों की कल्पना तो स्वीकार करता है किंतु कहीं–कहीं जीवन में ही कर्मफल मिल जाने की भावना से भी प्रभावित है। लोक मस्तिष्क प्राचीन परंपरा से ही सर्वोपरि परब्रह्म, जीवन के उद्देश्य और मनुष्य का ईश्वर के साथ संबंध आदि प्रश्नों के समाधान में परिश्रमपूर्वक लगा रहा है। लोक की दार्शनिक मान्यताओं में कोई भी शिक्षा ऐसी नहीं है। जो केवल एक मौखिक शब्द या सम्प्रदायगत रूढ़ि मात्र बनकर रह गई हो। प्रत्येक सिद्धान्त को एक ऐसी ओजस्वी श्रद्धा के रूप में जीवन में स्वीकार कर लिया गया जिसने मनुष्य के हृदय को उद्वेलित किया और उसे चैतन्य से परिपूर्ण कर दिया।

बुंदेली लोक दर्शन का विस्मयकारी पक्ष उसका बहुदेववादी स्वरूप है। अनेक देवताओं का नाम और उनकी पूजा का विधान यहां हमें मिलता है। मानव मस्तिष्क में ईश्वर का प्रत्यय कैसे अथवा कहाँ से आया यह प्रश्न तो अनुत्तरित है तथापि हम कह सकते हैं कि ईश्वर की अवधारणा हमारे ज्ञान की सीमाओं का परिचायक है। आदिकालीन मानव की श्रद्धा उसकी भयपूर्ण अभिव्यक्ति थी। प्राकृतिक प्रकोपों के भय ने एक नए विचार को जन्म दिया जिसे हम प्राकृतिक बहुदेववाद की संज्ञा दे सकते हैं।

यहां प्राकृतिक बहुदेववाद शब्द के विषय में विचार करना आवश्यक है। विचारधारा के इतिहास में प्रारंभ नामक कोई विषय नहीं होता इसलिए कहीं न कहीं से तो हमें चलना ही होता है। चूंकि लोक ने सर्व प्रथम प्राकृतिक शक्तियों के साथ साम्य स्थापित किया अतः हम भी वहीं से विचार करना प्रारंभ कर सकते हैं। प्राचीनतम लोकमानस ने प्राकृतिक दृश्यों को ऐसे प्रगाढ़ मनोभा और कल्पनाशक्ति के द्वारा देखा कि वे उसे आत्मा की भावन परिपूर्ण प्रतीत होने लगे। वह प्रकृति विज्ञान से अनभिज्ञ था अस्तु। उसके लिए प्रकृति एक जीवित सत्ता थी जिसके साथ वह प्रेम संबंध जोड़ सकता था। प्रकृति के कुछ उज्जवल स्वरूप एक प्रकार से द्युलोक के ऐसे झरोखे थे जिसमें से दैवी शक्ति नीचे के ईश्वर विहीन जगत को झांकती–सी प्रतीत होती थी। सूर्योदय और सूर्यास्त के अद्‌भुत दृश्य दोनों ही ऐसी रहस्यमयी प्राकृतिक घटनायें हैं जिन्होंने आत्मा को प्रकृति के साथ जोड़ दिया। चांद और तारे अगाध समुद्र और अनंत आकाश इन सबको दैवी घटना समझा जाने लगा। लोक की देवत्व की अवधारणा का प्रारंभिक स्वरूप इसी प्रकार की प्रकृति पूजा था।

लोक का मन भौतिक जगत की अस्तव्यस्तता को मानने तैयार नहीं होता। हम किसी न किसी प्रकार से भौतिक जगत को समझने की कोशिश करते हैं और जीवन के विषय में एक न एक सिद्धान्त भी स्थिर कर लेते हैं। हम सब बातों की व्याख्या अपने स्वभाव की उपमा से ही करते हैं और इसीलिए सब घटनाओं की पृष्ठभूमि में भी इच्छाशक्ति का होना यथार्थ रूप में मान लेते हैं। यह एक प्रकार का बहुदेववाद है जिसमें विलक्षण भौतिक घटनाओं को दैवीय घटनाबों का रूप दे दिया जाता है। लोकदर्शन में हम प्राकृतिक देवताओं को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम सामान्य प्रकृतिपरक देव यथा – वृक्ष, भूमि, पर्वत, नदी, पवन, सूर्य एवं चंद्र आदि एवं द्वितीय श्रेणी में हम अनिष्टकारी प्राकृतिक शक्तियों को रखते हैं यथा–अग्नि, सर्प, आंधी इत्यादि। बुंदेलखंड में कृषि युग में पुलिंद एवं शबरों की मातृदेवी एवं भूदेवी की पूजा प्राकृतिक शक्तियों के प्रति श्रद्धा का एक अनूठा उदाहरण है।

देवत्व की अवधारणा की द्वितीय मानसिक अवस्था अवतारवाद है। लोक ने अपने ही समान देवों की सृष्टि करना

प्रारंभ किया और ईश्वर के मानवीय रूप को स्वीकार किया। लोक ने अवतारवाद को लोकआदर्श के रूप में स्वीकार किया एवं अपने आदर्श को अवतरित मानकर भक्तिपूर्ण सम्मान दिया। राम एवं कृष्ण की लोकप्रियता इसका अद्भुत उदाहरण है। रामायण नामक महाकाव्य के नायक राम को जो धर्म का आदर्श और पूर्णता का उदाहरण है, लोक नें विष्णु का अवतार बना दिया जिसने उस पृथ्वी पर अधर्म को मिटाने तथा धर्म को प्रतिष्ठित करने के लिए शरीर धारण किया। इसी प्रकार महाभारत के महानायक कृष्ण को भी लोक ने अपनी अवतारवादी परंपरा में स्थान दिया। यही बात हमें लोक में व्याप्त बुद्ध एवं महावीर के प्रति आस्था में मिलती है। यद्यपि स्वयं महावीर एवं बुद्ध अपने आप को अवतारवाद की इस परंपरा से नहीं जोड़ते तथापित लोक की अपनी अलग मान्यताऐं हैं और इसका कारण दार्शनिक कम मनोवैज्ञानिक ज्यादा प्रतीत होता है।

लोक में प्रचलित देवत्व की अवधारणा की एक और अवस्था है जिसे हम सामान्य बहुदेववाद कह सकते हैं मनोवैज्ञानिक रूप से बहुदेववाद हमारी उपयोगितावादी मानसिक वृत्ति से प्रेरित एक सिद्धान्त है। सामान्य मानसिक तुष्टि को प्राप्त करने की लालसा लोक को सदा से ही चमत्कार प्रधान एवं रहस्यमय दैवी घटनाओं पर विश्वास करने को बाध्य करती रही है। लोक के देवत्व की अवधारणा की तुलना हम एक और दार्शनिक सिद्धान्त से कर सकते हैं वह सिद्धान्त है धार्मिक प्रतीक। प्रत्येक लोक देवता किसी न किसी लोक भावना से संबंधित है और ये प्रतीक हर युग में लोकमन के अनुसार बदलते रहे। लोक की देवत्व की अवधारणा वस्तुतः लोकहित से जुड़ी हुई है। लोक नें अपनी सुविधा के अनुसार अनेकों लोकदेवों पर अपनी आस्था व्यक्त की यथा – वृक्ष, भूमि, नदी, सूर्य, चंद्र, अग्नि, बड़ादेव, ठाकुरदेव, गांव की देवी, मिडोइया (खेत की मेड़ के देवता), घटोइया (घाट के देवता), कारस देव, ग्वालबाबा, नट बाबा, गुरैया देव, मसान बाबा, शीतलामाता, मरई माता, दूलादेव, हरदौल, गोसाई बाबू, सप्त मात्रकाऐं मनियांदेवी, यक्ष, नाग आदि।

इन लोक देवताओं में कुछ तो इतिहास प्रसिद्ध पुरुष है जो देवतुल्य पूजे जाते हैं जैसे ओरछा के हरदौल। इनके चबूतरे बुन्देलखण्ड में ही नहीं अन्य प्रांतों में भी बने हुए हैं। महिलायें इनकी पूजा बड़ी ही भक्तिभाव से करती हैं। कुछ ऐसे पुरुष हैं जिनकी मृत्यु किसी दुर्घटना में हो गई या जो युद्ध में पराक्रम दिखाकर शहीद हुए उनकी भी पूजा देवता के रूप में की जाती है। यहां के सामाजिक घटनावृत्तों से संबंध रखने वाले कई देवताओं की पूजा होती है। दूलादेव की पूजा विवाह के अवसरों पर होती है। पौरिया बाबा एक प्राचीन राजपूत योद्धा की स्मृति में पूजे जाते हैं। बुन्देला बाबा विशेष कामनाओं के लिए तथा नट बाबा नटों के, ग्वाल बाबा तथा गुरैया बाबा अहीरों के देवता हैं। भियाराने काछियों के देवता हैं। तो मिड़ोइया खेत की मेंड़ के देवता हैं। बुन्देलखंड में सतियों के भी मंदिर हैं एवं उन्हें भी देवताओं के समान ही पूजा जाता है। कुछ देवता किसी रोग विशेष से गांव की रक्षा करते हैं जैसे भुमिया आदि। नदी के घाट पर घटोइया की स्थापना होती है जो घाट का देवता माना जाता है और नदी पार करने में नाव की सहायता करता है।

स्पष्ट है लोक में देवत्व की अवधारणा हमारी मानसिक आवश्यकताओं एवं मानसिक तुष्टि से प्रेरित रहीं। लोक इन देवताओं की पूजा रामकृष्ण और शिव से कहीं अधिक करता है। इन देवताओं की पूजा के भीतर आर्यों की तेईस करोड़ देवी देवताओं की मान्यता छिपी है। इन लोक मान्यताओं का एक रुचिपूर्ण पक्ष यह भी है कि इन्होंने शास्त्रीय चिंतन पर भी पर्याप्त प्रभाव डाला। उदाहरण स्वरूप लोकदेवी दुर्गा जो प्रथमतः बुंदेली अंचल में पूजित थीं बाद में आर्यों की शक्ति साधना में भी स्वीकार्य हुई।

बुन्देली अंचल की अनार्य जातियां मूलतः शक्ति की उपासक रही हैं। सर्वप्रथम विंध्यपर्वत की जंगली जातियों में पूजित दुर्गा की प्रतिष्ठा एक कुमारी देवी के रूप में थी। बुंदेली लोक ने दुर्गा की प्रतिष्ठा एक भयानक देवी के रूप में की जो संसार की संहारक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है। यद्यपि बाद में आर्यों ने उसे ऋगवेद की देवियों रुद्राणी, भवानी आदि के साथ संबंधित करने का प्रयास किया तथापि मूलरूपेण दुर्गा प्रथमः विंध्य पर्वत की जातियों द्वारा ही प्रतिष्ठित हुई।

दुर्गापूजा का वर्णन महाभारत के भीष्म पर्व में भी आता है। जब कृष्ण अर्जुन को युद्ध आरंभ करने के पूर्व सफलता प्राप्ति के लिए दुर्गा का अभिवादन करने को कहते हैं। विराट पर्व अध याय–६ में भी एक श्लोक है जो युधिष्ठर नें दुर्गा की स्तुति में पढ़ा है। जहाँ महिषासुर को मारने वाली के रूप में उसका उल्लेख किया गया है। एक ऐसी देवी जो विंध्याचल के पहाड़ों में रहती है, मद्य पीती है, मांस खाती है। और यज्ञों में पशुओं की बलि लेती है। कहीं–कहीं उसे कृष्ण की बहिन भी बताया गया है।''[१]

इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रारंभ में शक्ति पूजा अनार्य जातियों में प्रचलित रही बाद में आर्य जातियों ने उसे अपना लिया। यह कार्य भारतीय संस्कृति पर लोक संस्कृति के प्रभाव का अद्भुत उदाहरण है। इसका दार्शनिक समाधान इस प्रकार दिया जाता है कि परब्रह्म सृष्टि, पालन और संहार तीनों कार्य बिना अपनी शक्ति की सहायता से नहीं कर सकता। दुर्गा शक्ति पर ब्रह्म की संहार शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित है। वर्तमान में भी लोक में दुर्गा का महत्व सर्वज्ञात है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के मतानुसार ''सिंधु घाटी की मातृकापूजन की परंपरा ही भारत भर में शक्ति देवी और माताभूमि के रूप में स्वीकृत हुई उसे ही ग्राम देवता के रूप में स्वीकार किया गया और वही आजकल सर्वोपरि

देवी के रूप में प्रतिष्ठित है।''[२] किंतु उनके इस कथन की अप्रमाणिकता के विषय में हमारे पास कई प्रमाण हैं। प्रथमतः यह कि नर्मदा घाटी की सभ्यता सिंधु घाटी की सभ्यता से भी अधिक प्राचीन है।[३] साथ ही दुर्गा पूजा की स्थापना के प्रथमतः साक्ष्य विंध यभूमि में ही विद्यमान है।

इसी प्रकार लोक देवी लक्ष्मी एवं यक्ष की मान्यता भी किसी न किसी रूप में लोक चिन्तन के माध्यम से शास्त्रीय चिंतन में स्वीकृत हुई। लोक देवी लक्ष्मी की पूजा शबरों की भूदेवी की पूजा से ही संबंधित है क्योंकि भूदेवी की पूजा सुख समृद्धि से ही संबंधित है। लोक में सुख समृद्धि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में लोक देवी लक्ष्मी की प्रतिष्ठा है। डॉ. गुप्त के अनुसार ''लोक देवता लोक मानस की किसी न किसी भावना का प्रतीक है। लक्ष्मी भी लोक में सुखवृद्धि की भावना का प्रतीक है।''[४] डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने भी लक्ष्मी को लोक देवी के रूप में स्वीकार किया एवं उसे समस्त भारतीय जनता के गृहस्थ आदर्श की देवी कहकर संबोधित किया।[५] इसी के साथ यक्ष की अवधारणा भी बाद में शास्त्रीय चिंतन में स्वीकृत हुई। लोकदर्शन की देवत्व की अवधारणा में यक्ष पूजा का महत्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः यक्ष शब्द लोक में व्याप्त ब्रह्म की अवधारणा का सूचक है। बुंदेली जनपद में प्रचलित एक प्रसिद्ध उक्ति ''गांव–गांव कौ ठाकुर, गांव–गांव कौ वीर'' में वीर शब्द यक्ष की ही महत्ता सिद्ध करता है। लोक में प्रचलित ब्रह्म देवता की अवधारणा भी यक्ष पूजा से ही संबंधित है। बाद में ब्रह्म शब्द होने के कारण लोग उन्हें ब्राह्मण मानने लगे। ऋगवैदिक काल से वर्तमान काल तक यक्ष पूजा लोकधर्म का एक आवश्यक अंग रही। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यक्ष के पास अमृत है। रामायण में यक्षत्व और अमरत्व का एक साथ पर्याय रूप में उपयोग किया गया है।[६] जैन बौद्ध और ब्राह्मण सभी ने यक्ष पूजा को समान रूप से स्वीकार किया। संभवतः यक्ष के समान प्राचीन, लोकव्यापी और लोकप्रिय कोई दूसरी परंपरा नहीं थी। आज भी पीपल के पेड़ में ब्रह्म देवता के वास की धारणा लोक में यक्ष पूजा की महत्ता सिद्ध करती है।

स्पष्ट है कि बुन्देली लोक ने अपनी ईश्वर की अवधारणा में देवत्व की धारणा को एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया किन्तु यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि देवत्व की अवधारणा ईश्वर की अवधारणा से पूर्णतः प्रथक है यद्यपि इसमें पर्याप्त समानताएं प्रतीत होती है। यहाँ एक महत्वपूर्ण विषय जो ध्यान देने योग्य है वह यह है कि देव शब्द अपने स्वरूप में इतना अधिक भ्रांतिजनक है और इसका प्रयोग कितने ही भिन्न–भिन्न पदार्थों का संकेत करने के लिए किया गया है। देव वह है जो मनुष्य को देता है। विद्वान पुरुष भी देव है क्योंकि वह अन्य मनुष्यों को ज्ञान का दान देता है। इसी प्रकार सूर्य, चंद्रमा और आकाश आदि भी देव हैं क्योंकि वे समस्त सृष्टि को प्रकाश देते हैं। पिता–माता और आचार्य आदि भी देव हैं। अतिथि भी एक देव है। स्पष्टतः देव शब्द देने के भाव से गहरा संबंध रखता है और यह हमारी उपयोगिताओं के कहीं न कहीं संबंधित है। भले ही ये उपयोगिताएं हमारी मानसिक तुष्टि की उपयोगिताऐं ही क्यों न हों। लोक देवत्व में भी उपयोगिता की कसौटी हर कालखंड में मान्य रही है। लोकदेवता के देवत्व की गरिमा का मापन भी उपयोगिता ही करती है। वस्तुतः लोकदेवत्व लोक में ईश्वर की अवधारणा के विकास की प्रारंभिक अवस्था है।

लोक साहित्य का सूक्ष्मतम विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि लोक ने जगत, देवत्व, ईश्वर एवं ब्रह्म आदि सभी विषयों को ठीक उसी प्रकार अपने चिंतन में प्रथक स्थान दिया है जिस प्रकार शंकर ने अपने दर्शन में ईश्वर एवं ब्रह्म की प्रथक सत्ता को स्पष्ट किया।[७] लोक ने भी देवत्व से भिन्न ईश्वर (सगुण विचार) एवं ब्रह्म (निर्गुण विचार) भावना को अपने शब्दों में व्यक्त किया है। जो भावना की परिपुष्टि में एक ही हो जाते हैं। लोककवि तुलसी नें इसी की प्रथक सत्ता को स्वीकार किया।

अगुन अरूप अलख जग जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।[८]

यद्यपि दर्शन के शास्त्रीय दृष्टिकोण से ईश्वर प्रत्यय के संदर्भ में निर्गुण अथवा निराकार प्रत्यय सर्वथा त्रुटिहीन अवधारणा है तथापि लोक अपने चिंतन में सगुण अथवा साकार प्रत्ययों को सहज एवं ग्राह्य मानता है। प्रकारांतर से इसे हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि लोक निराकार को सगुण सार्थकता देकर अपने बहुत ही करीब तक ले आया। लोक का देवत्व असीम ब्रह्म की वह अवस्था है जिसमें वह मानवीय चेतना के इतने नजदीक है कि उसके उपयोगिवादी मस्तिष्क को संतुष्ट कर सके।

संदर्भ संकेत –

१. भारतीय दर्शन – डॉ. राधा कृष्णन (१९८९) पे. ३९८–९९
२. भारतीय कला – डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल (१९६६) पे.३१
३. द हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपुल, वैदिक एज – आर.सी. मजूमदार (१९६५) पे. ८४
४. बुंदेलखंड की लोक संस्कृति का इतिहास (१९९५) – डॉ.एन.पी. गुप्त पेज २४६
५. भारतीय कला – डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल (१९६६) पे. ६३–६४
६. रामायण – किस्किंधा कांड (११/६४)
७. भारतीय दर्शन – डॉ. नंद किशोर देवराज (पंचम संस्करण १९९९) पे. ५१६–५३२
८. रामचरित मानस – तुलसी – बालकांड सो. ११५ दो ११६ के मध्य

– ७८, घूर डांग, चमन चौक, पोस्ट–विरला विकास, सतना म.प्र.

□

एक मनोहारी पारंपरिक लोकगीत

- सुश्री रामकिशोरी गुप्ता

लोकसाहित्य में लोकसंस्कृति निहित होती है। लोक साहित्य के अन्तर्गत लोकगीत, लोककथा, लोकनाट्य आदि आते हैं। इनमें सबसे प्रमुख भूमिका लोकगीतों की होती है, जो संस्कृति के संरक्षण का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। लोकगीत अधिकांशतः उत्सवों, पर्वों, त्यौहारों, विभिन्न संस्थों एवं आयोजनों से सम्बन्धित होते हैं। इनमें पुराणों में आये प्रसंगों की प्रचुरता होती है। गीता, भागवत, रामायण से सम्बन्धित प्रसंग भी इन गीतों में प्राप्त होता है।

राधा कृष्ण से सम्बंधित एक ऐसा ही लोक–गीत जिसमें कृष्ण द्वारा रात्रि में राधा की तिलरी चुराने और इसके बदले में राधा कृष्ण की मुरली चुराने का हृदयग्राही वर्णन है। अन्त में राधा और कृष्ण की वार्ता तो पाठकों को हंसने को बाध्य कर देती है। यथा –

ऊँची अटारी महल चितसारी, झुकवन अवति बयारी जू।
साँझ भई दिया बाती की बेरा, राधाचली चितसारी जू।।
आधी रात क्षत्री का पहरा, तिलरी लीन्ह चुराई जू।
भोर भये हँसि पूछें यशोदा, कहे बहू बदन मलीना जू।।
काह कहौं मोरी सासो यशोदा, मोसे कछु कही न जाई जू।
रंग महलिया न सेंध भई है, नइ खुले बजर किवारे जू।।
आधी रात क्षत्रिन को पहरा, तिलरी लीनी चुराई जू।
जिनने बहु तोरी तिलरी चुराई, तुम उनकी चुरालो जू।।
कैसे कैं जाऊँ मोरी सासो जसोदा, बिछुवन की झनकारी जू।।
कैसे कैं जाऊँ मोरी सासो जसोदा, बिछुवन की झनकारी जू।
बजनी पयलिया में पाला भरा लो, बिछुआ डार उतारो जू।।
साँझ भई दिया बाती की बेरा, राधा चली चितसारी जू।
आधी रात क्षत्रिन को पहरा, मुरली लीन्ह चुराई जू।
भोर भये पो फाटन लागी, किशन उतर नैचें आये जू।।
हँसि–हँसि पूछें माता जसोदा, काहे मदन मलीना जू।
काहा–कहौं मोरी मैया जसोदा, मोसे कछु कही न जाये जू।।
आधी रात क्षत्रिन को पहरा, बंशी लीन चुराई जू।
जिनकी पूत तुम तिलरी चुराई, बई ने मुरली मुराई जू।।
मैं तो जानौं माता लाख की लखौटी, बछुआ खौं पहिराई जू।
मैं तो जानौं माता वन की लकड़िया, चूले में दीन्ही लगाई जू।।
जा न जानो धना वन की लकड़ियां, नन्दबाबा दिलवाई जू।
ऐसी न जानो कान्हा लाख की लखौटी, नौ लाख हीरा जड़ाये जू।
दूध–दही की बेचनवारी, कबै–कबै तिलरी गढ़ाई जू।
गौअन के चखइया कनइया, कबै–कवै मुरली बजाई जू।।
रात बढ़त जब मैया देखी, दोवउ को समुझाई जू।
कान्हा दीन्ही राधा की तिलरिया, राधा ने वंशी लौटाई जू।।
गौअन के संग चले कनइया, राधा चली चितसारी जू।
ऊँची अटारी महल चितसारी, झुक वन आवति बयारी।।

ऊँची अटारी में चित्रकारी की हुई है जहाँ वायु झुक कर प्रवेश करती है संध्या दीप प्रज्वलन के समय राधा चितसारी में चली गई। आधी रात को किसी ने राधा की तिलरी (एक आभूषण) चुरा ली जबकिं वहाँ क्षत्री का पहरा लगा हुआ था। प्रातः माता यशोदा ने जब राधा का मलीन मुख देखा तो उन्होंने इसका कारण जानना चाहा। राधा ने उत्तर दिया कि मुझे से तो कहते नहीं बनता। रंग महल में न तो किसी ने सेंध लगाई है और न ही बज्र के समान दृढ़ किवाड़ों को खोला गया। क्षत्रिन का पहरा होते हुए भी आधी रात को किसी ने मेरी तिलरी चुरा ली है।

यशोदा समझ गई कि यह कन्हैया की ही शरारत है। उन्होंने राधा को सलाह दी कि बहू जिसने तुम्हारी तिलरी चुराई है तुम उसकी मुरली चुरा लो। राधा कहती है कि मैया मेरे बिछुओं से झंकार निकलती है। मैं वंशी चुराने जाऊँगी तो कन्हैया जग जायेंगे। माता यशोदा ने कहा बजने वाली पायलों में रुई भरवा दो और बिछुआ उतार कर रख दो।

संध्या होते ही राधा सदैव की भांति चितसारी में चली गई। आधी रात को क्षत्रिन का पहरा होते हुए भी राधा ने कन्हैया की मुरली चुरा ली। प्रातः पौ फटने पर जब कन्हैया नीचे आये तो माता यशोदा ने हँस कर पूछा कन्हैया तुम्हारा शरीर मलीन क्यों दिखलाई पड़ रहा है? कन्हैया कहने लगे कि माता क्या कहूं मुझसे तो कहते नहीं बनता है। आधी रात में क्षत्रिन का पहरा होते हुए भी किसी ने मेरी मुरली चुरा ली है।

माता कहने लगी मेरे पूत तुमने जिसकी तिलरी चुराई है उसी ने तुम्हारी मुरली चुरा ली है। कन्हैया भोलापन का भाव दिखाते हुए कहते हैं कि मैया मैंने तो समझा था कि वह लाख से बनी हुई लखौटी है इसलिए मैंने उसे बछड़े को पहिना दिया।

मुरली चुरा कर राधा प्रसन्न मन पहले से ही माता यशोदा के पास खड़ी थी। राधा तुरन्त बोल पड़ी कि मैंने तो मुरली को जंगल की लकड़ी समझकर चूल्हे में लगा दिया। कृष्ण कहने लगे उसे तुम वन की लकड़ी मत समझो वह तो मुझे नंद बाबा ने दी थी। राधा कहती है कि आप भी तिलरी को लाख की लखौआी न समझो उसमें नौ लाख के हीरे जड़े हुए हैं।

कन्हैया कहने लगे तू दूध–दही की बेचने वाली तिलरी

कैसे गढ़वा (बनवा) सकती है? राधा ने तुरंत उत्तर दिया कि तुम गौओं को चराने वाली (बरेदी) तुमने कब–कब मुरली बजाई है?

माता यशोदा राधा–कृष्ण की इस कहा सुनी का आनंद लेती हुई मुस्करा रही हैं। जब उन्होंने देखा कि ये दोनों तो आपस में रार करने पर उतर आये हैं, तो उन्होंने दोनों को समझाया, राधा ने कान्हा की बांसुरी दे दी ओर कान्हा ने राधा की तिलरी। कन्हैया गौओं के साथ चल दिए और राधा चितसारी में चली गईं।

लोक संस्कृति के संरक्षण में ग्रामीण समाज का महत्व पूर्ण योग रहा है किन्तु दिन प्रति दिन सिनेमा रेडियो एवं टी.व्ही. के बढ़ते प्रभाव के कारण ग्रामीण अंचल के रहने वाले भी अपनी इस महत्वपूर्ण धरोहर का त्याग करते जा रहे हैं। पारंपरिक लोकगीतों का स्थान फिल्मी धुनों पर बने गीतों ने ले लिया है। इस संक्रमण काल में अपनी लोकसंस्कृत के संरक्षण की महती आवश्यकता है।

– पुराने पोस्टऑफिस के पास,
शक्ति टाकीज रोड, टीकमगढ़

चाहे जितना ही भरमाओ

– स्व. शारदा प्रसाद उदैनिया 'मनोज'

चाहे जितना ही भरमाओ, लेकिन इतनी बात बताओ
बंधन लगा अधर पर तो फिर कैसे जन–जीवन मुसकाए।
आज आदमी से आगे हैं,स्वयं आदमी की मजबूरी।
ऐसे चले पंथ में साथी,और बढ़ी मंजिल की दूरी।।
चाहे जितना ही भटकाओ – लेकिन इतनी बात बताओ,
शूल बुहारे गए न पथ के, कैसे कहो चरण मुस्काए।।
कर दी तुमने आज बाग की, जग मग है चहार दिवारी।
किन्तु अंधेरे की सीमा में, घिरी हुई हर क्यारी क्यारी।
चाहे जितना ही बहलाओ, लेकिन इतनी बात बताओ,
पंछी सब बेसुध हैं तो फिर कैसे नन्दन बन मुस्काए।।
माना तुमने स्वप्न दिखाकर, जीने की आशा भर दे दी
रजनी को अरुणिम रंग देकर, ऊषा की आभा भर दे दी
चाहे जितना रूप सजाओ, लेकिन इतनी बात बताओ
बिम्ब स्वयं बेचैन अगर तो फिर कैसे दर्पण मुस्काए
लिया अलाप सदा पंचम से, किनतु रहा हर राग अधूरा
कपड़े रंग गेह से निकले, लेकिन रहा विराग अधूरा।
चाहे जैसा वेश बनाओ, लेकिन इतनी बात बताऔ
ग्रहण लगा चंदा पर तो फिर कैसे नील गगन मुस्काए
जितना काम बढ़ा जीवन में, उतनी घनी हुई असफलता,
ऐसी तपन बढ़ी जन–जन की, सुख गई मन की कोमलता।
चाहे जितना भेद छिपाओ, लेकिन इतनी बात बताओ।
यमुना सूखी पड़ी अगर तो कैसे वृन्दावन मुस्काए।।

बुन्देलखंडी – सूक्तियां

– चिन्तामणि वर्मा

चार का आना अमंगल कारी –
आवत आवत सब भले, आवत भले न चार।
विपत, बुढ़ापा, आपदा और अचौती धार।

माया के चार पुत्र –
माया के सुत चार हैं, दान, आग, नृप, चोर।
जेठौ कौ अपमान कर, तीन करैं भड़ फोर।।

चार के नखरे –
व्यापारी अरु पाहुनौ, तिरिया, और तुरंग।
ज्यौं ज्यों जे ठनगन करैं, त्यौं त्यौं आवै रंग।।

चार की अंधता –
ऊँग न देखे टूटी खाट, प्यास न देखै धोबी घाट।
प्रेम न देखे जात कुजात, भूख न देखै जूठौ भात।

नौ टेढ़े –
हर, हँसिया, कच, फावड़ा, शिविका ऊँन प्रमान।
जे नौ टेढ़े चाहिए, अंकुश भौंह, कमान।।

नौ लंबे –
पाग, पिछौरा, परदनी, खोर, गदेला खाट।
जे नौ लम्बे चाहिए, हाट, सफाई घाट।।

नौ चौड़े –
बस्ती, वेद, तपेश्वरी, बाँस, बिछौना खाट।
जे नौ चौड़े चाहिए, हाट, घाट अरु बाट।।

नौ का निषेध –
रोगी, दोषी, सूम, शठ, अज्ञानी, मतिहीन।
चुगल, चवाई, पातकी ये नौ पाछे कीन।।

नौ का साथ –
दाता, सूर, सुजान, नह, ज्ञानी, गुनी प्रवीन।
पंडित, कवि अरु जौहरी, ये नौ आगे कीन।।

नौ दबे –
कागद, केला, पान, अरु दासी, दुर्जन दाम।
जे नौ दावे ही भले, रहुआ, महुआ, आम।

नौ ऊँचे –
किलौ, कोट, मन्दिर, महल, द्विज, क्षत्री, गज, बाज।
जे नौ ऊँचे चाहिए, वैद, बराई नाज।।

फूटे बुरे –
कान, आँख, मोती, मती, बासन, बाजौ, ताल।
गढ़, मड़, डौड़ो, यंत्र पुनि जे फूटैं बेहाल।।

नौ फूटे अच्छे –
खत, डंगरा, बन–बौंगरा, दाड़िम, कुसुम विशष।
जे फूटे ते गुन करै, केरा लाई, केस। □

– चेतगिरि कॉलोनी, छतरपुर

बुन्देली के अमर साधक—डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त

- डॉ. दुर्गेश दीक्षित

यह बुन्देल—वसुन्धरा मनीषियों साहित्यकारों, कलाकारों और महाकवियों की जन्मदात्री है। बाल्मीकि, वेदव्यास, भवभूति और कालिदास जैसे संस्कृत के महाकवियों और नाट्ककारों ने अमर ग्रंथों की रचना करके विश्व साहित्य में स्थान निर्धारित किया है। गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य केशवदास, बिहारी, पद्माकर, घासीराम व्यास, मैथिलीशरण गुप्त, द्वारिकेश मिश्र, वृन्दावन लाल वर्मा के ग्रन्थों ने हिन्दी साहित्य में कीर्तिमान स्थापित किये हैं। यह पुण्य—धरित्री आज भी मनीषियों—चिन्तकों और साहित्यकारों को अवतरित करती जा रही है। उसकी ममतामयी गोद में अनेक मनीषी क्रीड़ा करते हुए माँ सरस्वती का भण्डार भर रहे हैं।

बुन्देली साहित्य और संस्कृति के सम्वर्द्धन और संरक्षण में लगे हुए हैं। ऐसे ही अमर सपूतों में से एक थे ''डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त''। आपका जन्म ०१ जनवरी १९३१ में महोबा नगर में हुआ था। अपनी शिक्षा—दीक्षा पूर्ण करने के पश्चात् आप शैक्षणिक कार्य में लग गये। काव्य—प्रतिभा तो जन्मजात थी ही। शिक्षण कार्य के साथ आप साहित्य—सर्जना में लगे रहे। जिनकी शैक्षणिक गतिविधियों—साहित्यिक और सांस्कृतिक क्रिया—कलापों को समीप से देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अनेक प्रकार के साहित्यिक आयोजनों में उनके साथ बैठकर श्रीमुख से सांस्कृतिक और साहित्यिक संभाषण श्रवण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। कई बार उनके साथ बुन्देली संस्कृति के विविध पहलुओं पर विचार—विमर्श और चर्चा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उन्होंने बुन्देली संस्कृति के सागर में गहरे पैठकर अमूल्य रत्नों का अन्वेषण करके विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत किये। यही कारण है कि एक बुन्देली संस्कृति के साधक के रूप में आपने, यश अर्जित किया। जिसके कारण उन्हें विद्वानमण्डली में सदैव सम्मान प्राप्त होता रहा। आपका रहन—सहन और खान—पान बहुत सरल, सहज और सात्विक रहा है। सामान्य औसत कद, स्वस्थ शरीर, घुँघराले बाल, गोल चहरा, धोती—कुर्ता और जाकट, पांव में साधारण सी चप्पल या क्रिपसोल के जूते। गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण आप सदैव खादी के मोटे वस्त्र धारण करते रहे।

जैसी रहन—सहन में सादगी वैसी ही विचारों में सहजता और स्वाभाविकता। कृत्रिमता से कोसों दूर वाणी में माधुर्य और विनम्रता का पुट। नेत्रों में ऊर्जा और सहज तेज तथा आकर्षण। आज भी मेरी आँखों के सामने उस महान पुरुष की मोहिनी—मूर्ति झूलती हुई दिखाई दे रही है। अपने विषय के निष्णात पण्डित। भाषा पर पूर्ण अधिकार। हिन्दी और बुन्देली में धारावाहिक विचार व्यक्त करने की क्षमता। गम्भीर चिन्तन और गहन अध्ययन उन जैसा अन्यत्र दुर्लभ है। शैक्षणिक क्षेत्र में हिन्दी के एक सफल प्राध्यापक, छात्रों के मार्गदर्शक और हृदयहार रहे हैं। उनके पढ़ाये हुए शिष्य उच्च पदों पर आसीन हैं और कुछ छात्र साहित्य के क्षेत्र में अग्रणी हैं। बुन्देली साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में समर्पण भाव से जीवन—भर जुटे रहे। बुन्देलखण्ड के केन्द्र छतरपुर में बुन्देली साहित्य अकादमी की स्थापना करके 'मामुलिया' पत्रिका के माध्यम से साहित्य और संस्कृति के प्रसार और प्रचार में लगे रहे। आपकी एकांत साधना और तल्लीनता को देखकर एक कवि ने सत्य ही कहा है। —

''बुन्देली के वरद सुत, बुन्देली के रत्न।
बुन्देली उत्कर्ष का, किया आपने यत्न।।''

इस अवसर पर उन्होंने बुन्देली की विविध विधाओं का अन्वेषण करके अनेक विशेषांक प्रकाशित करके विद्वानों को बुन्देली साहित्य का महत्व स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया। फाग साहित्य, आल्हा, लोकगाथा, लोककथा और लोकोक्ति साहित्य पर विशेषांक प्रकाशित करके मनीषियों के समक्ष प्रस्तुत किये। ईसुरी की फागों के भण्डार में से भाषा और सौष्ठव की दृष्टि से चयन करके समीक्षा सहित ईसुरी की प्रामाणिक फागों का संकलन प्रकाशित किया। जो सुधी जनों के लिए विशेष महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इस संकलन के प्रकाशित होने से लोककवि ईसुरी पर शोध कार्य करने वाले छात्रों को मार्गदर्शन मिला?

इसके अतिरिक्त सीता बाल—विनोद, लोकमहाकाव्य आल्हा, बुन्देलखण्ड के साहित्य का इतिहास (पांच खण्डों में) 'आल्हा' आदि ग्रन्थों का प्रकाशन करके बुन्देली साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में मूल्यवान कार्य किया। जिसे अनेक पीढ़ियों तक विस्मृत नहीं किया जा सकता। आपकी लगभग ४० कहानियाँ और लोक साहित्य पर आधारित अनेक शोध—लेख देश की विभिन्न पत्र—पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। आप सन् १९८१ से ''मामुलिया'' त्रैमासिक पत्रिका का संपादन करते रहे। जिसमें लोक साहित्य और संस्कृति पर आधारित साहित्य—सामग्री का प्रकाशन होता रहा। यह पत्रिका लोक साहित्य पर शोध कार्य करने वाले छात्रों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध हो सकती है। आदिवासी लोककला परिषद, हिन्दी साहित्य परिषद, मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन हिन्दी शोध संस्थान लखनऊ, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, केशव शोध संस्थान ओरछा आदि साहित्यिक प्रयाग, केशव शोध संस्थान ओरछा आदि साहित्यिक संस्थाओं के द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में

सम्मिलित होकर अपने सार गर्भित और चिन्तनपूर्ण, शोधपरक संभाषणों के द्वारा यश–अर्जित करते रहे। लोक साहित्य और संस्कृति पर आधारित देश का कोई भी कार्यक्रम आपके बिना सम्पन्न नहीं हो सका। आपकी अमूल्य सेवाओं के कारण आप उ. प्र. के हजारी प्रसाद द्विवेदी पुरस्कार उ.प्र. हिन्दी संस्थान के मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ईसुरी पुरस्कार, जबलपुर के लोक साहित्य सम्मान, रीवा के लोकभाषा सम्मान, म.प्र. लेखक संघ के 'अक्षर आदित्य सम्मान' और हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयोग की 'विद्या वाचस्पति उपाधि' से सम्मानित हुए। किन्तु ये सब के सब सम्मान उनके कृतित्व ओर साहित्य–साधना के समक्ष नगण्य प्रतीत होते रहे। आपकी प्रतिमा बहुमुखी थी। निबंध, समीक्षा, कहानी, उपन्यास के अतिरिक्त काव्य क्षेत्र में, बहुत लोकप्रियता अर्जित की थी। आपकी रचनाओं में बुन्देली की कोमलकांत पदावली, प्रवाह और भावों की गहनता दिखाई देती है। आपकी चौकड़ियों पर लोक कवि ईसुरी का प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। उन्होंने 'प्रसाद' की छाप लगा कर सैकड़ों बुन्देली चौकड़ियाँ रच डालीं थी। जिनमें बुन्देली शिल्प और अनूठे लालित्य के दर्शन होते हैं। प्रियतम कृष्ण के बिना गोपियाँ विरह–व्यथित हैं। उन्हें प्रकृति का आनंद–मय वातावरण दुखद और दाहक प्रतीत हो रहा है। जरा! एक उदाहरण देखिये –

''अब कछु लगत न मन खौं नीकौ, सब रंग फीकौ फीकौ।
विविध समीर कूक कोयल की, भरत उजास न जी कौ।।
कुजन में अँगरा फूलत रत, काटत सुर वंशी कौ।
सोसन सूक नवल तन हो गओ, चालन घुनी पिसी कौ।
झूंकत गात 'प्रसाद' दिन रात, लेय आसरो की कौ।।''

कृश शरीर की तुलना 'घुनी पिसी के चालन से करके कवि ने सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है। इस अभिनव प्रयोग से चौकड़ियां खिल गई हैं। ऐसा लगता है कि कवि के मन पर सूर के इस प्रसिद्ध पद का पूर्ण प्रभाव पड़ा है –

''बिनु गुंपाल बैरिन भई कुंजैं।
जव ये लता लगति अतिशीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजैं।
वृथा बहति जमुना खग बोलत, वृथा कमल फूलै अलि गुंजै।
पवन, पान, घनसार सजीबनु, दधि सुत किरन भानु भई भुंजै
ये ऊधो! कहिये! माधव सों, विरह करद–कर मारत लुंजैं।
'सूरदास' प्रभु कौ मग जोवत, अखियां बरन भई ज्यों गुंजै।।''

बुन्देली के परम उपासक डॉ. गुप्त के मन में माँ बुन्देली के प्रति सदैव श्रद्धा भाव रहा है। बुन्देली के माधुर्य और लालित्य का वर्णन करते हुए डॉ. गुप्त के मनोभाव एक चौकड़िया में देखने योग्य है –

''बोलिन में प्यारी बुन्देली, सबसैं रई अलबेली।
जनम लओ बुन्देलखण्ड में, चंदेलन संग खेली।।
प्राकृत माता की जा तनया, ब्रज की आय सहेली।
महुआ सी मीठीं मदमातीं, मिश्री कैसी ढेली।
सोन चिरइया जा 'प्रसाद' की अपनी घाँई अकेली।।''

बुन्देली को प्राकृत की पुत्री, ब्रज की सहेली और बनाफरी से प्रभावित कहकर कवि ने बुन्देली का विकास क्रम बताया है। महुआ सी मदमाती और मिश्री कैसी ढेली कहकर कवि ने बुन्देली के आन्तरिक आनंद और सरसता के समीप पहुंचने का प्रयास किया है। कुछ इसी तरह के भाव इन पंक्तियों के लेखक की चौकड़ियां में दिखाई देते हैं –

''अपनी भाषा है बुन्देली, भाव भरी अलबेली।
विन्ध्यांचल की, नौंनी बिटिया, ब्रज की सगुन सहेली।।
हिन्दी के लम्मे आँगन में, खुल खुल कै नित खेली।
जी के संग 'दुर्गेश' हमेशा, करत रबै रंगरेली।।

मद–मस्त फाल्गुन का आगमन जन जन के मन में गुदगुदी उत्पन्न करने लगता है। वसंत का यह सुखद समय विरह–व्यथित व्यक्ति के मन में नुकीले काँटे से चुभने लगते हैं। एक चौकड़िया में फाल्गुन का चित्र देखिये –

'' जो फागुन इतनौ बौरानौ, घर घर देत उरानौ।
घर घर फेरी देत भोर सैं, मलयानिल गर्रानौ।
मौआ आम कोंचयानें जे, कोंचत जीउ पिरानौ।
बिरछन के आखर से मारन, मंत्र फिरत मंडरानौ।
कात 'प्रसाद' अबई जा दुरगत, कल कौ कौन ठिकानौ।''

मलयानिल गर्रानौ कहकर कवि मलय पवन की तीव्रता और प्रभावशीलता का वर्णन करता है। आम का बौराना और महुए का कोंचयाना विरही के हृदय में शूल से चुभाने लगता है। वह आनंददायक वातावरण दुखदायक प्रतीत हो रहा है। विपरीत प्रभाव पड़ रहा है एक विरही के मन पर।

महाराज छत्रसाल तो बुन्देलखण्ड के पर्याय माने जाते हैं। उनके शौर्य और पराक्रम के कारण ही बुन्देलखण्ड का नाम ऊँचा है। सारे देश में बुन्देलखण्ड के वीरों की यश–गाथायें दुहराई जाती हैं। कवि ने महाराज छत्रसाल की प्रशंसा से एक बुन्देली चौकड़िया की रचना की थी जिसमें छत्रसाल के सद्‌गुणों का वर्णन किया है।

''ऐसी छत्रसाल ने ठानीं। कैबे रई कहानी।
चुगलन मुगलन सीख सिखाकैं, कर दओ पानी पानी।
लै लै शीशन की जा बखसिस, नचत भौत मस्तानीं।
हिन्दुन की मरजाद बचाकैं, धरम धुरी पैचानीं।
कीरत के बिरवा कैकै कैं, कविन रीत मनमानीं।
कात 'प्रसाद' ऐई गुन गाकैं, धन्य हो गई बानीं।''

इस चौकड़िया में गुप्त जी ने छत्रसाल के कार्य कलापों का विधिवत उल्लेख किया है। जैसे
'चुगलन मुगलन सीख सिखाकें, कर दओ पानी पानी।'

हिन्दुन की मरजाद बचाकैं, धरम धुरी पै चार्नीं।।''

हिन्दुत्व की लाज बचाने वाले महाराज छत्रसाल की यश गाथा का गायन करना हर कवि का कर्त्तव्य होना चाहिए। कविवर गुप्ता जी अपने इस महान् कार्य में पूर्ण सफल हुए हैं। उनकी चौकड़ियों में लोककवि ईसुरी का स्वरूप दिखाई देता है। उनकी एक चौकड़िया उसी भाव–भूमि पर रची गई है। जरा देखिये –

''ककरा परे पैजना छनकैं, पांव धरें जब हनकैं।
घुघटा में नैना मटकत रत, हातन चुरिया खनकैं।।
ठसकन चलतन जतन सकुचतन, छनछन नग नग ठनकैं।
ऑगन अंगन रास सौ हो रओ, काम देखतन रूनकैं।
कात 'प्रसाद' कसाइन के मन, मंतक मंतक ठिनकैं।।''

ईसुरी की चौकड़िया जरा इसी भाव–भूमि पर देखिये –

''चलतन परत पैंजना छनके, पांवन गोरी धनके।
सुनत गेम गेम उठ आऊत, धीरज धरत न तनके।।''

इसी प्रकार की एक नही अनेक चौकड़िया लिख डाली थी डॉ. गुप्त जी ने। उनके जीवन का अधिकांश समय चिंतन मनन और अध्ययन में ही व्यतीत हुआ है। उन पर संस्कृत की यह उक्ति पूर्णतः चरितार्थ होती है –

''काव्यशास्त्र विनोदेन, कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणाम्। निद्रया कलहेन वा।।''

हर क्षेत्र में उनकी प्रतिभा अद्वितीय रही है। बुन्देली के लिए उनकी सेवायें अमूल्य हैं। बुन्देली साहित्य और संस्कृति के उन्नयन में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनके अमर कृतित्व को विस्मृत नहीं किया जा सकता। भले ही वे संसार से विदा हो गये हैं। किन्तु वे अपनी यश–काया के द्वारा सदैव अजर–अमर रहेंगे। उनके सम्बन्ध में यह संस्कृत की उक्ति पूर्णतः चरितार्थ होती है –

''जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
येषां यशः काये न जरा मरणजं भयम्।।''

–कुण्डेश्वर (टीकमगढ़)

□

जे रित राज पधारे

– प्रभु श्रीवास्तव 'पीयूष'

चौक पुरे आँगन में, दोरें बँद गए वन्दनवारे
संगे सबइ समाज सजाकें, जे रित राज पधारे
हरी भरी धरती रानी कौ हँस रऔ कोंनों कोंनों
हरे गलीचन पै सरसों ने, बिर्रा दओ है सोंनों
बेल बिरछ फूलन सें लद गए उर भोंरा गुन्जारे,
संगै ....।।
देखौ तौ जल तल के ऊपर कमल लहरियाँ खा रए
पावन परस पवन कौ पाकें मंद मंद मुस्कारए
कस्तूरी सी घुरगइ गेरउँ झर रए अतर फुहारे,
संगै ....।।
शीतल मंद सुगन्ध बयारें, बैरइँ हें मन भावन
दिन भए रमन जोग उर रातें, सुंदर सुखद सुहावन
नीकी लगबै संझा बेरा, मन मोरए भुंसारे,
संगै ....।।
तनक तरन तप रए, थोरक से उत्तर खों हें मुरके
राग रंग छलकत है छल छल साज सजे हैं सुरके
मचरइ धूम, झूम रए हैं जे, गाँव गलीं गैलारे।
संगै ....।।
मौरे आम कूक रइ कोयल मदन धुजा फहरानी
नईं नबेलन के नैनन में रागइ चमक दिखानी
पूरक काम कामिनीं होरइँ, नेह दियल उजयारे।
संगै ....।।
तन तन कसमसात तन, जौ मन, चेतक चौपाँ भगरऔ।
काम जरा की अगन जगी है, रित कौ होम पिलग रओ
समदें सिलग उठीं दै रए हैं, आहुति बूढ़े बारे
संगै ....।।

– चित्रांश कॉलोनी, मऊ रोड, टीकमगढ़ म.प्र.

जुन्हैया

– साकेत 'सुमन' चतुर्वेदी

सबकों ज्यु चुरात है तें बाहरी! जुन्हैया
मनखों भौत भात है तें प्यारी जुन्हैया
रुखन की ई डगांर ऊ डगांर पै
टुंगर टुंगर कुदकवें मतवारी जुन्हैया
पत्तन के कौंचा संग पौर तक दिखें
परत जबई ऊपरें उजयारी जुन्हैया
ऐंगर कों न सुजात अँदियारे में
तनक में मिटात, रात कारी जुन्हैया
बदरई की धुतिया सें आँग ढाँककें
लगत है कतकारी सी न्यारी जुन्हैया
हिन्चरु सी सबरें जब लिपट जात हैं।
पलपट सी देत है किलकारी जुन्हैया
सेयी के काँटे सी गुच्च जात है
रात–दिनां दुखत है पग्वारी जुन्हैया
ओरो! तें उल्टी गैल चलत काये हैं?
भोर होत बनत है, निन्दनारी जुन्हैया
भुन्सारें सूरज नें रुवादओ 'सुमन'
मोंगें न, भरत है सिसकारी जुन्हैया

– ७२१, चित्रा चौराहा, झांसी उ.प्र.

□

बुंदेली की एकाक्षरी शब्द सम्पदा

– सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष'

आ = आओ (नाँय खों आ) आने का आदेश

आँ = क्या, दुबारा कहो

इ = ही

ई = इस, इसको, यहाँ, यह

ऊ = वह, उस

ऊँ = मना करना, रोकना, नईं, दोहराने को कहना

ए = बगैर नाम लिए बुलाने का सम्बोधन, इस, यह

ऐं = आश्चर्य सूचक, पुनः कहो,

ओ = बुलाना

औ = और का संक्षिप्त रूप

का = क्या

काँ = कहाँ

की = किसको (की की हाँ सुना याइ)किसकी

कु = गलत, बुरा

कू = कान में कूका देना, कान फूँकना

कूं = कुनमुनाना, पिल्ला का स्वर

कें = के पास (कें कें = झगड़ा)

कै = कही, कितने, विकल्प (ऐसौ कै ऐसौ), कई, उल्टी (वमन)

कैं = कातर स्वर, कुतिया का स्वर

को = कौन (को आय)

कों = के लिए

कौं = कहीं, कहूँ

खा = खाओ, खाने का आदेश

खाँ = को, के लिए, मुसलमान

खी = दांत निपोरना, हँसना

खूँ = खून

खें = को, के लिए, खों, कों

खों = के लिए

खौं = खाँसी

गा = गाने का आदेश, गाओ, चला गया, बीता हुआ, गओ

गृ = मल, बर्बाद, नष्ट (गृ कर दओ) बिगाड़ना

गे = गए, निधन

गें = दो कड़ियों के बीच की जगह

गै = चली भइ, ध्यान, खपरिया (खपड़े का गोल टुकड़ा), छप्पर की पनाली

गैं = चली गई, खपरियाँ, निधन

गो = जानकार, यदि, अगर

गों = चित्त, ध्यान, मन

गौ = गाय, सीधा–साधा, भोला, सरल प्रकृति

घी = घृत

चाँ = चाँय

चि = चिरंजीव, पुत्र

चीं = हार मानना, धनहीन होना

चूँ = चिरैया, टपकना

चौ = चार (चौअर = चार परत)

चौं = चारों ओर

छं = पायल/घुंघरू का स्वर

छा = छाने का आदेश – छाओ, प्रभाव में करना

छि = रोकना, घृणा दर्शान्ति

छी = धिक्कार, स्पर्श, छूना, दूर रहो

छीं = छींकने का स्वर, अपशकुन

छू = छुओ, अदृश्य होना, भाग जाना, जादू में गायब करना

छै = इकाई का छठवाँ अंक, छाई, क्षय, हानि, रस्म

जं = यम

जा = जाने का आदेश, जाओ, यह, इस

जां = जहाँ, यहाँ, प्राण

जी = जियरा, मन, प्राण, हां, जिस, यह, जीवित (जी रए) जिओ, आदर सूचक सम्बोधन

जू = आदर सूचक सम्बोधन

जूं = जुँआँ

जे = ये, यह

जें = भोजन करना (जेंलो, जें रए)

जै = यही (जइ), जितने, जयकार, विजय, मंगलकामना

जौ = जवा, यह (जौ काय = यह क्या है)

जो = कदाचित, यह, यदि (जो ऐंसौ हो जातो)

झं = झांझन का स्वर

झां = यहां, इधर, परछाई

टूं = दुर्बल

टें = समाप्त, घिसना (कुलरिया टें रए), शोर

ठाँ = बंदूक चलने का स्वर, स्थान, आश्रम

ठै = जगह, अदद (कै ठै) (लगै दो ठै)

ठौ = अदद/नग (दो ठौ देओ)

ठें = पादना

ढा = गिराओ, गिरा

ढीं = कगार, कित्तरा, कोर

ढ़ी = माँ (ढ़ी की आँख, ढी की..)

ढूं = जोर से पादना

ढें = रुदन

ता = अब, क्या, तो आग (ता है यह बच्चों को डगते हैं)

ताँ = तहाँ

ति = तीन (तिवाचा, तिजारी)

तू = तुम, रिस जाना या बरस जाना, कबड्डी खेल में सांस की निरंतरता का सूचक

ते = थे (कतते = कह रहे थे)

ती = थी (खात ती = खा रही थी)

तें = तुम, से

तैं = वहां, उसी जगह

तो = तुम (तो हाँ = तुमको, तो सें = तुमसे)

तौ = इस पर भी, इतने पर भी, अब, तिस पर भी

थां = थाह, तल

थू = निंदा, थूकन्त, धिक्कार

थें = से

दाँ = दंद, उरझन, दाँय, ऊधम

दा = दाउ, जेठा, जेठ

दीं = दीमक, दी हुई–प्रदत्त

दु = दो

दे = देने की आज्ञा

दै = दई, दही, देवता (दै दानौ = देव और दानव)

दो = इकाई का दूसरा अंक, देने की आज्ञा

दौ = नदी बहाव से बना गहरा गड्ढा, दह, दहार

धं = बैठने या गिरने का स्वर

धी = बुद्धि

धू = लपटों के साथ जलना

धो = धोने का आदेश, धोओ

धौ = चिकने तने का वृक्ष (न धौ चढ़े न गिर पड़े)

धों = कदाचित

नाँ = नहीं, मना करना, हटकना, यहाँ इधर (नाँ करौ, नाँ हुन आव)

नि = न को बोध कराना

नीं = नीर, आधार

नें = नहीं, कारक चिन्ह, मनाही

नै = नयी, नवीन, झुकी

नों = के पास, नाखून, इकाई का नौवाँ अंक, समीप, तक

नौ = नया

पा = खाने का आदेश/अनुरोध (तनक पा लो) पैर (पा जेब)

पाँ = पैर, पाँय, पाँव (पाँ लागूँ)

पी = पिओ, प्रीतम, पिया, पति, शराब सेवन

पीं = हार्न की आवाज

पूं = धीमे से पादना, ठुसकी

पें = रूदन

पै = पर, ऊपर, मगर, परंतु, अतिथि (पै पाँवने) बनाना (रोटी पै रये)

पों = हार्न का स्वर

पो = पिरोना

पौ = पूर्व में भोर का प्रकाश होना, चौपड़ खेल में एक पड़ना, नदी की बाढ़

फू = फूंक मारना, उड़ाना, गायब करना

बा = वह, बाओ (फैलाओ, खोलो), वाह–वाह, आपत्ति दर्शाना, उस

बी = प्रसव (बी गई)

बीं = बिही, अमरूद

बू = गंध

बे = अमुक, फलाने, नाम न लेकर सम्बोधित कराना, वह, आपत्तिजनक क्रियायें करने वाला (बड़े वे हौ)

बै = वही, बही, वो दी,

बो = वह

बौ = वह, दादी (बउ)

भा = हुआ, हो चुका, पसंद आना (आ गया)

भूं = धरती, भूमि

भे = हो गए, थे

भै = हो गइ (का भै = क्या हो गया)

भों = भोंह, मुँह चलाना

भौ = प्रसव, हुआ, घटा (घटना होना)

मा = मार (दौरौ रे मा डारो)

माँ = उधर, माता (माँ हो जइओ), माँयँ (नाँय–माँय), में

मूँ = मुँह, चेहरा

में = अहम, अंदर (कुठिया में हो गुर फोरबौ)

मैं = स्वयं

मों = मुंह, चेहरा

मो = मुझ, मेरे

मौ = मऊ

यां = इधर, इताँय

या = गंदी वस्तु के लिए संकेत, अथवा, यह

यें = क्या

ये = जे, यह

यों = इस प्रकार, इस तरह, वैसे तो, ऐसे,

री = बिना नाम लिये सम्बोधित करना घरवारी, स्त्री महिला को।

रूँ = बाघ का स्वर

रू = प्राण, आत्मा (रू लय गइ)

रें = अमारज रूदन का स्वर

रे = बिना नाम लिये पुरुष या बालक को सम्बोधित करना। (सुन तौ रै)

रै = ठहरने रुकने का आदेश या अनुरोध, ठहर, रुक (रैजा = ठहर, रैकें = रुककर, रै गओ = गर्भ ठहरना, रैवी = रहूँगा)

रों = रोम, रुआँ

रौ = गति में, क्रम में, झाक्क में, सनक में, रुक (आदेश रूप में)

ला = लाओ

लीं = प्राप्त कीं, क्रय कीं.

लू = लपट

ले = लो (आदेश)

लै = खरीदी, ग्रहण की, ली

लैं = साथ में लिये, गोद में लिए

लो = गाय–कुत्ता बुलाना, ग्रहण करो

लौ = लगाव, लगन, के पास (उन लौ है), ज्वाल

स = इच्छा, सहित,

सा = सामान, सदृश

सी = पीड़ा होने की सूचना, सदृश, समान, जैसी

सीं = समान सदृश उसी तरह की

सु = अच्छा, सुंदर

सू = बच्चों को पेशाब करने की याद कराने का शब्द,

सें = सम्बंध सूचक, द्वारा, से होकर, से

सै = सैकड़ा, सहे, पालन पोषण किया, शह (बढ़ावा), सही (ठीक, सच) शर्त बदना (लगाना), सहरा, शतरंज में राजा पर आक्रमण

सों = मो, से, कसम/शपथ

सो = सोने का आदेश, जब, ताश के खल में पत्ता खोलना, फुक्कस (रूप दिखावा)

हा = विनती (हा हा = शोर) (हा दइया = विनती)

हाँ = को, सहमति

ही = निश्चित, तुरंत (ही ही = हँसना/हँसी)

हूँ = हूंका, हामी भरना, उलाहना भरा स्वर, गलत काम करते पकड़ा जाना, चलो

हे = बुलाने को संबोधन

हें = अनादर भाव प्रगट करना

है/हैं = अस्तित्व जताने वाली सहायक क्रिया (वर्तमान की)

हो = होकर, से, रहकर, जू के स्थान पर संबोधन (उतै हो नइँ जइयो) (उतै हो का कर रये) (काए हो चल रए?)

– आदर्श मार्ग शुक्लाना, छतरपुर

☐

साहित्याचार्य पण्डित गौरीशंकर द्विवेदी

– स्व. अम्बिका प्रसाद दिव्य

दुनिया को कोई साहित्यिक कृति रच कर दे जाना तो साहित्य सेवा है ही, साथ ही उदीयमान साहित्यकारों को मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन देना भी कम महत्व की साहित्य सेवा नहीं। ऐसे तो कितने ही साहित्यकार होते हैं जो आप ही आप बढ़ना चाहते हैं। दूसरों को प्रोत्साहन देने वाली बहुत ही कम लोग मिलते हैं। मुझे स्वयं का अपना अनुभव है। मैंने एक बार एक लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार को अपनी प्रारम्भिक कविताओं का संग्रह दिखाना चाहा। आशा थी कि वे महाशय अपनी प्रतिष्ठा के अनुकूल अपने सौजन्य का परिचय देंगे परन्तु उन महाशय ने मेरे संग्रह को बिना देखे हुये ही उत्तर दिया, मुझे गुरुडम पसन्द नहीं, आप स्वयं ही अपना मार्ग बनाते चलिये। मैं इन महाशय का नाम नहीं लेना चाहता। सम्भव है उनकी दिवंगत आत्मा को कुछ ठेस लगे। परन्तु उनके उत्तर से मुझे जो उस समय ठेस लगी थी उसे मैं भूला नहीं। मुझे यह कटु अनुभव हुआ था कि बड़े बड़े नामधारी साहित्यकार उदीयमान साहित्यकारों को किसी प्रकार का प्रोत्साहन देना नहीं चाहते। वे अपने प्रतिद्वन्दी खड़े करने से डरते हैं। उनकी यह संकीर्णता उन्हें ही किसी महानता की ऐसे शिखर तक नहीं पहुंचने देती। जिसके नीचे खड़े वे नगण्य से प्रतीत होते हैं।

ऐसे साहित्यकारों के विपरीत भी कुछ ऐसे साहित्यकार होते हैं जो दूसरों को बढ़ाकर ही आप बढ़ते हैं। हिन्दी जगत में महावीर प्रसाद द्विवेदी एक ऐसे ही अग्रगण्य साहित्यकार हुये हैं। इस श्रेणी में यदि द्वितीय स्थान में पण्डित गौरीशंकर द्विवेदी को दूं तो अनुचित न होगा। मेरा तो अपना कुछ ऐसा ही अनुभव है।

मैं पहले महाराजा अजयगढ़ की सेवा में था परन्तु परिस्थितियों की प्रेरणा मुझे इस सेवा से मुक्त करा कर टीकमगढ़ ले गई। मैं सन् १९३३ में टीकमगढ़ पहुँचा। उस समय मेरी आयु २६ वर्ष की ही थी। मुझे चित्रकला एवं साहित्य के प्रति जन्मजात प्रेम था। टीकमगढ़ के महाराजा श्री वीर सिंह जू देव साहित्य एवं कला प्रेमी थे। उन्हीं ने मुझे टीकमगढ़ बुला लिया था और वहाँ के सवाई महेन्द्र हाई स्कूल में ड्राइंग मास्टर के पद पर शिक्षक नियुक्त कर दिया। तभी मेरा श्री गौरी शंकर द्विवेदी जी से परिचय हुआ। श्री द्विवेदी जी पोस्ट मास्टर थे। साथ ही वे टीकमगढ़ के केशव साहित्य परिषद के मंत्री पद का भी भार सम्हाले हुये थे। वे जन्मजात थे तो साहित्यकार परन्तु विधि वैचित्र के अनुरूप उन्हें काम करना पड़ रहा था पोस्ट आफिस में। सारे दिन पोस्ट आफिस में माथापच्ची करने के पश्चात् जो समय मिलता था उसे वे साहित्य सेवा में लगाते थे। वे अपनी एक पुस्तक सुकवि सरोज को निकाल चुके थे। उन्हें श्री वीरसिंह जू देव का संरक्षण प्राप्त था। उनके लिये यह एक सौभाग्य की बात थी। जब मैं पहुंचा वे अपनी नई कृति 'बुन्देल वैभव' की रचना में लगे हुये थे। रचना प्रायः सम्पूर्ण हो चुकी थी। उसके प्रकाशन का प्रश्न था। पुस्तक के आवरण पृष्ठ बनवाने का विचार कर रहे थे। जब मुझसे परिचय हुआ और उन्हें पता पड़ा कि मैं चित्रकला में दक्ष हूँ तो उन्होंने आवरण पृष्ठ बनाने का कार्य भार मेरे पर ही रख दिया। मुझे विचार भी दिया कि आवरण पृष्ठ किस प्रकार का हो। कुछ ऐसा हो कि वह बुन्देलखण्ड के गौरव पर प्रकाश डाले। बुन्देलखण्ड जानी मानी भूमि है। सर सरिताओं, वन, उपवनों एवं बिन्ध्य की पर्वत मालाओं से सम्पन्न। उन्होंने विचा[र] दिया कि ऐसी ही पृष्ठभूमि पर किसी एक वीर सेनानी का [चित्र] दीजिये जो अपने घोड़े के लिये किसी सरिता के किनारे खड़ा हो। मैने ऐसा चित्र बना कर उन्हें दिया। महाराज वीरसिंह जू देव की उसे स्वीकृति मिली और वह भी द्विवेदी जी की 'बुन्देल–वैभव' पुस्तक का आवरण पृष्ठ बन गया। इसमें मैंने भी अपनी सफलता के गौरव का अनुभव किया। इस प्रकार की द्विवेदी जी की कृपा से मुझे चित्रकार के रूप में अपना परिचय देने का अवसर मिल गया। इससे मेरा कितना उत्साहवर्धन हुआ मैं कह नहीं सकता।

उस समय टीकमगढ़ साहित्य का विशिष्ट क्षेत्र बना हुआ था। पण्डित बनारसीदास जी भी टीकमगढ़ आ गये थे और स्थानीय युवकों का साहित्य सेवा के प्रति विशेष आकर्षण बढ़ चला था। तब कविताओं के क्षेत्र में आज जैसी क्रान्ति नहीं आई थी। महाराजा साहब प्राचीन शैली के छन्द दोहा तथा कवित्तों को अधिक पसन्द करते थे और प्राचीन शैली की रचनाओं को ही अधिक मान्यता प्राप्त थी। मैंने भी कुछ दोहों की रचना की थी। यह रचना इस अभिप्राय से की थी कि प्रत्येक दोहे पर एक चित्र भी बनाऊँगा और एक अच्छा चित्रकला एवं काव्य कला का समन्वित संग्रह हिन्दी जगत को दूंगा। 'दुलारे दोहावली' ने भी उसी समय टीकमगढ़ से देव पुरस्कार प्राप्त किया था। इससे मुझे भी प्रेरणा मिली कि मैं अपने भी संग्रह को आगे लाऊं। मैंने अपना संग्रह श्री द्विवेदी जी को दिखलाया। उन्हें दोहे अत्यधिक पसन्द आये और उन पर भूमिका लिख देने का भी भार स्वयं ही ग्रहण कर लिया। उन्होंने भूमिका के अन्त में जिन प्रेरणाप्रद शब्दों से मुझे प्रोत्साहन दिया वे उल्लेखनीय हैं। उन्होंने लिखा है। ''दिव्य दोहावली के प्रणेता श्री वर्मा जी कवि प्रसवनी बुन्देल भूमि के अन्तर्गत अजयगढ़ राज्य के निवासी हैं। आप कुशल कवि, सफल चित्रकार और सहृदय साहित्यकार हैं। काव्य एवं चित्रकला जैसी ललित कलाओं को जिसने प्रकृति ही से

प्राप्त किया हो, जो निरन्तर अध्यवसाय से उनकी उत्तरोत्तर उन्नति के लिये प्रयत्नशील हो वह सचमुच ही धन्य है। बुन्देलखण्ड की साहित्यिक जाग्रति में वर्मा जी का यथेष्ट भाग है। श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद के अन्वेषण मंत्री के पद पर रहकर जिस लगन से आपने साहित्य सेवा में योग दिया है, दोनों ही भाषाओं की कविताओं द्वारा जिस प्रकार आप निरन्तर भाषा भारती का भंडार भर रहे हैं वह सचमुच ही प्रशंसनीय है। आप से बहुत कुछ आशायें हैं। आपकी प्रतिभा उत्तरोत्तर उन्नति ही करती जावे ऐसी आन्तरिक अभिलाषा है।''

इस प्रकार ''दिव्य–दोहावली''मेरी प्रकाशित होने वाली प्रथम पुस्तक थी। मैं उसमें केवल दो ही चित्र दे सका। प्रत्येक दोहे पर नहीं जैसा कि मेरा विचार था। यहाँ इस प्रकरण के उल्लेख करने का अभिप्राय केवल यही है कि श्री द्विवेदी जी ने मुझे दिव्य दोहावली के प्रकाशन के लिये अभीष्ट प्रोत्साहन एवं प्रेरणा दी। कोई अन्य साहित्यकार होता तो इस गुरुडम के कार्य को कभी भी स्वीकार न करता।

द्विवेदी जी से मेरी निकटता उत्तरोत्तर बढ़ती गई। प्रतिदिन साहित्यिक विषयों पर कुछ न कुछ विचार विनिमय होता। जब कब हम लोग पण्डित बनारसी दास जी के पास भी पहुंच जाते। वे टीकमगढ़ से चार मील दूर कुण्डेश्वर में निवास करते थे। वहाँ अवकाश के दिन प्राय: सभी उदीयमान साहित्यकारों की मंडली एकत्र होती। भिन्न भिन्न विषयों पर वार्तालाप चलता। हास्य एवं मनोरंजन की भी कमी न रहती। सब टोली कुण्डेश्वर की नदी के किनारे सघन वन में घूमने को निकल जाती। उसमें द्विवेदी और चतुर्वेदी का युग्म विशेष रूप से दर्शनीय होता। दोनों समान कद के, हृष्ट पुष्ट समान साहित्यकार सामने आते। विविध विषयों पर बात चलती। कभी इस साहित्यकार कभी उस साहित्यकार की आलोचना होती। बड़े बड़े मूर्धन्य लेखकों के चरित्रों की जानकारी मिलती। परस्पर मधुर आक्षेप और व्यंग भी चलते जो सभी के मनोरंजन को बढ़ाते। कभी कभी वन भ्रमण करते हुये मृगों के झुंड भी हमें जैसे ही पर्यटन करते हुये मिल जाते और एक मूक उपालम्भ सा देते कि तुम मानव हमारे सदन में हमारी शान्ति भंग करने के लिये क्यों घुस आते हो। हम तो नहीं तुम्हारी सीमाओं का उल्लंघन करते। तुम कैसे साहित्यकार हो। कभी कभी उस नदी के कूल पर भोजनों का आयोजन भी होता। भोजन वहीं पकाया जाता। सब लोग नदी में स्नान करके भोजन करते और इस तरह प्रतिक्षण एक नवीन आनन्द की अनुभूति के साथ समय बीतता।

फिर द्विवेदी जी की दूसरी पुस्तक 'गीता गौरव' सामने आई। इसमें उन्होंने पद्य में अनुवाद किया। इसके लिये भी उन्हें आवरण पृष्ठ के लिये एक रेखाचित्र की आवश्यकता थी जिसमें श्री कृष्ण भगवान रथ पर सवार अर्जुन को गीता का उपदेश देते हुये रेखांकित किये गये होते। मैंने यह भी रेखाचित्र उन्हें बना कर दिया। वह भी उन्हें पसन्द आ गया। उसका भी ब्लाक बना और वह पुस्तक पर स्थान पा गया। इसमें भी मैंने अपनी सफलता समझी और आनन्द का अनुभव किया। पता नहीं द्विवेदी जी ऐसे ऐसे गहन विषयों पर ग्रन्थ रचना के लिये कैसे समय निकाल लेते थे। उनका अनवरत परिश्रम, अध्यवसाय, लगन सत्य निष्ठा आदि ऐसे गुण थे जो हम जैसे उदीयमान युवकों को अपनी ओर श्रद्धा से आकर्षित कर लेते थे। वे हमारे लिये एक ऐसा आदर्श उपस्थित कर रहे थे जो हमें उनका पदानुकरण करने को मूक प्रेरणा देता था। आगे हम लोगों ने अजन्ता एलोरा देखने की भी योजना बनाई। द्विवेदी जी तथा लक्ष्मीनाथ मिश्र जो हाईस्कूल के प्रधानाध्यापक थे, हमारे साथ चले। अजन्ता एलोरा को देखते हुये हम लोगों ने बम्बई तक यात्रा की ओर आनन्द के साथ साथ कितने ही नये नये अनुभव भी प्राप्त किये। उस समय टीकमगढ़ में बुन्देलखण्ड के लोकप्रिय कवि ईसुरी की भी बहुत चर्चा थी। इस कवि को आगे लाने में द्विवेदी जी का ही विशेष हाथ था। बुन्देलखंडी भाषा का अपने मूल रूप में जैसा प्रयोग ईसुरी में मिलता है वैसा अन्य किसी कवि में नहीं। द्विवेदी जी ने मुझे भी ईसुरी पर कुछ लिखने की प्रेरणा दी । मैंने ईसुरी की कुछ फागों का अंग्रेजी में अनुवाद किया और उन पर अंग्रेजी में ही कई लेख लिखे। उनमें से कुछ बम्बई से निकलने वालें 'रूरल–इडिया' में प्रकाशित हुये। ईसुरी पर ही एक लेख आकाशवाणी के इलाहाबाद केन्द्र को भेजा। मुझे उसकी रिकार्डिंग करवाने के लिये केन्द्र पर आमंत्रित किया गया। मुझे ईसुरी के विषय में पहले कोई जानकारी नहीं थी। हाँ अजयगढ़ में ग्रामीण लोगों से ईसुरी की फागों को सुना अवश्य करता था परन्तु उनमें कितना काव्य सौष्ठव भरा है यह न समझ सका था। द्विवेदी जी के ही सम्पर्क में आने पर बुन्देलखण्ड के इस लोकप्रिय कवि ईसुरी को समझा। बुन्देलखण्डी भाषा में कितना माधुर्य कितनी गम्भीर अभिव्यन्जना शक्ति, कितना लोच और लचीलापन है, इसको भी मैंने समझा। उसके प्रति मेरा भी आकर्षण बढ़ा।

उस समय टीकमगढ़ में बुन्देलखण्ड प्रान्त निर्माण की योजना बलवती हो रही थी। टीकमगढ़ नरेश श्री वीरसिंह जू देव स्वयं ही इस योजना के प्रवर्तक थे। वे एक अखंड बुन्देलखण्ड का स्वप्न देख रहे थे और उसे साकार बनाने का प्रयास भी कर रहे थे। श्री द्विवेदी जी में भी बुन्देलखण्ड के प्रति एक विशेष झुकाव सहज ही परिलक्षित होता था। वे जाति गौरव, स्वदेश गौरव इत्यादि सभी को महत्व देते थे। बुन्देलखण्ड को एक पूर्ण विकसित प्रान्त के रूप में देखना चाहते थे और इसी कारण से बुन्देख्लाण्ड के गौरव गाथा को अभिव्यन्जना देना, वे अपना कर्तव्य समझते थे। इसी अभिप्राय से श्री बनारसीदास जी ने 'मधुकर' पाक्षिक पत्र को भी निकालना प्रारम्भ किया था। उसके निकालने का यही उद्देश्य था कि बुन्देलखण्ड

में बिखरी हुई समस्त सांस्कृतिक ऐतिहासिक एवं पुरातत्व इत्यादि की सभी सामग्री को एकत्रित किया जावे। यहाँ की पिछड़ी हुई जनता को उसका ज्ञान कराया जावे। उसमें एक नवीन जाग्रति, एक नवीन चेतना लाई जावे। वह अपने गौरव को समझे और बुन्देलखण्ड के पुनर्निर्माण में कटिबद्ध होकर लग जावे। श्री द्विवेदी जी का इस अभियान में कितना क्या योगदान रहा 'मधुकर' की पुरानी प्रतियों से ही जाना जा सकता है।

बुन्देलखण्ड के प्रमुख कवि केशव की कीर्ति भी कुछ उपेक्षित सी पड़ रही थी। उनका जन्म ओरछा में हुआ था परन्तु उनका निवास स्थान कहां किस जगह पर था किसी को भी पता नहीं था। श्री द्विवेदी जी ने उसका पता लगवाया। ओरछा में जाकर ही केशव जयन्ती मनाई जाने की योजना का सूत्रपात किया।

द्विवेदी जी ने सुकवि सरोज एवं 'बुन्देल वैभव' लिखकर यहाँ के कवियों को जिनकी कीर्ति धूमिल सी पड़ रही थी, फिर से यथा स्थान स्थापित करने का प्रयास किया। उनकी रचनाओं पर, उनके जीवन चरित्रों पर एवं उनकी अन्य सेवाओं पर समुचित प्रकाश डाला। इस प्रकार द्विवेदी जी ने बुन्देलखण्ड की अपने साहित्य द्वारा जो सेवा की वह स्तुत्य ही नहीं अनुकरणीय है। फिर ऐसा भी समय आ गया कि टीकमगढ़ की साहित्यिक टोली को छिन्न भिन्न होना पड़ा। कोई कहीं गया, कोई कहीं। द्विवेदी जी का भी किसी अन्य स्थान को स्थानान्तर हो गया और मेरा भी। हम दोनों एक दूसरे के पृथक हो गये। केवल पत्र व्यवहार ही एक दूसरे के प्रति कुछ जानने समझने का साधन रह गया। मेरे मानस पटल पर उनकी जो जीवन झांकियाँ एवं मुखाकृतियां अंकित हैं वे आज तक जब कभी झलक दे जाती हैं। कितनी ही बातें विस्मृत हो गई परन्तु न होगी विस्मृत उनकी वह सौम्य और सौजन्य से भरी हुई 'मुख–मुद्रा' जिसमें सदैव ही एक आनन्द, प्रसन्नता एवं उत्साह की उज्ज्वल रेखायें अपना विविध छवियों में रेखांकन करती रहती थीं। वे धन्य हैं। वे बुन्देलखण्ड के स्वयं ही एक गौरव हैं।

प्रस्तुति – जगदीश किंजल्क

–सी–५, रेडियो कॉलोनी, सिविल लाइन्स

सागर (म.प्र.)

हरबोला

– जगन्नाथ प्रसाद 'सुमन'

गाथा–गाउत हैं हरबोला, 'राग–रागिनी–ढोला',
कछू गाउत हैं, नौटंकी में, बहिर और चौबोला।
महापुरुषन कीं, किसा–कानियाँ, इनसें सुनी पुरानी,
सूरवीरता कीं गाथायें, इनखाँ याद–जबानी।
कथा सिल्प गायन में आगें, बुन्देले–हरबोले,
जितै जमादें राग–रागिनी, भरें उतई–पै–मेले।
जात–पांत की बन्शावलियां, पटा–पटी की बातें,
गाउत–गाउत, पटिया काटें, बड़ी–ठण्ड की गतें।
गाँववासियन कौ करग्ये जे, मनोरंजन, थुरमोला,
गाथा गाउत हैं हरबोला, 'राग–रागिनी–ढोला।'
परम्परायें और रूढ़ियाँ, चलरईं जुगन–जुगन–सें,
बंसबेल, और बिरदावलियाँ, पलरईं जतन–जतन–सें,
बंसबेल, और बिरदावलियाँ, पलरईं जतन–जतन–सें।
बुन्देली–बोली में, जेतौ, भर गागर में सागर,
संस्कार और कलासंस्कृति, कररये इतै उजागर।
लोकसंस्कृति, जनमानस में, रचा–बसा कें–जानें,
खान–पान और रहन–सहन खाँ गा–गा खूब बखानें।
हमें–तुमें चइये कै इनकौ, बदलें उम्दा–चोला,
गाथा–गाउत हैं 'हरबोला', राग–रागिनी–ढोला।।

– ४९१/ए, शिवाजी नगर, झांसी

□

बूढ़ों का बसन्त

– कन्हैयालाल शास्त्री 'मुकुल'

मनाबें कैसें वृद्ध बसन्त? पक गये केश भये वेदन्त।।
बनें न बिस्कुट, चना चबाते, मटर मुराते तात!
छूट गये हैं बरा–मँगौरा, मन लडुअन पै जात।।
विवश, रोटी सें करें भिड़न्त, मनावें कैसें वृद्ध बसन्त?
खावें कैसें बेर–मकोरा, इमलीं, और अनार।
छूट गये अमरूद करौंदा, कैंथा–आम–अचार।।
नहीं गोरस बिन पेट भरन्त, मनाबें कैसें वृद्ध बसन्त?
घर के भीतर भाँति–भाँति के, बना–बना पकवान।
लरका–बड़यें हँस–हँस खाबें, उसरा के दरम्यान।।
लार टपका रह जावें हन्त, मनाबें कैसें वृद्ध बसन्त?
रहे नहीं अब गाल लाल हैं, धँस गये भीतर नैन।
ओंठ सिकुड़कर कारे पर गये, घालत फबन न सैन।।
हो गये अब तो पूरे सन्त, मनाबें कैसें वृद्ध बसन्त?
'मुकुल' मुसीबत में रहते हैं, करते हाल विलास।
काटें रात तरैयाँ गिन–गिन, कोऊ न आवत पास।।
अकेले माला रहें जपन्त, मनाबें कैसें वृद्ध बसन्त?
उठ जाएगा डेरा इक दिन, रहे अबेरा भोग।
हँस लो–हँस लो जब तक जीवन, फिर मृत्यू–संयोग।।
चले जायेंगे दूर अनन्त, मनाबें कैसें वृद्ध बसन्त?

– खाँदी–तालबेहट, ललितपुर (उ.प्र.)

□

बुन्देलखण्ड का सिद्ध तांत्रिक शक्ति स्थल पीताम्बरा पीठ

– डॉ. परशुराम शुक्ल

मध्यप्रदेश के दतिया जिले में दो विख्यात धार्मिक स्थल हैं सूर्य मन्दिर बालाजी तथा पीताम्बरा पीठ। आज से लगभग साठ वर्ष पहले आकर्षक व्यक्तित्व वाले, एक अत्यन्त तेजवान युवा साधु का दतिया आगमन हुआ था। यह साधू कौन था? कहाँ से आया था? उसका जन्म कब और कहाँ हुआ था? यदि अनेक प्रश्न है, जिनका उत्तर आज भी किसी के पास नहीं है। युवा साधू ने स्थानीय राजकिले के निकट बनखण्डी नामक स्थान को अपनी साधना स्थली बनाया। उसने लगभग पचास वर्षों तक माँ पीताम्बरा की उपासना की तथा अनेक देवी देवताओं की स्थापना की। युवा साधू की कठोर साधना के परिणाम स्वरूप उस समय का बनखण्डी आज एक सुप्रसिद्ध जागृत शक्तिपीठ के रूप में आ चुका है।

पीताम्बरा पीठ के युवा साधू ने अपना सम्पूर्ण जीवन मानवता की सेवा तथा शक्ति साधना में व्यतीत किया उसे मुख मण्डल पर इतना तेज था कि कभी भी उसके किसी निकटतम भक्त की यह हिम्मत नहीं पड़ी कि वह उससे उसका नाम पता या जन्म स्थान के बारे में कोई प्रश्न कर सकता। उसके सभी भक्ति उसके प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे तथा उसे स्वामी जी कह कर पुकारते थे। स्वामी जी को अपने लिये यह सम्बोधन बहुत प्रिय था।

स्वामी जी के परम भक्त तथा सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री वासुदेव गोस्वामी के अनुसार ''श्री स्वामी जी अपने नाम के लिये 'स्वामी' शब्द का ही प्रयोग करते थे। यद्यपि कुछ लोगों ने उनका नाम इन्द्रदेव भारती, देवानन्द, विश्वाधन भारती, अमृतानन्द महावीर आदि प्रकट किया है, किन्तु शाक्त दीक्षा से गुरू द्वारा प्रदत्त अमृतानंद नाथ नाम के अतिरिक्त किसी अन्य नाम के सम्बन्ध में लोगों को जानकारी नहीं है 'जुलाई १९२९ को श्री स्वामी जी ही कहलाते थे। किन्तु विश्वस्त सूत्रों से यह ज्ञात हुआ है कि बाहरी समाचार में वे 'भारती' या 'ई.दे. भारती' लिख देते थे। यह बात तो स्वीकार करने योग्य है कि नाम त्याग के पूर्व इनका कोई पारिवारिक नाम तथा दीक्षा नाम रहा ही होगा। किन्तु जब उन्होंने अपना परिचय स्वामी के नाम ही से देना चाहा तो हम भी इसी नाम को स्वीकार कर लेना है।'' स्वामी जी की जन्मतिथि के सम्बन्ध में श्री वासुदेव गोस्वामी' कहते हैं, श्रीस्वामी जी की जन्मतिथि का अनुसंधान करने में मुझे अनेक लोगों से सम्पर्क करना पड़ा और उनसे प्राप्त सूचनाओं के आधार पर प्रारम्भिक प्रयास में मुझे गलत दिशाओं में भटकना पड़ा किन्तु कुछ दिन पूर्व कुछ ऐसे सन्दर्भ मेरी जानकारी में आये जिनके आधार पर मुझे पूरा सन्तोष है कि मैं उनकी जन्मतिथि सही रूप से खोजने में सफल हो सका हूँ। तर्क के आधार पर चैत्र शुक्ल पंचमी संवत् १९५५ वि. रविवार दिनांक २७–७–१८९८ ईस्वी को महाराज जी की जन्मतिथि मानता हूँ।''

स्वामी जी जाति, धर्म और कर्म से ब्राह्मण थे। उन्होंने पन्द्रह वर्ष की आयु में सन्यास ग्रहण किया, पच्चीस वर्ष की आयु तक धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया तथा इसके बाद भारतीय संस्कृति का प्रचार करने के उद्देश्य से निकल पड़े। सब १९२८ में उनकी भेंट गोवर्धन पीठ के शंकराचार्य श्री मधुसूदन तीर्थ के शिष्य श्री ब्रह्मानंद से हुई। ब्रह्मानंद जी शक्ति साधना के पतन से बड़े दुखी थे। उन्होंने स्वामी जी को शक्ति साधना की दीक्षा दी तथा इसका प्रचार करने का सुझाव दिया। सन् १९२९ में स्वामी जी का दतिया पदार्पण हुआ, उन्होंने बनखण्डी नामक स्थान को चुना और यहीं शक्ति साधना आरम्भ की। उन्होंने सन् १९३५ में पीताम्बरा की अत्यन्त भव्य मूर्ति स्थापित की तथा इसे पीताम्बरा शक्तिपीठ का नाम दिया।

स्वामी जी विलक्षण शक्तियों के स्वामी थे। वह वेदों स्मृतियों, पुराणों के ज्ञाता थे। व्याकरण, ज्योतिष, दर्शन और तंत्रशास्त्र आदि में उनका ज्ञान तथा स्मरणशक्ति अद्भुत थी। स्वामी जी संस्कृत के साथ ही पाली, प्राकृत, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी तथा अरबी भाषा के उद्भव विद्वान थे। उनकी विद्वता के दर्शन उनकी कृतियों में होते हैं।

स्वामी जी को बंगाली, पंजाबी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान था। वह आश्रम में आये श्रद्धालुओं से उन्हीं की भाषा में बातें करके आश्रमवासियों को चकित कर देते थे।

स्वामी जी बहुमुखी प्रतिभा के विद्वान थे। भाषा, संस्कृति और दर्शन के साथ ही उन्हें संगीत से भी बड़ा लगाव था। श्री ललिता प्रसाद शास्त्री के अनुसार ''पूज्यपाद शास्त्रीय संगीत के मर्मज्ञ थे। आश्रम पर देश प्रसिद्ध गायक, वादक आते रहते थे। उनके गायन वादन की बारीकियाँ पुण्यपाद शिष्यों को बताया करते थे। आश्रम पर आने वाले संगीतज्ञ पुण्यपाद के संगीत ज्ञान से प्रभावित होकर तनमस्तक हो जाते थे।'' उनके जीवन काल में देश के महान संगीतज्ञ उस्ताद आदिल खां, पंडित गुदई महाराज, कुमार गंधर्व, डागर बन्धु, आचार्य बृहस्पति आदि नियमित आते रहते थे। इनमें से कुछ तो स्वामी जी के संगीत सम्बन्धी ज्ञान से इतने प्रभावित हुए कि उनके शिष्य बन गये।

स्वामी जी तंत्र विद्या के ज्ञाता होने के कारण कभी–कभी

चमत्कार भी दिखा दिया करते थे। कहते हैं कि झांसी के सुप्रसिद्ध गायक आदिल खां की खोयी हुई आवाज स्वामी जी के तांत्रिक चमत्कार से ही वापस आयी थी।

स्वामी जी पीताम्बरा पीठ का विकास एक सक्षम सिद्धपीठ के रूप में करना चाहते थे, अत: उन्होंने पीठ परिसर में अनेक देवी देवताओं की स्थापना की तथा उनकी सिद्धि एवं महात्म्य विषयक अनेक पुस्तकें लिखीं। तंत्र साधना तथा लेखन में अत्यन्त व्यस्त रहने के कारण उनका स्वास्थ्य असमय ही तेजी से गिरने लगा। सन् १९७९ के आरम्भ में उनकी स्थिति अधिक बिगड़ जाने के कारण उन्हें चिकित्सा के लिए बाहर ले जाया गया किन्तु इससे कोई लाभ नहीं हुआ। ३ जून सन् १९७९ को दतिया में ही उनके शरीर ने अन्तिम समाधि ली।

पीताम्बरा पीठ परिसर में स्वामी जी द्वारा स्थापित किये गये अनेक देव स्थान हैं, जहाँ शास्त्रीय ढंग से उनकी नियमित तांत्रिक पूजा अर्चना होती है। पीठ में सर्वाधिक महत्व पीताम्बरा देवी का है। भगवती पीताम्बरा की महिमा तथा उनकी सिद्धि का महत्व स्वामी जी के 'बगलामुखी रहस्यम्' में देखने को मिलता है। यह एक अभिनव ग्रन्थ है।

भगवती पीताम्बरा के बाद भगवान परशुराम व काल भैरव की स्थापना की गयी। स्वामी जी ने अपनी मृत्यु के ठीक एक वर्ष पूर्व भगवती धूमावती की स्थापना की। भगवती धूमावती महामाया का सबसे उग्र रूप है। कहते हैं कि उन्होंने एक बार भगवान शिव को भी निगल लिया था। इसी रौद्र रूप के कारण भक्तजनों को इनके दर्शन केवल प्रात:काल व सायंकाल पूजा के समय ही हो पाते हैं।

पीताम्बरा पीठ परिसर में सन् १९८० में भगवान शिव की विलक्षण प्रतिमा स्थापित की गयी। इसके विभिन्न रूप दर्शनीय हैं। इसके साथ ही साथ स्वामी जी द्वारा स्थापित हवन कुण्ड (यज्ञशाला), पुस्तकालय, औषधालय, भिक्षुकावास, साधक केन्द्र आदि दर्शकों को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं।''

— १००, पंचशील नगर, सिविल लाइन्स,
दतिया (म.प्र.)

□

बुझौअल पहेली

– संकलन : अरविन्द सिंह यादव

तनक सी न मनक सी, हरदी कैसी गाँठ।
चटक कें चूमा ले गई, कर रये हरे राम — बर्रईया
सइयाँ ढूडे काँस में, हम घुसे रये सांस में — मन्दोदरी
अजया सुत कौ बोलवो, गज कों पीछो अंक
जइयो तो लेयाईयो, सुगर नार के कन्ध — मैथी
सारे कों सहारो, नारी की सीख,
सावन ने नेओ हरतो, कार्तिक में माँगे भीख
— अर्जुन, दशरथ, जनक, रावण
पतर पूंछ लम्ब दंतना, तंत्र मंत्र न होऐ,
जो पूंछे रामान मे सोय कहाँ से होए। — क्यारी बनाने का पचा
दोऊ कुदई से मरन हमारी,
खसम करन गई बहिन तुम्हारी — मारीच ने कहा रावण से
बाप झांकर, लरका कांकर,
जीको नाती बड़ो उजागर — कपास
एक हाथ तीन गदियाँ . — छेवला का पत्ता
करियां पेड़ हरीरी पाती, सावन में फूल चेत में पाकी। — बबूल
ऐसौ पेड़ो काय को हीय, जीको पत्ता झरत न होय — खजूर
हरटी की चूरमूर, तांवे कैसो बेटा,
जान मोरी कहानी, नही तो बन्दर को बेटा — खंगोरिया
दस जनन की वरी व्याही, बत्तीस चबाई जाऊं
ऐसो मैंन का करो, जो बीच से चीरी जाऊं — दातोन
भरे समुन्दर, टठो है वान, ठाडी है औरत, जुटो है ज्वान — हुक्का
नहा आई, खोर आई, धोय आई, धोती, तोरे हांएं ता चीन ले,
नही तो जाके पेउत रोटी। — सती अनुसुइया
दिन की बहिन, रात की नारी, होत भोर लगे महतारी — बन्दूक
मर गई, अमर हो आई, वे पानी, के दो फल ले आई — चन्दासूरज
धरती रही न, पग धरे, न पानी के पास,
चन्दा सूरज देखे नही मै पन्छी की जात — कुशेरे की चिरइया
एक जीव आओ संसारा, वारा भुजा मस्तिक अठारा मधुर–मधुर के
बोले वेन, छ: हजार व्यालिस नेन — ज्वार की भुनटिया
बिन पांवन पर्वत चढ़े, बिन जिव्या फल खाए
येरी सखी में तोसे पूंछो, जो कौन तमासो आये — आगी
हाथ लागे, पांव लागे, मांस जैसी काया,
आठ माह तक का करत रये एक मंडली न छाया। — बंदर
चंदा सूरज देखे नहीं, रही पिता के संग,
पति की संगत कीन्ही नही, झूठो लगो कलंक — छेवला की जड़
वरषा वरषी रात में भीजो सब वनराय।
घड़ा न डूबो नीर में, पक्षी प्यासे जाये। — ओर्स
ब्रह्म नही नग्र में ढोले, दांत दोय मुख चार
वाहन बैल नहीं शिव शंकर, जल में करे बहार — तरसा

— ग्राम भियांताल, पोस्ट चन्द्रनगर, जि. छतरपुर

□

वैदेही वनगमन : पीड़ा का प्रबन्ध

- समीक्षक वीरेन्द्र शर्मा ''कौशिक''

''नारी जीवन है धरती पै, पीरा की परिभाषा।
अंसुआ जनम संगात्ती ई कें, जब तक तन में स्वांसा।।
छिन–छिन पै संघर्ष रात दिन, सेवा करै विचारी।
जियत–जियत तक रए तौउ पै, दुख सें नातेदारी।।''

बुन्देली के स्थापित सुकवि श्री रतिभान तिवारी 'कंज' द्वारा रचित खण्ड काव्य 'वैदेही वनगमन' की ये पंक्तियां अयोध्यानरेश दशरथनंदन श्रीराम पत्नी सती सीता के हृदय–स्पर्शी दर्द की ओर संकेत करती हुई सुपठनीय कृति है, जिसमें कवि ने १४४ छन्दों में सरस्वती वंदना में ध्यानपूर्वक गाया है –

''सारदा सरस्वती जननी जय भगवती,
धावें सबजती सती करें नित–निहोरी है।

नारी जीवन पीड़ा की परिभाषा है, यह कवि उपरोक्त प्रारम्भिक छन्द में बता ही देता है, जो सीता जी ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में भोगे एकाकी बनवास से स्पष्टतः सिद्ध भी कर दिया है। मैं स्व. डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त के इन शब्दों – ''वैदेही वनगमन पीड़ा का प्रबंध है। रचनाकार कविवर रतिभान तिवारी 'कंज' ने ओरछा–महिमा, बुन्देल–वाणी, बुन्देल–मंजरी और गांव के गलियारे जैसे बुन्देली गीत–संकलनों के बाद कवि की बुन्देली प्रबंधकाव्य की सीढ़ी पर खड़े होने की प्रारम्भिक संरचना है। कवि ने नारी प्रधान पात्र होने की सूचना अपने एक छंद में दे दी है। वह छंद बहुत व्यंजनापूर्ण बन पड़ा है।'' से भला कौन सहमत न होगा? कवि ने भी तो अपने 'आत्मीय आभार' में स्वयं स्वीकारा है – ''सतयुग, त्रेता और द्वापर युग से आज तक भारतीय संस्कृति में नारी का गरिमापूर्ण स्थान रहा है किन्तु बदलते सामाजिक परिवेश में नारी सदैव ही पुरुष के अत्याचार, शोषण और संदेह का शिकार होती आई है।'' शायद ऐसा ही शिकार तत्कालीन समाज की दृष्टि में सती सीता मैया को श्री राम के तथाकथित संदेह के कारण होता देख कवि अपने आपको 'वैदेही वनगमन' खण्ड काव्य बुंदेली भाषा में समाज को मुंह तोड़ उत्तर देने से नहीं रोक सका। मनु स्मृति की इन पंक्तियों के माध्यम से सती सीता मैया के सतीत्व या सत् को स्वीकार करने में भला उसको क्यों और कैसे हिचक होती –

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रै तास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।''

जहां नारियों की पूजा होती है और पूज्य मानी जातीं हैं, वहाँ देव–देवियों का निवास होता है और जहाँ नारियों को पूज्य नहीं माना जाता, वहाँ सारी क्रियायें विफल हो जातीं हैं, जिससे समाज का अधोपतन हो जाता है।

इस खण्ड काव्य के प्रथम छब्बीस (२६) छन्दों में अयोध्या नगरी की प्राकृतिक छटा, बड़े बड़े भवन, अटा–अटारी, बाग–बगीचों की सुन्दरता, राजा–महाराजाओं के यश आदि का वर्णन है। लंका में बंदी रही सीता की घटना पर ही कृति का कथानक केन्द्रित है। राजा राम अपने दूत से सुनकर –

खोटे बचन रात कें कत्तो, पुरवासी कौ टोंका।
अपनी घरवारी में ऊनें ऐंनइ हने डिड़ौका।।
दए सटोका लमछारे, फिर कै ऊ लवोदा मारे।
घर सें कैसें गई बायरें, बोल कुबोल उचारे।।
मस्कंऊं बिना बतायें कड़गई, आई उपत कें घर में।
तोसी तिरिआ कऊं नइआं, सारी जगती भर में।।
जानत मोय राम की नाईं, हम गोड़े टो डारें।
लंका में बंदी रई सीता, तौऊ राम स्वीकारें।।

अति पीड़ित हो जाते हैं और अपनी मानसिक तथा हार्दिक पीड़ा के विषय में विचार–विमर्श करने हेतु तीनों भाइयों–लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न को बुलाते हैं। राजा राम के बुलावे पर आए तीनों भाइयों के उन्हें सीता भाभी के सतीत्व और पतिव्रत् की परीक्षा अग्नि देव के समक्ष लिए जाने की बात का संदर्भ देते हुए समझाने पर भी राम नहीं माने और बोले कि हमारे कुल की परम्परा ''रघुकुल रीति सदा चली आई। प्राण जाएं पर बचन न जाई।।'' की रही है। अतः लक्ष्मण! तुमें सीता को सुबह होते–होते बन अवश्य भेजना है। यह राजा राम का आदेश है। पेंतीस पदों में वर्णित इस कथानक के बाद अगले ३२ पदों में दुखी मन से लक्ष्मण सीता जी को रथ में बिठा वन में ले जाते हैं और राजा राम की आज्ञा बता कर उन्हें गंगा पार के घनघोर जंगल में छोड़ चले आते हैं। इन पदों में कवि ने कारुणिकता ऐसी भर दी है कि पाठकगण भी पढ़ते समय रो उठते हैं। ऐसा नहीं कि राम सीता को गर्भावस्था में भी बन भेजते समय दुःखी नहीं है। वे मानसिक तथा हार्दिक अन्तर्द्वंद से जूझते हैं –

''काल बलीं है मनुज बली ना, लछमन सांसी मानों।
मानपान भओ हरदम जी कौ, अन्त अनादर जानों।।
परिवर्तन है सार सृष्टि कौ, राजा बने भिकारी।।
चार दिना खों कड़ै जुनइया फिर कारी अंदयारी।।
बिना नीति के जियना छिनभग, सोचौ अपने मन में।
ई सें सीता खों पौचाऔ, तुम भुंसारें बन में।।
बोले राम सुनो तुम लछमन, बौऊ राजा साँचो।
जनमत खों मानो है जीनें, भाव प्रजा कौ बाँचो।।

तुमें कौल है मोरो लछमन, सरजू मैया साखी।
अबकी जा पतभांत राख लेव, जैसी अब लौं राखी।।

और लक्ष्मण भी शंका आशंकाओं, दुविधाओं, निराशामय पीड़ा से घिरे मन से अपनी भाभी सीता माता को बन भेज आते हैं बड़े भाई राम की आज्ञा भी तो नहीं टाल सकते थे। सीता माता को इस तरह बन भेज दिये जाने पर अयोध्या में सर्वत्र दुःख की काली छाया बिखर जाती है, जिसका बड़ा ही सजीव, सार्थक, सारगर्भित, सुंदर और सराहनीय चित्र कवि ने प्रस्तुत किए हैं, जिसमें बुन्देली भाषा का लालित्य और मिठास हृदय को छूने वाला आकर्षक और अवलोकनीय है। उत्कृष्ट बुंदेली का शब्द–चयन एवं प्रयोग भी कम मनमोहक और हृदयस्पर्शी नहीं। अयोध्या को भी कवि ने बड़े ही मार्मिक और मनोरम माला–शिल्प द्वारा करुणामय विलाप करते हुए इन शब्दों में अभिव्यक्त कर दिया है, जो अति अनुपम, अद्भुत और अपरिमेय है :–

देकें टेर अयोध्या रोई, दुहरं काल भवधाती।
राजमहल तज बन खों जा रइ, अवधपुरी की घाती।।
सरजू मैया कनक भवन और रोए महल कंगूरा।
हाथी घोरे मूड़े मारें, उड़ी नगर में घूरा।।

इसी तरह घने जंगल के गंगापार पहुंचाकर भाभी माँ सीता को अकेला छोड़ते हुए वापस आने का मन बनाते हैं लक्ष्मण, तो उस समय दोनों (लक्ष्मण–सीता) का करुणा–सागर में डूबना–उतराना भी कम संवेदनात्मक नहीं। देखिए –

देकें टेर लखन धर रोए, हात जोर कें बोले।
जननी क्षमा करौ सेवक खों, अन्तर के पट खोले।।

होश में आने पर भी सीता जी बेहाल थी किन्तु धैर्य और साहस की मूर्ति बनीं वे कहती हैं – हे तात! मेरे मन की बातें सुनो जो भाग्य में लिखा होगा सो वह तो भोगूंगी ही। किसी ने भाग्य खों नोंच तौ नहीं पाया है। आगे अब क्या होना है? कौन जानता है? कहाँ–कैसे–कौन सी झुपड़िया में रहना होगा। यहाँ बन में जो मुनिगण मिलेंगे उन्हें क्या–कैसे बता पाऊँगी –

मुनि जन पूंछें मोसें, काहे प्रभु ने त्याग दओ है?
तौ हम कैसें उवें बताएं, का अपराध भओ है?

वन में सीता जी को अकेली छोड़ लक्ष्मण जी तो अयोध्या चले आए और उधर महर्षि बाल्मीकि उन्हें अपने आश्रम में लिवा ले गए। जब लक्ष्मण वापस पहुंचे तब राम अति शोकाकुल हो अपने महल में एकांत में विरह–वेदना सहन करते हुए कई दिनों तक राज–दरबार में भी नहीं गए। लक्ष्मण ने अपने अग्रज श्री राम को दुःखमुक्त करने हेतु सीता के संदेश को कवि के शब्दों में ऐसे अभिव्यक्त किया –

''सीता हतीं राम की अपनी, जनम–जनम तक रै हैं।
आन राखवे खों रघुवर की, दुख पीरा खों सै है।।

अंत में कहा जा सकता है कि बुन्देली के इस प्रान प्यारे कवि ने इस रचना 'वैदेही वन गमन' का सृजन करके बुंदेली भाषा के माधुर्य, लालित्य, सरसता, अलंकारिकता, शब्द–सौंदर्य, व्याकरणीयभव्यता, कहावतों, मुहावरों आदि की अमीरियत से उन पाठकों और भाषा–भाषियों को इसे (बुंदेली माला को) अपनाने की सच्ची और आत्मीय सीख दी है, जो बुंदेली को गँवारू कहकर त्याज्य मानते हैं। कवि कंज ने भारतीय संस्कृति की धार्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्ता को उच्चाशिखर पर पहुंचाने हेतु बुन्देली भाषा को माध्यम बनाकर बुन्देल–भूमि की सच्ची सेवा की है। जिस प्रकार दुख बिना सुख का महत्व नहीं, उसी प्रकार अच्छाई का महत्व बुराई के बिना नहीं आंका जा सकता। अच्छा होता यदि इस कृति का समर्पण किसी बुंदेली मर्मज्ञ को किया जाता। भाषा–व्याकरण की त्रुटियाँ, कहीं कहीं शब्द–चयन की भ्रमात्मकता और अनुपयुक्तता, प्रूफरीडिंग की भूलें आदि को अगले संस्करण एवं सृजन में सुधारने का प्रयास होता चाहिए कथावस्तु को भी विस्तार दिया जाना चाहिए। फिर भी अनुपमेव, अद्वितीय और बुन्देली ही नहीं अन्य भाषा–भाषियों के लिए सुखद है।

–१४२, कुरेंचा नाका, मऊरानीपुर २८४२०४
झांसी (उ.प्र.)

कुण्डलियाँ

– कल्याण दास साहू 'पोषक'

बनगए धन्ना सेठ 'वे', कर–कर कें भड़याई।
मैंनत कर–कर कें इतै, टेड़ी भइ करयाई।।
टेड़ी भइ करयाई, बोज ढो–ढो कें भइया।
उनकी ऊँची पौंच, इते है डगमग नइया।।
'पोषक' भूली औज, कष्ट में इतने सनगय।
जुतबे खों मजबूर, बैल कोलू के बनगय।।
जितनौं तुमसें बन सकै, करौ हमें बरबाद।
राजनीति ऐसी करौ, घर–घर होंय विवाद।।
घर–घर होंय विवाद, सलामत राखौ गद्दी।
जनता रय गुमराह, पियत रय पउआ–अद्दी।।
'पोषक' पूरौ देस, विदै उलझन में इतनौं।
जाती–वादी जहर, घोरिओ बनवै जितनौं।।
राजनीति ऐसी करौ, 'धनी' धनी हो जाएँ।
भूखे–नंगे आदमी, भूँखे ही सो–जाएँ।।
भूँखे ही सो जायँ, बिचारे निर्धन–निर्बल।
रोटी तो है दूर, नसीब न होवै शुद्ध जल।।
'पोषक' बोलौ झूँठ, सदाँ बरतौ अनरीती।
मिलै पुन्न ही पुन्न, करौ ऐसी राजनीति।।

– किले के पास, पृथ्वीपुर,
जिला टीकमगढ़

असीम ऊर्जस्व हैं 'राख तरे के अँगरा'

– समीक्षक : जगदीश प्रसाद रावत

डॉ. सुश्री शरद सिंह की प्रकाशित साहित्यिक कृतियां 'बाबा फरीद नहीं आते', 'तीली–तीली आग', 'बधाई की चिट्ठी', 'बेटा–बेटी एक समान', 'आँसू बूँद चुए', 'कर्ण प्रिया का आत्मकथ्य', 'न्यायपालिक विज्ञान की चुनौतियां' (पुरस्कृत शोध) और 'राख तरे के अँगरा' आदि में 'राख तरे के अँगरा' उनकी एकमात्र बुन्देली पुस्तक है।

इस कहानी संग्रह में कुल जमा नौ कहानियां हैं मानों जैसे बुन्देली कहानी के नौ रत्न हैं। रत्नगर्भा धरती पन्ना में जन्मी लेखिका की कहानियों में समूचे बुन्देलखण्ड की माटी की सौंधी महक स्पष्ट सुवासित है। यह लेखिका का माटी के प्रति वरेण्य अवदान भी है। आधुनिक युग एवं समसामयिक ग्रामीण जीवन से ये जुड़ी कहानियां हैं। इस संग्रह की कहानियां लोक कथायें या किसी परी देश की गाथायें नहीं बल्कि ये ऐसी अपनों की कहानियां हैं जो वर्तमान लोकजीवन के यथार्थ को खोलकर रखती हैं। यह कहानियां हिन्दी में प्रकाशित हो चुकी हैं और प्रस्तुत पुस्तक में उनका बुन्देली रूप हैं भूमिका में यह बात स्वयं कथा लेखिका ने स्वीकार की है। अत: क्या इन्हें हम लेखिका द्वारा स्वयं किया हिन्दी से बुन्देली अनुवाद या बुन्देली से हिन्दी अनुवाद मानें?

'राख तरे के अँगरा' पंचायती राज व्यवस्था पर आधारित प्रमुख पांच पात्रों कुसमा बाई, बिसाहू, हलकू, दाऊ जू और पंडित जू की कहानियां पुस्तक की यह शीर्षक कहानी है। जिसमें सामंतवादी शक्ति का प्रतीक दाऊ जू का इलाके में बोलबाला है। वह मुहरे के रूप में अपने चमचे बिसाहू की सिफारिश पर और हलकू की खूबसूरत पत्नी कुसमा बाई को सरपंच प्रत्याशी बनाकर अपनी स्वार्थ सिद्दि के लिए इसे सरपंच के औहदे पर आसीन करवा देता है। ठेठ ग्रामीण महिला चुनावी चक्कर के माहौल में वाचाल बन जाती है और सारे चुनावी दावपेंच सीख लेती है। कुसमां का सरपंच बनने के बाद जागरूक होना मर्दो यहां तक कि उसके पति हलकू को भी आंख की किरकिरी बन जाता है। हालांकि कुसमां की जिठानी उसमें इन्दिरा गांधी की छवि देखती है।

सरपंच बनने के बाद कुसमां में वास्तविक नारी शक्ति का उदय होता है। वह चूल्हे चौके की आधी दुनिया से बाहर निकलकर सामंतवादी जुल्म और शोषण के विरुद्ध बगावत का बिगुल फूंकती है, परन्तु जब उसका अपना पति उसका साथ नहीं देता तो वह असहाय होकर सोचने लगती है कि ''मैं काय कछू नई कर सकत। चाय कछू हो जाय सीता मइया कौ ई धरती में समानइ परत है। कुसमा की दसा राख के ऊ अँगरा घाई होत जा रई हती। ऊपर–ऊपर से जुड़ात भई और भीतर–भीतर सें धधकत भई कौन जानें कौनऊं बेरा जे अंगरा लपटई बन जायें।''

इस तरह कहानी अंतर्द्वंद पर समाप्त हो जाती है। यह कुसमा सामंतवादी शक्ति केन्द्र का सफाया तो करना चाहती है उसे परन्तु समाधानपरख जबाव नहीं मिलता। कहानी समस्या को तो बखूबी बयान करती है, अनेक परतों को अनावृत करती है, लेकिन समाधान अन्त में छटपटाता हुआ नजर आता है। इस कहानी में वास्तविक रूप में ठेठ बुन्देली भाषा के शब्दों का इस्तेमाल किया गया है। जैसे नैन मटक्का, पटावे, मंसा, जुगाड़, गट्ट–पट्ट, पैली दफा, जम्फर, मगदं के लड़ुवा। छींट की धुतिया, बासन मांजना, चिचियात, रामधई, जी हुमसान, मुतकी, ठना–ठनी, भभूको, पलीता, मूड़, ठठरी को बंदो, परखत, बेरा दिया बत्ती और बमक आदि।

दूसरी कहानी 'बयान चल रओ है', लेखिका के गृह जिला पन्ना के परिवेश की कहानी है। खूबसूरत तरीके से शासन की नीतियों की वास्तविकता को कटाक्ष और व्यंगात्मक शैली में व्याप्त विसंगतियों को लेखिका ने अपनी तूलिका से कागज के कैनवास पर जैसे कि रेखाचित्र उकेरे हैं। इस कठिन शैली में लेखिका सम्प्रेषण के धरातल पर विषयवस्तु की आधारशिला मानते हुए अपने उद्देश्य में बेहद सफल हुई हैं।

रामदीन नाम ग्रामीण पात्र के माध्यम से व्यवस्था में व्याप्त विसंगतियों को प्याज के छिलकों की तरह कथा लेखिका ने परत दर परत उधेड़ा है। डिप्टी कलेक्टर और रामदीन के मध्य बयान के बहाने सार्थक चुटीले संवादों के जरिये परिवार नियोजन, बाल विवाह, स्कूली शिक्षा, पुलिस विभाग, विधिक सहायता और मीडिया की वर्तमान रीति–नीति पर करारी चोट की है। संवादात्मक शैली की चुम्बकीय गुणों से लबरेज पूर्णरूपेण सम्प्रेषणीय कथोपकथन की कहानी है 'बयान चल रओ है'।

'बुकरिया' कहानी भीष्म साहनी की चीफ की दावत की याद ताजा करती है। एकाकीपन और विरक्त क्षणों के मौन को तोड़ती है यह कहानी। दो पीढ़ियों के विचारों का अन्तर हल्के का सुविधाभोगी होना, भोगवादी सभ्यता का मुलम्मा उसके और उसके जीवन पर चढ़ जाता है। ग्रामीण परिवेश से शहरी जीवन में प्रवेश करने के बाद हल्के अपनी माँ (बऊ) को भी शहर ले जाना चाहता है, लेकिन वह उसकी बकरी को बेचने के बाद। जबकि बऊ के एकाकी जीवन का सहारा बकरी वह बेचना नहीं चाहता। बेचारी असहाय बकरी और अबला नारी की तुलना कहानी के अंत में लेखिका ने कुछ इस तरह से की है – ''काए बऊ तोय और मोय में कछू फर्क नई दिखानो हल्के की नज़र में। ऊने लाने सो अपुन दोऊ फाल्तू के आयें। न बुकरिया कोऊ काम की न डुकरिया।'' एकाकी बुढ़ापे के संत्रास और भोगे हुए यथार्थ का बखूबी बयान है यह कथाबिम्ब, जो गांव, शहर की सभ्यताओं के झूलों के बीच

झूलती, अधकच्चगी तथा कथित नई पीढ़ी के बदलते सोच को उजागर करती है।

चरित्र चित्रण पात्रों और परिवेश को विवरणात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हुए लेखिका ने 'निबौरी' कहानी में जैसे कि प्राण फूंक दिये हों। उम्मेद से बिट्टो को प्रेम हो जाता है लेकिन वह सार्वजनिक रूप से इसे प्रकट करने और बिट्टो के साथ अपना नाम जोड़ने से कतराता है। बिट्टो शादीशुदा है अत: वह गाय की तरह अपने को महसूस करती है और मर्द जाति को निबौरी जैसा कड़वा समझने लगती है। कथोपकथन, कलापक्ष, भावपक्ष और संवाद के हिसाब से यह एक कमजोर कहानी प्रतीत होती है। इसमें कहानी के तमाम पहलू अनछुये ही रह गये हैं। घटनाओं के विवरण के अनावश्यक विस्तार में जाकर लेखिका ने कहानी की मूल आत्मा और तत्व को बेहद लचर बना दिया है।

सुंदरा के साथ सरपंच अपना मुंह काला करता है। इस षड्यंत्र में उसकी सास भी शामिल है। एक औरत दूसरी औरत के लिए शोषण का कारण बनती है। सुंदरा की साथ थाने में रिपोर्ट लिखाने के लिए अपने बेटे रमेसर को भी मना कर देती है। सास–बहू अपने लड़के रमेसर को भांग की लत् लगाकर उसे मदहोशी में रखना चाहती है ताकि वह सरपंच द्वारा सुंदरा का दैहिक शोषण कर सके। गांव में सरपंच के द्वारा किये गये अनाचार और अत्याचार की वेबाक कहानी है यह कहानी। इतना ही नहीं सुंदरा की जवान बेटी चमेली पर भी सरपंच की ललचाई नजरें रहती हैं। लेकिन स्वयं का यौन शोषण हो जाने के बाद सुंदरा सचेत हो जाती है और अपने पति को नामर्द करार ठहराती है। यह एक सशक्त कहानी है जो नारी के अधोगति से बाहर निकालने में ग्रामीण परिवेश की महिलाओं को प्रेरणा देती है। इस कहानी में ठेठ देशज शब्दों का इस्तेमाल देखते ही बनता है। जैसे टुइयां, दारी–मतारी, दिशा–मैदान, हिलक–हिलक, चाय को चस्कौ, मौं दिखाई, पोलका, टेंटुआ, सनाका, मुण्डा, कुलबुलान, रमान, कांखत, पलका और मुण्ड आदि।

वेत्रवती मूलत: देवकुमारी या साध्वी रहती है। उसका विवाह तमाल के साथ हो जाता है। तमाल भरपूर वैवाहिक जीवन जीना चाहता था लेकिन वेदवती का साध्वीपन यहां आड़े आ जाता है। वेदवती उसका दीक्षा का नाम है, इसके पहले उसका नाम उमा था। ब्रह्मचर्य और गृहस्थ जीवन के बीच की विचित्र एवं वास्तविक स्थितियों को रेखांकित करती है यह मार्मिक कहानी। तमाल की मानसिक स्थिति का सजीव चित्रण, उसकी आत्मिक ग्लानि का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है यह कथाचित्र। गुरुआइन की आज्ञा से वह मान जाती है और उसके एक गीता नामक लड़की जन्म लेती है, लेकिन उसे भी मां की तरह साध्वीपन का रोग लग जाता है। शादी के लिए पिता के जबरदस्ती करने पर वह आत्महत्या कर लेती है। वेदवती को एक लड़का भी जन्म लेता है। 'संझा को देखी जै है' तमाल के तकिया कलाम पर कहानी का शीर्षक प्रदान किया गया है। यह कहानी भी अपने अंत में अधूरी सी प्रतीत होती है।

दफ्तर की जिंदगी से जुड़ी कहानी है 'चाकू'। जहां कर्मचारी को बाबुओं की हीन हरकतों से दैनंदिन जीवन में पाला पड़ता है। ऐसे ही एक दफ्तर पीड़ित व्यक्ति हैं रामबाबू। इतना ही नहीं इनकी तीन जवान लड़कियां हैं जिनके साथ कुछ मनचले लफंगे छेड़खानी करते हैं। इन सबसे एक साथ बदला लेना चाहते हैं रामबाबू और नायाब तरीका निकालते हैं, चाकू खरीदकर ठीक करने का। भाषा के तेवर चाकू के स्वभाव से मेल खाते हैं। जब चाकू २०० रुपये का मंहगा मिलता है तो रामबाबू १०० रुपये में दफ्तर में फायल आगे बढ़वाना ही बेहतर समझते हैं। उनका हृदय परिवर्तन हो जाता है और वह चाकू खरीदने का इरादा फिलहाल त्याग देते हैं। लेकिन दफ्तर में शि (भि)ष्टाचार के रेट बढ़ जाने से बेचारे फिर चाकू की तेज धार के सपने देखने लगते हैं। सचमुच में चाकू के माध्यम से रामबाबू की अनेक मन:स्थितियों का चित्रण यह कहानी प्रस्तुत करती है। कथ्य और शिल्प में यह कहानी सफल है।

'रानीगंजवारी बऊ' सच कहा जाये तो पूर्णरूपेण क के केनवास में यह नहीं समेटी गई। ऐसा लगता है जैसे क ना लिखने के लिए ही सिर्फ यह कहानी लिखी गई हो। पन्ना की पृष्ठभूमि पर लिखी एक कहानी एक बऊ की मनोदशा बखान मात्र करती है। यह कृति कमजोर श्रेणी की रचना है।

'छुटकी' के माध्यम से साक्षरता के महत्व को 'छुटकी' नामक कहानी में प्रतिपादित किया गया है। गणतंत्र दिवस में छुटकी जैसी गरीब लड़की का शामिल होना और संविधान जैसे कठिन प्रश्नों का उत्तर मिल जाना इस कहानी का मूल तत्व है। यह बाल कहानी की श्रेणी में रखी जा सकती है।

डॉ. सुश्री शरद सिंह ने छतरपुर और सागर की मुख्य बुन्देली, पन्ना की खटोला बुन्देली के भाषा प्रकार का इन कहानियों में इस्तेमाल किया है। कहीं–कहीं कहानियों में मिश्रित बुन्देली भी परिलक्षित होती है। कथाशिल्पी की भाषा सरल, सहज, बोधगम्य, सम्प्रेषणीय और मानक बुन्देली के निकट है। लेकिन यत्र तत्र उन्होंने कुछ बनावटी बोली का भी सहारा लिया है, जिससे लोक भाषा के लेखक को सर्वथा परहेज करना चाहिए।

कस्बाई बुन्देली कहानियों की सौंपी गंध है सुश्री शरद सिंह के लेखन में। आंचलिकता की पूरी पकड़ है, परिवेश का ज्ञान है, भाषा पर अधिकार है। जैसे कि मैत्रेयी पुष्पा ने बुन्देलखण्ड अँचल पर उपन्यास और कहानियां लिखी है। उन्होंने बुन्देलखण्ड की आंचलिकता को अपने लेखन का विषय बनाया हैं निश्चित ही उसी तरह डॉ. शरद सिंह अपनी माटी के प्रति 'राख तरे के अँगरा' नामक कथासंग्रह भेंट कर उन्होंने माटी से उऋण होने की एक सार्थक कोशिश की है।

— परिजात, कमला कॉलोनी, खजुराहो रोड,
छतरपुर म.प्र. ४७१००१

☐

बिजावर के अप्रतिम कवि देवी प्रसाद प्रीतम

– श्याम बिहारी व्यास

देवी प्रसाद प्रीतम एक गुमनाम शख्सियत भले ही आज के साहित्य जगत में हों, परन्तु प्रथम दशक में उनका लोहा हर कोई मानता था। इनके बारे में मैंने २००१ के बुन्देली बसन्त में कुछ रचनाएं लिखी थी। जिसकी सर्वत्र प्रशंसा हुयी। इस बार भी स्मरण के आधार पर कुछ अन्य रचनाओं को आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ। इनके विषय में मैं यह कहना चाहूँगा। कि १९८१ के अप्रैल अंक की कादम्बिनी में श्री वियोगी हरि ने यह उल्लेख किया है कि बनारस के श्री रायकृष्ण दास जी जब वियोगी हरि से मिले तो उन्होंने कहा कि बन्देलखण्ड निवासी बृज भाषा और उर्दू के सिद्ध हस्त कवि की गुलदस्ता–ए–बिहारी पर मैं मुग्ध रहा हूँ पर यह पुस्तक उनके पास नहीं है। तो वियोगी हरि ने कहा कि गुलदस्ता–ए–बिहारी का प्रकाशन तो साहित्य सेवा सदन से ही १९८० में काशी से हुआ था। प्रीतम जी की १२ पुस्तकों का उल्लेख गुलदस्ता–ए–बिहारी की भूमिका में श्री पुरुषोत्तम तैलंग ने किया है। उर्दू भाषा में हिन्दी के शब्दों का बेखटके प्रयोग किया है। बानगी के तौर पर गुलदस्ता–ए–बिहारी के चंद दोहों में किये गए अनुवाद को नीचे दे रहा हूँ –

हिन्दी – मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागर सोय
जा तन की झाँयी परत श्याम हरित द्युति होय।

उर्दू – मेरे अफकारे दुनियाँ दूर कीजे राधिकारानी।
कि जिनके सायए तन से हरे हों श्याम नूरानी।।

हिन्दी – मोहनी मूरति श्याम की अति अद्‌भुत गतिजोय।
बसत सुचित अन्तर तऊ प्रतिबिम्बित जग होय।।

उर्दू – अजब कुछ श्याम की मोहनी मूरति में शक्ति है।
बसीगो शीश–ए–दिल में मगर बाहर झलकती है।

हिन्दी – नाचि अचानक ही उठे बिन पावस बन मोर।
जानत हों नंदित करी, यह दिशि नंद किशोर।

उर्दू – अचानक नाच उठे वन मोर बिन ही घोर घन छाए।
समझ पड़ता है शायद इस तरफ घनश्याम हैं आए।

हिन्दी – सोहत ओढ़े पीत पट श्याम सलौने गात।
मनो नीलमणि सैल पर आतप परयौ प्रभात।।

उर्दू – कदे घनश्याम पर क्या पीत पट की लौ झलकती है।
जिआए होर शहरी कोह नीलम पर चमकती है।

हिन्दी – छुटी न शिशुता की झलक, झलक्यो जौवन अंग।
दीपक देह दुहून मिल दिपत ताफता रंग।।

उर्दू – लड़कपन की झलक और नूर आगाजे जवानी है।
बरंगे तापता दोनों की जू ऐ जिस्म जानी है।

हिन्दी – इक भींजे चहुलें प्रै बूड़ें बहें हजार।
किते न अवगुन जग करत नैंबै चढ़तीवार।।

उर्दू – कोई भीगै पड़े चहले कोई डूबे बहे सदहा।
नहीं क्या क्या सितम करता है बढ़ती उम्र और दरिया।

हिन्दी – खेल न सिखिए, अलि भले चतुर अहेरी मार।
कानन चारी नैन मृग नागर नरनि शिकार।

उर्दू – शिकारी हुस्न ने तेरे सिखाई है ब उस्तादी।
गिलाने चश्म को जालिम दिले दाना की सैयादी।

हिन्दी – कीने हू कोटिक जतन, अब कहि काढ़ै कौन
मोमन मोहन रूप मिलि पानी मै को लोन

उर्दू – हजारों हिकमतें की कहिए निकले कौन सूरत से।
हुआ दिल मिलने पानी का नमक मोहन की मूरत से।

हिन्दी – दृग उरझत टूटत कुटुम्ब, जुरत चतुरचित प्रीति।
परत गांठ दुरजन हिये दई नई यह रीति।

उर्दू – लड़ै आंखें कुटुम टूटे जुड़े दिलदार से उलफत।
पड़े दिल में रकीबों के गिरह, अल्लाह की कुदरत।

हिन्दी – गुनी गुनी सब कोउ कहै निगुनी गुनी न होत।
गुनो कहूं तरू अर्क ते अर्क समान उदोत।

उर्दू – कहेंगो बेहुनर को बाहुनर कब बोलबाला है।
रसी में अर्क क्या अर्क में देखा उजाला है।

हिन्दी – जो चाहे चटक न घटै, मैलो होय न मित्र।
रज राजस न छुबाइये नेह चीकनो चित्त।

उर्दू – मुकदर न हो हम दम चाहते कुछ चमक आये।
सनेही चीकने चित्त पर न रज राजस की छू जाए।

हिन्दी – करि फुलेल कौ आचमन मीठौ कहत सराहि।
रे गन्धी मति अन्ध तू इतर दिखावत काहि।

उर्दू – बरंगे आचमन ओ रंगे गुल को है पी जाता।
उसे क्या कोर दिल अत्तार इत्रे गुल है दिखलाता।

हिन्दी – जगत जनायौ जिहि सकल सो हरि जान्हो नाहि।
ज्यों आखियां सब देखिए, आंखन देखी जाये।

उर्दू – बनाया जिसने ये आलम वो खुद देखा नहीं जाता।
हैं दीदे देखते सब पर नहीं दीदा नजर आता।।

हिन्दी – दूरि भजत प्रभु पीठ दे गुल विस्तार न काल।
प्रगटत निर्गुन निकट ही चंग रंग गोपाल।

उर्दू – किए विस्तार गुन का भागते हैं पीठ दे हटकर।
निकट निर्गुन के आते हैं बरंगे चंग हैं नटवर।।

हिन्दी – मोहि तुम्हे बाढ़ी बहस को गीते यदुराज।
अपने अपने विरद की दुहुन निबहन लाज।।

उर्दू – हमारी औ तुम्हारी लग रही है होड़ यदुराई।
किसे हो जीत दोनों है अपने फन में यकताई।।

हिन्दी – यद्यपि है शोभा घनी मुक्तोफल में देस।
गुहे ठोर की ठौर में लर में होत विशेष।

उर्दू – गुहरु गो देखने में खुशनुमा सुन्दर सुहाते हैं
लड़ी में गूंथने ही से बड़ी पर आबे पाते हैं।

– हनुमान टौरिया के नीचे, छतरपुर

□

एक यथार्थ कहानी –

औझ

– डॉ. कृष्णानन्द हुण्डैत

वा बेरा ऐसी हती कै अच्छे–अच्छे हिम्मतवारिन कै अकबकाट सें होस उड़ जाते। बा तौ जनी मान्स आ हती। पगैया भर के फासले पै निसंक करिया रंग के रीछ के रूप में साक्षात मौतई ऊकी आँखन के सामनें ठांड़ी ती। देखतई ऊने जान लई कै आज मर गये, ऊ कौ सबरै आंग कंपन लगे औ बा पसीना सें लथ–पथ हो गयी। बिपदा परे पै मान्स की बुद्धि कछू न कछू उपाव ढूड़बे में लग जात, सो ऊनें अपने मन कौ धीरज नई छोड़ौ, वा मकोर की झौंर से कड़त रीछ खौं देखत रई औ धीरें–धीरें एक पेड़ के उलकां पौंच गयी। जान जान कैं के आज प्रान सांसत में पर गये, ऊने मनई–मन भुमानी मैया कौ सुमरन करो और रीछ सें प्रान बचावे के लाने बिनती करी। विनती करत करत कछोटा खुरसे और धरती पै गड़ई धर कै एक पेड़ के उलकाँ ठांड़ी हो गयी। आड़ लयें–लयें वा अपनी आखें टिकांय रीछ के चाल ढाल खौं परखत रई। ऊने भांपी कै रीछ ओई पै नजर गड़ायें चलो आ रऔ। ऊनें सोच लई कै अबतौ जो भगवान करै सो हुइयै।

ऊकौ मायकौ ऐसे गाँव में हतौ जो सब तरफ से चौघेरा सें डांगन सें घिरे तो, जितै वा ब्याई आई ती, बो गांव सोऊ डांग सें लगौ गांव हतौ। बचपनई सें बा डांग जनाउरन की सबई ढंगन खौं जानत ती सो, बा धीरज धरें रई और प्रान बचाबे की जुगत बिचारत रई। बा जा जानत ती कै रीछ मांस नई खात। पै भूखो होबे पै और मानस के लोहू की चांट लगबे पै बो मानुस खों छोड़त नइयाँ। ऊखों पटक कै ऊके ऊपर चढ़ जात और पाँव के तरवन खों चाट–चाट कें देह कौ सबरौ लोहू पी लेत, ई तरां से तड़पा–तड़पा कें प्रान लै लेत।

ऊने देखी कै रीछ ऊपै आँखें गड़ाये हरां–हरां आंगे खौं बढ़त आ रऔ। रीछ की चाल–ढाल और हेरन सें ऊने भांप लई कै वा रीछ के निसानै पै है और रीछ ऊ के प्रान लैवे खों आ रओ। वा जा जान गई कै भगकें प्रान नई बचाये जा सकत। स्यात् पेड़ के उलकां होवे से रीछ की नजर चूक जाय और बा बचबे के लानें ग्योंड़े के ढिकां के, गांव के बायरें बसे घरन नों पौंचवे को औसर पा लेबे। जा सोच के ऊने दूर के पेड़न लौ जावो ठीक न समझ कें ढिकई ठाड़े एक खजूर के पेड़ की आड़ लै लई पै ढूँक–ढूँक कें बा रीछ पै दीठ दयें रई।

बा चलायौ भयें, पैलां–पैल विदा भये पै अपने सासरें आई ती, गांवन में बहुयें बिटियां दिसा मैदान खौं सहजइं दोई बिरियां संग समेटे में जातीं, ऐसौ चलन सब गांवन में है। ऊदिना बा भुका भुकैं उठी ती। ऊखों दिसा–मैदान की खबर भई, सो मौगाँ–मौगाँ जितै ऊ की छोटी नन्द सो रई ती उतै आई, सरम की बांधी ऊनेकौनऊ और ख़ों घरवारन में से जगावे को अच्छौ नई लगो। ऊने कैऊ बेर ''बारी बेइया, बारी बेइया उठौ तौ, मोय दिसा–मैदान जाने, संगै चलीं चलो'' पै ऊकी दस–ग्यारा साल की बइया नई जगी सौ नई जगी। ऊके टेरवे पै ऊँ–ऊँ.... करकें करौंटा बदल बदल कें सोऊत रई। हैरान हो कें ऊने सोची कै कौन कोऊ खांयें जात, मैं अकेलइ चली जैओं, जा सोच कैं ऊने घिनौची सें गड़ई में पानी भरो और गांव के ग्योंड़े चली आई।

निस्तार करकें बा उठी, बइयर जनीं भयें सें बा मन में कछू कछू डरा सोऊ रई ती, सो नाँय मांय हेरन लगी, देखत में एक जाँगा ऊकी आँखें गड़ी की गड़ी रै गयीं। ऊकी निगाह परी तौ देखत कै करौंदी की घनी झौंर सें एक रीछ निकरत आ रऔ।

बा पेड़ की आड़ में मौका हेर रई ती कै तनिक रीछ की आंखें नांय–मांय फिरें बा औसर पाय और भग कें गांव के वायरें बने घरन ‍ पौंच पाय और रीछ अपनी टीवट में आंगे खों आ रऔ तो के ‍ शिकार कैसऊ भग नई पावे।

बिना कौनऊं उलायत के रीछ हरां हरां जी पेड़ की बा आड़ लयें ती चलो आव। रीछ ओई पै आंखें गड़ाये ओई रूख नों चलो आओ। और बा टकटकी लगायें, रीछ कौ आउत भओ एक एक पांव धरबौ देखत देखत ऊकी मनकी मंसा परख रई ती। और जा सोच रई ती कै ऊके प्रान ई रीछ बने जम सें बचावे की परी ती सो वा मनईमन भगवान कौ सुमरन करत करत अपने बचबे कौ उपाव विचार रई ती। रीछ ऊ रूख के ढिंका आ गओ, जा देख कें ऊने अपने और रीछ के बीच में धीरे–धीरे, आड़ जई की तईं कर लई। रीछ ने दस बारा फिरकैंया खाईं। जितने चक्कर रीछ ने लगाये उतनई चक्कर ऊखों लगावने आये। रीछ रूख से पांच सात डग दूर रै के फिरकियाँ दै रऔ तो और बा पेड़ के तना सें अपनो आंग, छुलबे सें बचा कें फिरकियां खा रई ती। फिरकियां खात में ऊ के पांव छुलन लगे ते, पै ऊखों तौ अपने प्रानन की परीती।

जीने संसार रचे, ऊ ने मानसन में दूसरे प्रानियन से अकल भौत जादा दै दई, विपदा परै मानस की अकल बचवे के लाने हजार तरां की चालें चलन लगत, और जनाउर कै तौ हमला करकें लड़वौ जानत कै प्रान बचावे खों भगवौ जानत।

सो वा बय्यर रीछ खों सूधे हमला करबे कौ कौनऊ औसर नई दै रई ती, और रीछ ऊ खों दवक में लैबे को लाग न पाकें खीझें जा रऔ तो। हार के रीछ ने फिरकैंया खावों रोक कें रूख के लिगां आवौ ठीक समझ बौ लिगां आकें ऊ खों पकर कें गिरावन चाउत तौ। रीछ खौं लिगां आउत लखकें बा बइयर तनक उलकई लै कें ठैर गयी। झौंझरयाने रीछ ने ऊ के पकरवे के बिचार सें ऊ रूख के दोऊ बलपल से आगे के दोऊ पांव पसार दयें और पाछले दोई पाउन पै ठांड़ौ हो गओ। रीछ की जा चाल देख कें तनक तौ बा बहू तनक घबराई पै और कछू करवे में विवस होकें ऊ खी औंझ बंधी सो ऊने बिन आँगें सोचें अपने दोई

हातन सें रीछ के दोई हाथ जबरया कें पकर लये। अब रीछ अपनई आप फेर में पर गओ, वौ कैसऊ अपन खों छुड़ा कै ऊखों दबावन चाहत तौ और बा जा समझ गयी ती कै छूटपै पै रीछ ऊखों जियत नई छोड़े।

इत्तौ होवे के पाछे रीछ ने पेड़ के चक्कर लगावौ शुरू करे तौ वा बहू रीछ के हाथ जबरया के पकरई पकरें रूख से छुलबे से अपने आंग खों बचावे के लाने तनक खिचकें रीछ के संगई फिरकईया देन लगी। इतनौ सब होतई होत भुका भुकौ की बेरा बीत गयी। ऊँगतोय पौ फटन लगी, सुरखई लैं पीयरी सी लखान लगी। रूखन पै चिरइयन की चैंचयान होन लगी गांव के मेढ़े पै बने घरन के लिंगा से मानसन के बतकाव कौ एगै ऊ रूख नौ आउन लगो। कैऊ मानसन की बोली सुन कें रीछ खौं मनई मन डर समा गओ। पै ऊ किलोर वैस की बहू की हिम्मत बढ़न लगी। वा सोचन लगी कै अब तौ मोरे चिल्लयाये पै गांव वारन में से कोऊ न कोऊ इतै आई जैहै और मोय काल के गाल सें ऐंछ कें बचाले, सो वा चिल्लयान लगी ''अरे! कोऊ दौरियो, दौरियो, मोए ई रीछ से बचाइयो, बचाइयो''। चार छः बेर चिल्लया–चिल्लया कैं ऊने खूबई जोर लगा कें कई ''मैं ईखों जोर लगाकें जबरया कें पकरें हों, जो जौ छूट पैहे तो मोय जियत नई छोड़ै।'' ऊ के कैउ बेर चिल्लयावे पै ऊकौ ऐंगरे गांव के ग्योड़े नो आये मानसन के कानन में पर गऔ।

जितने मान्स सुन रये ते सबई के सब कोऊ लठियां, कोऊ परैना और कैऊ जनै घरन सें उठा उठा कैं कुल्हरियां लै कें, जितै से ऐगे आ रओ तो दौर चले। कभऊँ कभऊ ऐसौ हाल हो जात जब मानसन की मनस्यात आपुस की सबई भलाई–बुराई भूल कैं सांचे सत्त पै आ जात। ऊ बेराँ मानसन के मन में जौ विचार नई आऊत कै जी की मदद करबे को फेंटा कस कैं तैयार हो रओ वो ऊ के पच्छ कौ आय कै ऊ के बैरिन के पच्छ कौ, ऊ बेरां काऊ की पाछलीं करीं भई बुराई भलाइयन कौ सोच मन में नई आउत। पाछली सबई भूल कें मानुस सबई बुरये विचारन खों अपने अन्तस के अनजाने गैर में हिरा देत। ऊ बेरा मानस बदले के भावन को खो खो के निर्बैर होके अकेलौ जो काम करवे की गांठ बांध लेवै, जी खों एक सुद्ध मानस सें करवे की आसा करी जात। पैले विपदा में फंसे मान्स सें कैसो बरताव रऔ और आंगे कैसो बर्ताव दोई ओर सै रै, ई बात कौ कछू विचा ऊ बेरा नई आउत।

जितैक जनें उतैं ऊ औसर पै पौचे, वे सबई एक मत होंके उतै ऊ रीछ से ऊ बहू खों बचावे कौ मन बनाउन लगे।

दस पन्द्रा मानसन खों जुरों देख कें बौ डांग में रैबे वारौ रीछ अपनई आप विवुचया सौ गओ, और ऊ लिलारे बैस की बैय्यर खों अपने प्रान बचने की आसा बढ़ गयी। सो ऊ कौ हियाव दूनौ हो गौ। ऊ ने रीछ पै अपनी पकड़ और करीं कर दई।

''अरे! बा चुर्रट बारी अबै निठुअई लिलोर है, बय्यर बनी आयें भगवान जानें कितने पैले सें अपने प्रान बचाबे के लाने हियाव लगाकें ऊ रीछ हों पकरें हैं दो जनें झट्ट पौंच के ऊ खों ओत देव और दोई दोई हातन सें कर्या कें दोई लंग सें ऊ रीछ कौ एक एक हाथ थाम लेव। अबई जब ऊ रीछ की मूड़ पै कुल्हरियन की मार परें सो वौ हटबे के लाने अपनौ पूरो जोर लागा दै। सौ ऐसें पकरने कै वौ कौनऊ तरां से छूट न पावै''– उन मानसन में से एक जनै अपनी समझदारी जनाऊत भये कहन लगे। जा सुनतई दो मुसण्डा ज्वान आगे बढ़े और झट्टई अपने दोई दोई हाथन सें ऊ रीछ कौ दोई बगलन सें एक एक हाथ पूरो जोर लगा कें थाम लओ। उतै जुरे सब जनन में परखी कै रीछ को थूथर खजूर के पेड़ की रगड़ सें छुल गओ, और ऊसे लोहू चिचारओ वे सबई मनई मन ऊ चुर्रटवारी नई बहू के धीरज और ऊ की हिम्मत की बड़ाई करन लगे। जब दो ज्वानन ने रीछ खौं कर्या कें हलबे हलबे में विवस कर दऔ तौ चार कुल्हरियां की चोटें ऊ की मूड़ पै परन लगी। जिन मानसन के हाथन में परैना और लठियां हतीं वे संगई संगे ऊके पाछले पावन कै और ऊकी पीठ पै मारन लगे। ''वे अब घरे जा, वै ते भारी जोर लगाव और भारी हिम्मत और धीरज दिखाव।'' उन जुरे मानसन में से एक ने ऊ बहू से कई।''

ऊ नें रीछ कौ छोड़ दऔ, पेड़ से अलग हो गई। लोर के गांव में न जाकें, लमछारौ घूंघट डार कें एक जांगा एक पटेल पै बैठ के, अपने लहू लुहान पावन सें कांटे काढ़न लगी और नांय मांय हेर कें मौं में से घबरा के पौदन के पत्ता टोर टोर कें घावन पै रगड़न लगी। घरी भर में कुल्हरियन की मार खात खात रीछ ने अपनी मूड़ लटका दई। धरती पै जब ऊ के पांव ढिलया गये जिन हाथन खों वो रूख के दोऊ बगल से फैलायं तौ वे लरम पर गये। मानसन ने जान लई कै अब ऊके प्रान पखेरू उड़ गये सो ऊखौ छोड़ दऔ। छोड़तनई वौ धरती पै गिर परो, इतै कई पै जा सोच कें कै कऊ ई के प्रान तनक मनक हिलगे न होय, और मरत मरत जो धोखौ न कर जाये ऊ मरे मराये पै चार छः कुल्हरियन के वार और कर दये।

खबर लगतनई ऊ बहू के सासरे के घर के सबई जनें हापर धूपर दौरत दौरत उतई आ गये। उनके आऊतनई बचाये वारे उनन पै टूट पर और कहन लगे ''छरी छांट बहू खों बार होवे ऐसी इकाऊ काय पौचाव, तुम सबन नें।। ई सवाल कौ ज्वाब दैवौ ऊ के घर वारन खौं मुसकिल पर गऔ। कछू विलम सें आधौ घूंघट दये ऊ की सास कछू जनन की आड़ लै कें बोली काऊ खों पतौ नौ तौ चले नईयां कै जा घर सें कबै आई, घर भर सोऊत रऔ और जा चली आई। पतौ चलतौ तो ऐसौ कैसें हो सकत तौ कै जा बिना काऊ के संगे आऊती।'' कछू देर सन्नाटौ छाऔ रऔ। फिर अपनई आप सबरन के मौं से कढ़ी ''बहू सांचऊं भौत हिम्मत और धीरज बारी है, तबई ई की रीछ खों दोऊ लंगा से पकरबे की औंझ बंधी।

— साहित्य सदन, ललितपुर

☐

ऊषा नवल दुलनिया

– डॉ. शिवाजी चौहान 'शिवा'

पूरब भव्य भवन सें निकरत ऊषा नवल दुलनियाँ रे
जात गगन की सैर करन दमकत जैसें दामिनियाँ रे
लेत बलईयाँ चलत चाँद की संगै सूरज साजन
छिन–छिन बदलत रूप सलौनों अनुपम अमर सुहागन
जिये देखवे नींद त्याग कें भगत भोर सें दुनियाँ रे
ओसन मुतियन मानिक मन सें माँग भरत अनहौनी
ऐसी बनन बनत हैं बाँकी लगत सबई खों नौंनी
भँवर रूप कजरा अँखियन में आँजत मन मोहनियाँ रे
धूप छाँव की सारी पैरत नित कंचन तन मईयां,
कलियां हैं मुस्कान फूल हैं हँसी सरूप उरईयां
अरुन कमल की भाल बिंदुलिया सूरजमुखी नथनियाँ रे
झुरमुट झुमकी गंगा जमना हार गरे झलकत हैं
हाँतन बीच हवा के कंगना खनखन पै खनकत है
झूमत रत चूमत रत करया किरतन की करधनियाँ रे
बजत चरन के बीच चिरइँयन की चूँ चूँ पैजनिया
जई की सतरंगी चुनरी सें सोभित 'शिवा' धरनिया
सबसें मिलत सनेह भाव सें ऐसी सरस मिलनियाँ रे

– गुरसरांय, झांसी □

का कयँ?

– डॉ. हरिसिंह घोष

कात तौ हो, पै बतादो का कहें
अब हमारी छांयरी तक तो –
भयानी हो गई है।
आदमी खां आदमी सें खौंप है
आदमियत तौ चिमानी – सो गई है।
देख लो जा झोपड़ी की–की बरी है,
चीन लो जा लास नंगी सी डरी है,
लो पसारौ तौ नजर अपनी गली के खूंट पै,
कौन खंजर लेंय मूरत सी खड़ी हैं,
चीन लो जौ देस कौ है आदमी,
देस की पहिचान ई की खो गई है।
गोलियों से छातियां छलनी बनी है,
खून से लथपथ तरल धरनी सनी है।
की कौ पुछौ सिंदूर देखौ तौ तनक,
जे तुम्हाई मां, बहिन, बेटी नईं हैं।
लुट रही है लाज की–की तुम न जानी आज लौ
बाहरे भइया! तुमाई बोलती लौ खो गई है।
टूट कैं तुम तौ मिटावे खां तुले हो,
देस की पहिचान दावे खां तुले हो,
अब सृजन की बात कित्ती दूर है,
तुम प्रलय फिरकें बुलावे खां तुले हौ।
स्वार्थ कौ चारौ बटोंगे और भटके आज लौ,
का करें तुमने जा सूरत कालिमा–सी हो गई है। □

बुन्देली बुझौअल

– डॉ. श्रीमती वन्दना जैन

१. सर्र सर्र सूतरी, सरकाने वाला कौन? दुर्गा चली मायकें, लौटाने वाला कौन?

२. तनिक से बालमियाँ बड़ी भारी पूँछ, जहाँ जाय बालमियाँ तहाँ जाय पूँछ।

३. दो मुँह छोटे, एक मुँह बड़ा, आधा मानुष लीले खड़ा, बीचों बीच लगावे फाँसी, अर्थ बताओ तो आवे हाँसी।

४. काली थी, कलियारी थी, काले बन में रहती थी। लाल पानी पीती थी, मरदों के छोगा लेती थी।

५. बिना पाँव पर्वत चढ़े, बिन मुख भोजन खाय। एक अचम्भो हमने सुनों, जल पीवत मर जाय।

६. नन्नी जनी और बड़ी जनी, बड़ी जनीने खोली तनी, तब नाचन लागी तीनों जनीं।

७. एक पकन्ना, दो लटकना।

८. सीस जटा पोथी लिए, स्वेत वस्त्र गलमाहिं, जोगी जंगम है नहीं, ब्राह्मण पंडित नाहिं।

९. सुर्रू कुठिया देवलन की।

१०. गागर तेरे जल भरा, सिर पर लागी आग। बाजन लागी बांसुरी, निकरन लागे नाग।

११. एक तरवर का फल है तर, पहले नारी पीछे नर
वा फल की यह देखो हाल, बाहर खाल और भीतर माल।

१२. मारे से वह जी उठे, बिन मारे मर जाय। बिना पांव जग जग फिरे, हाथों हाथ बिकाय।

१३. दो काने जब अंग मिलावें, छाती जोरे एक कहावें।
आंख अंगुरिया करते जावें, सम्मुख होकर काटन लागें।

१४. एक पुरुष वह सबको भावे, बिना समय कोई न लावे।
मैने कह दिया वा का नाव, बिना पहेली ना छोड़ो गांव।

१५. गत समय इक मेवा आया, फूलों पाती सबको भाया।
आग दिये वह होवे रूख, पानी दिये वह जावे सूख।।

उत्तर – १. नदी, २. सुई–धागा, ३. पैजामा, ४. बन्दूक की गोली, ५. आग, ६. रई और डोरी, ७. तराजू, ८. लहसुन, ९. मिर्च, १०. हुक्का, ११. आम, १२. तबला, १३. कतरनी, १४. पंखा, १५. आतिशबाजी का 'अनार'

– ए/५, प्रोफेसर कॉलोनी, आगर मालवा

कुण्डलिया

– प्रो. हनुमन्त सिंह चौहान

कुर्सी सें चिपके रहो, जस कागद सें गोंद।
कुर्सी छूटै हाथ सों, पिचक जायेगी तोंद।।
पिचक जायेगी तोंद, छूटें कार औ बंगला।
पूछैगौ नहिं कोउ बात, हो जाओगे कंगला।।
कहें हनुमत घबराय, आओ अब यही जमानो।
कुर्सी से चिपके रहो, यह कुर्सी चिपक जमानो।।"

– पिछोर, जिला शिवपुरी (म.प्र.)

बसंत की फागें

– डॉ. कुंजीलाल पटेल 'मनोहर'

कोयल सगुन सँदेसौ ल्याई, भई बसंत अबाई।
बैठ अवनि की अमराई में, पढ़कें लगुन सुनाई।
शिव–गौरा को ब्याव है सजनी, सजनी करौ सबाई।
रवि फसलन ने सजधज अपनी, शोभा रुचिर बनाई।
लगी सजाने प्रकृति 'मनोहर', अवनी की अँगनाई।।१।।

सजकें आई बसंत दुलनियाँ, पति सें करन मिलनियाँ।
झूलादार कमर में पैरें, फसलन की करधनियाँ।
पत्तन रंग की हरियल सारी, अँगिया लाल बरनियाँ।
नये सजन सें मिलवे आई, बनकें नई सजनियाँ।
महक 'मनोहर' सबके ऊपर, डार रही मोहनियाँ।।२।।

डारन आई प्रेम कौ डोरौ, रसबे छैला भोरौ।
हरे पात रंग चूनर पैरें, ललओं पातरंग जोरौ।
सरसों फूल सुनहरे गहनें, अरसी सौ तन गोरौ।
सुमन सुगंधन अतर मिलौनी, ओसन सपरो खोरौ।
छटा 'मनोहर' मधु उत्सव की, चढ़कें अटा बटोरौ।।३।।

करतीं अलि से मधुर मिलनियाँ, रसमय कली सजनियाँ।
मटर कोंस के चूरा पैरें, सेमफली पैजनियाँ।
चना फली नोंने पग नूपुर, सरसों फली ककनियाँ।
गोहूँ बाल के बिछिया पैरें, सनहई फली दुलनियाँ।
अरसी फली नाक में नथनी, मसरी फल झुकनियाँ।
कसकें बदन 'मनोहर' चोली, चाल चलें ठुमकनियाँ।।४।।

सज गई अजब अनौखी धरनी, सुखदाई मन हरनी।
तिरबिध समीर सुगंधित बहती, कलियन सें रसझरनी।
ऋतुराजा ने करी धरा पै, लीला जादूगरनी।
झिलमिल चमकें नई कोयलें, दिल में हलचल करनी।
कोयलिया के राग 'मनोहर' पाप हरन बैतरनी।।५।।

फागें कोयल के दल गायें, फसलें फाग मनायें।
सरसों राई मटर कौंसन कीं, पिचकारीं पकरायें।
घेंटी के गडुअन में निजरंग, अरसी चना लुकायें।
कढ़त आऊत वालें भीतर सें, रंग की पिचक दबायें।
सुमन सींकरा बूँद 'मनोहर', सबपै रंग बरसायें।।६।।

राधा बन गई धरा दुलैया, बने बसंत कन्हैया।
राधा की हर एक सहेली, बन गई फसल डरैया
रंग पलासी फूल बने हैं, पिचक पवन पुरवैया।
निज लाली की गेली छिड़कत, सांध्य सखा रवि भैया।
तारन सुमन 'मनोहर' नभ सें, बरसा रही जुन्हैया।।६।।

भौंरा तान से तान मिलावें, मानों फागें गावें।
फिरें झुण्ड के झुण्ड फसल की, कलियन को चुटयावें।
तितली फिरें बसंत बहू सीं, बसन पंख फहरावें।
मिलन संदेसे कलियन–कलियन, गाकें मधुर सुनावें।
देख 'मनोहर' छटा बसंती, मन मधुकर मुसकावें।।८।।

– ३/४, प्रोफेसर्स कॉलोनी, छतरपुर

BUNDELI VIKAS SANSTHAN BASARI, CHHATARPUR (M.P.)
INCOME & EXPENDITURE A/C FOR THE YEAR 2002-2003

EXPENDITURE	Rs.	Rs. (R)	INCOME	Rs.	Rs. (R)
Bundeli Utsav Expenses		7,36,716=00	Smarika Advartisement		4,00,925=00
Other Activities		66,300=00	Grant Received		6,00,000=00
Plantation Expenses	16,300=00		From Govt. of M.P.	3,00,000=00	
Health Camp	50,000=00		(2001-02)		
			(2002-03)	3,00,000=00	
Other Expensis		31,285=00	Contribution & Donation		3,55,270=00
Travelling Exp.	14,722=00		Membership Fees		2,880=00
Audit Fees & Income Tax	9,000=00		Interest From Bank		3,315=00
Photocopy & Typing	1,654=00				
Bank Commision	2,941=00				
Miscellanious Exp.	1,500=00				
Depreciation Charged	1,468=00				
Add Excess of Income Over Exp.		5,28,089=00			
TOTAL :		13,62,390=00			13,62,390=00

Certificate from management
certicied that above income & expenditure is correct.

AUDIT REPORT
As per our reoprt on Banlance Sheet

SHOBHA LAL GUPTA — PRESIDENT
JITENDRA SINGH — SECRETARY
SAGAR DATED 11-7-03
R. AGRAWAL — CHARTEDED ACCOUNTANTS (SEAL)

बुन्देलखण्ड की पहचान बना बुन्देली उत्सव

- भरत श्रीवास्तव, छतरपुर

कला, संस्कृति, संगीत मनुष्य जीवन के आवश्यक अंग है। व्यक्ति चाहे अमीर हो या गरीब, बड़ा हो या छोटा, पिछड़ा हो या उन्नत, सबका कला के प्रति प्रेम, संस्कृति से जुड़ाव एवं संगीत से लगाव होता ही है। इसलिए समाज में भी इनको बहुत महत्व दिया जाता है। हर समाज की अपनी परम्परायें होती हैं, संस्कृति होती है, यहां तक कि गीत संगीत, नृत्य भी अलग-अलग समाजों का पृथक होता है। इसी तरह भौगोलिक क्षेत्र के अनुसार भी कला, संस्कृति और परम्पराओं में भिन्नता रहती है। उनमें अपनी विशेषता होती है, अपना रंग होता है, अपना ढंग होता है और अपनी पहचान होती है।

ऐसी ही अपनी विशेषता लिए अपनी अलग पहचान लिए बुन्देलखण्ड की कलासंस्कृति भी है जो वर्वस सबको आकर्षित और आल्हादित करती है। बुन्देलखण्ड के गीत, संगीत, नृत्य, चित्रकारी, शिल्पकारी सब में एक अनोखापन है, एक चमक है, खिचाव है, उत्साह है और आल्हाद है। लेकिन आज के इस भौतिकतावादी युग में बढ़ती पश्चिमी सभ्यता और जीवन की जटिल होती आपाधापी में धीरे-धीरे मूल कला संस्कृति डूबती जा रही है। संचार क्रांति एवं इलेक्ट्रानिक युग ने बहुत सी अच्छी परम्पराओं को धूमिल कर दिया है। अतः इस अपनी कला और संस्कृति को बचाये रखने की जरूरतें महसूस की जाने लगी है। साथ ही बुन्देली कला, साहित्य, गीत, संगीत और खेलों को जन-जन तक पहुंचाने, देश के दूसरे भागों में जनाने के लिए प्रयत्नों की आवश्यकता हो गयी है। इसी बात को दृष्टि में रखकर एक ठेठ और बुन्देली कलासंस्कृति में डूबे गांव बसारी में बुन्देली उत्सव का आयोजन पिछले आठ सालों से किया जा रहा है।

इस उत्सव में बुन्देलखण्ड की कला-संस्कृति, खेलों और परम्पराओं को तो प्रस्तुत किया ही जा रहा है। साथ ही लुप्त होती कला संस्कृति की तरफ भी पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। यह उत्सव सात दिनों तक चलता है। और उसमें बुन्देलखण्ड के प्रचलित खेल जिनमें कबड्डी, खो-खो, बॉलीवाल और दौड़-कूंद के अलावा गिल्ली-डंडा और चौपर जैसे खेल भी होते हैं, इसके अलावा विभिन्न जातियों, समाजों, समूहों में प्रचलित नृत्य-गायन आदि जैसे कछियायी, ढ़िमरयाई, धुवयाई, चमरयाई आदि के कार्यक्रम भी होते है। उत्सवों एवं संस्कारों के अवसरों पर गाये जाने वाले गीत, नृत्य आदि भी जैसे बधाई, सोहरे, दादरे, कार्तिक गीत, देवी गीत आदि भी होते हैं और इस उत्सव का सबसे बड़ा आकर्षण होता है बुन्देलखण्ड का प्रसिद्ध लोकनृत्य राई। जिसको देखने के लिए आस-पास के गावों के ही नहीं, दूर-दराज से हजारों लोग आते हैं। दलदल घोड़ी, बहुरूपिये और अन्य कलाओं का भी प्रदर्शन होता है।

इस सात दिवसीय उत्सव के विशेष आकर्षण होते है अश्व नृत्य, देश के नामी पहलवानों की कुश्ती, बैलगाड़ी दौड़ आदि पूरा सप्ताह एक पूरा पूर्व हो जाता है, त्योहार बन जाता है। उत्साह, हर्ष, खुशी, मेल-मिलाप, स्नेह, प्यार, अपनापन सबकुछ ऐसा होता है मानो जीवन में आनन्द ही आनन्द हो। न कहीं दुख न समस्या, न पीर और न कष्ट, और यह उत्सव चलता है सबके सहयोग से, सबकी लगन से, उत्साह से, प्रेरणा से और आयोजन से जुड़े कर्मठ निष्ठावान लोगों के अथक परीक्षम से। सात दिवसीय महाराज छत्रसाल स्मारक टूर्नामिन्ट और ७ दिवसीय बुन्देली सांस्कृतिक कार्यक्रम इस उत्सव के आयाम हैं। इस वर्ष भी यह उत्सव १७ फरवरी से २३ फरवरी तक आयोजित हो रहा है।

पिछले वर्ष २००३ में सातवां बुन्देली उत्सव १० से .. फरवरी के बीच आयोजित किया गया था। उत्सव का उद्घाटन प्र.. के तत्कालीन सहकारिता मंत्री डॉ. गोविन्द सिंह ने किया। उन्होंने बुन्देली संस्कृति को बचाये रखने और उसे मजबूत बनाये रखने में सहायक बने बुन्देली उत्सव की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता सांसद सत्यवृत चतुर्वेदी ने की। उद्घाटन के अवसर पर स्कूली बच्चों ने स्टेडियम में रंगा-रंग कार्यक्रम प्रस्तुत किये। जिन्हें दर्शकों ने खूब सराहा। उद्घाटन के पश्चात् कबड्डी, बॉलीबॉल एवं चौपर की प्रतियोगिताएं हुयीं तथा दौड़ प्रतियोगिताएं भी सम्पन्न हुयीं। शाम को बुन्देली उत्सव के सांस्कृतिक कार्यक्रमों की श्रृंखला का उद्घाटन प्रदेश के तत्कालीन संस्कृति मंत्री श्री अजय सिंह ने किया। तथा अध्यक्षता तत्कालीन जनसंपर्क मंत्री श्री मानवेन्द्र सिंह ने की व विशिष्ठ अतिथि के रूप में तत्कालीन सहकारिता मंत्री डॉ. गोविन्द सिंह जी उपस्थित थे। उद्घाटन के साथ ही प्रदेश के जाने-माने साहित्यकार एवं आलोचक डॉ. कपिल तिवारी को राव बहादुर सिंह बुन्देला बसारी सम्मान से सम्मानित किया गया। इसी अवसर पर उत्सव की पत्रिका बुन्देली बसन्त का भी मुख्य अतिथि श्री अजय सिंह ने विमोचन किया तथा देररात तक सांस्कृतिक कार्यक्रम चलते रहे। दूसरे दिन ११ फरवरी को खेल प्रतियोगिताएं हुयी जिसमें दौड़ों, कूंदों की प्रतियोगिताओं के साथ ही बॉलीबॉल के मैच हुये। ऐथलेटिक्स में मौदहा के संतोष सिंह और राठ की सरिता यादव ने शानदार प्रदर्शन कर कई कीर्तिमान बनाए। दूसरे दिन की संध्या में सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत राजस्थान का कालबेलिया और निमाड़ का गणगौर नृत्य का आयोजन म.प्र. आदिवासी लोक-कला परिषद के सौजन्य से हुआ। जबकि देर रात तक स्कूली बच्चों के बड़े ही मनोरंजक, सांस्कृतिक कार्यक्रम हुये। ये कार्यक्रम आयशर ट्रैक्टर्स के महाप्रबंधक युवराज महरोत्रा के मुख्य आतिथ्य एवं जिला पंचायत छतरपुर के अध्यक्ष श्री देवकी नन्दन पाण्डेय की अध्यक्षता में हुये। इसी कार्यक्रम के साथ ही बुन्देली पोषाक प्रतियोगिता भी हुयी जिसमें बरेठी

के जुझार सिंह प्रथम एवं धामची के बैजनाथ नामदेव दूसरे स्थान पर रहे।

सातवें बुन्देली उत्सव का तीसरा दिन बड़ा ही रोमांच भरा रहा। जिसमें देश के बड़े–बड़े एवं प्रसिद्ध पहलवानों की कुस्तियां हुयीं जिसमें महिला पहलवान गीता की कुश्ती, हरियाणा की महिला पहलवान रोशन के बीच हुयी। जिसका २०००० दर्शकों ने भरपूर आनन्द उठाया। रात को बुन्देली नाटकों का मंचन हुआ। जिसमें विशेष प्रस्तुति दतिया के दीपशिखा संस्था के नाटक 'सुन्दरिया' की रही। नाटकों की इस प्रतियोगिता में दर्पण रंगमंच खजुराहो के नाटक 'ना जइयो परदेश' को प्रथम स्थान मिला। जबकि दूसरे नम्बर पर भारतीय जन नाट्य मंच (इप्टा) छतरपुर द्वारा प्रस्तुत 'करमगढ़ा' नाटक द्वितीय रहा। इस आयोजन के मुख्य अतिथि तत्कालीन राजस्व मंत्री श्री वीरसिंह रघुवंशी रहे। उन्होंने टीकमगढ़ के साहित्यकार डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी को राव बहादुर सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान २००३ प्रदान किया। अनोखे कर्तबकार रामलाल चौरसिया की मूंछो के तथा अन्य कर्तब भी दर्शकों ने देखे और उन्हें सराहा।

चौथे दिवस दिन में रोमांचक बैलगाड़ी प्रतियोगिता हुयी जिसमें खुड़न के रामगोपाल प्रथम एवं लुगासी के बलदेव प्रसाद द्वितीय रहे और तीसरा स्थान बंधियन के रमेश यादव को मिला। बैलगाड़ी साज–सज्जा का पुरस्कार लुगासी के बलदेव प्रसाद ने व स्वस्थ बैलों के पुरस्कार गौमाकलाँ के कालीचरण पटेल ने जीता। इस कार्यक्रम में मुख्य अतिथि पुलिस अधीक्षक रवि गुप्ता ने पुरस्कार प्रदान किये। १४ फरवरी की रात को दिवारी, रावला, कछयाई, कार्तिक गीत, दल–दल घोड़ी नृत्य, ख्याल गायन एवं कहरवा की प्रतियोगिताएं हुयीं। जिसका शुभारम्भ तत्कालीन छतरपुर विधायक श्री उमेश शुक्ला ने किया।

उत्सव के छठवें दिन अश्वनृत्य की प्रतियोगिताएं हुयी जिसमें दूर–दूर से सजे–धजे घोड़े और घुड़सवार आये। जिन्होंने रब्बी–ढोल–ढमाकों के साथ अपने अनेक अचरज भरे कर्तब दिखलाये। इस अश्वनृत्य प्रतियोगिता में नैगुवां के प्रेमनारायण अवस्थी ने प्रथम, सेला के चतुरसिंह ने द्वितीय तथा सुरा के धूप सिंह यादव ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। घोड़ों की साज सज्जा का पुरस्कार कैथोकर के ओम प्रकाश पंडित ने तथा दूसरा पुरस्कार सरसेड़ के भज्जू यादव ने जीता। २१ घोड़ों ने प्रतियोगिता में अपने कर्तब दिखाये। रात को बुन्देलखण्ड की भूली बिसरी एवं प्रचलित १९ प्रकार की लोककला संस्कृति से जुड़ी विधाओं की प्रस्तुति दी गयी। जिसमें आल्हा, बधइया, ढिमरयाई, कांड़रा, चमरयाई, बहुरूपिया, सोहरे, दादरे, बिलवारी, गारी आदि की प्रतियोगिताएं हुयीं। इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि तत्कालीन उच्च शिक्षा मंत्री श्री रत्नेश सालोमन रहे। जिन्होंने डॉ. कन्हैया लाल शर्मा 'कलश' को राव बहादुर सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान २००३ भी प्रदान किया। इसी दिन उत्तर प्रदेश जनजातीय लोककला संस्कृति संस्थान लखनऊ की ओर से ढिमरयाई एवं नाग–नागिन की प्रस्तुति की गयी। उत्सव के इसी दिन में बुन्देली व्यंजन की प्रतियोगिताएं हुयी जिसमें बसारी की सुधा अग्रवाल व सखियां प्रथम, खजुराहो का चंदेला होटल द्वितीय रहा। उत्सव के अगले दिन रात्रि में बुन्देलखण्ड का लोक प्रसिद्ध नृत्य राई एवं फाग गायन की प्रतियोगिताएं हुयीं। इसमें सागर की बसन्त सेना राई पार्टी को प्रथम तथा फाग गायन में शीतल प्रसाद उदयपुरा को प्रथम स्थान मिला। इस कार्यक्रम को देखने बसारी का स्टेडियम खचाखच भरा रहा। बुन्देली उत्सव का समापन १६ फरवरी को हुआ। जिसमें उत्सव के अन्तर्गत प्रस्तुत की गयी चुनिन्दा प्रस्तुतियों को प्रस्तुत किया गया। समापन समारोह के मुख्य अतिथि तत्कालीन जनशक्ति नियोजन मंत्री श्री राजा पटैरिया ने इस उत्सव को बुन्देली संस्कृति के उन्नयन का एक मजबूत आधार बतलाया। समापन समारोह की अध्यक्षता तत्कालीन जनसंपर्क मंत्री मानवेन्द्र सिंह ने की तथा प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कृत किया। इस उत्सव में जहां कार्टूनिस्ट नीरज सोनी की कार्टून प्रदर्शनी आकर्षण का केन्द्र रही वहीं मेला और प्रदर्शिनी में भारी भीड़ बराबर बनी रही। उत्सव के साथ–साथ सात दिवसीय मेला और विभिन्न विभागों एवं सस्थाओं द्वारा आकर्षक प्रदर्शिनियां लगायी गयीं। इस उत्सव के ध्वजवाहक, प्रणेता तथा कर्ताधर्ता श्री शंकर प्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्नाराजा' की प्रशंसा हर वह व्यक्ति करता देखा–सुना गया जो इस उत्सव में शामिल हुआ और शायद इसी दृष्टि से ग्राम पंचायत करीं ने उनका सम्मान भी किया। सम्मान स्वरूप ५०००=०० रुपये प्रदान भी किये जिसे उन्होंने इतनी ही और राशि मिलाकर समिति को प्रदान कर दिये। यह उत्सव बुन्देलखण्ड की पहचान बन गया है और सालभर लोगों को इसकी प्रतीक्षा रहती है।

— नल विभाग के सामने,
छतरपुर (म.प्र.)

□

जे जग जननी हाँ खारय

– शंकर सिंह बुन्देला

जे जग जननी हाँ खा रय,
अगर गर्भ में पल रई बिटिया, गर्भपात करवारय। जे जग ......
इन दुष्टन की हम का कइये, कौन इने हम गारी दइये,
जौन जगत हाँ जनत जा जननी, ऊ के प्रान खिचारय। जे जग ......
ई के बिन कैसें चल पाहै, कैसे आँगे पीढ़ी बढ़ पाहे,
जीवन दैबे वारी नारी कौ, जे अस्तित्व मिटा रयै। जे जग ......
पाप–पुन्न से जे नई डर रय, गर्भपात कर हत्या कर रय
कन्या भ्रूण के हत्यारे, कलजुग की शान बढ़ा रय। जे जग ......
समाज अगर चुप बैठो रैहे, नइयाँ शक भौतउँ पछतैहे
माँ सिल के बैठे समाज हाँ, दल–दल में धसवा रय। जे जग .....
कैसे मिलहे सीता माई, कैसे मिलहे लक्ष्मी बाई,
कैसे मिलहे माँ अनुसुइया, पैलउँ से मरवा रय। जे जग ......
माता खुद अपनो मत दै रयी, गर्भपात करवा दो कै रई
अपने हाथन माता ने, ममता के मूल मिटा दय। जे जग ......

— ग्रा.पो. देवरदा, वि.ख. बलदेवगढ़
जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देली उत्सव एवं महाराजा छत्रसाल मेमोरियल टूर्नामेन्ट के आयोजन हेतु

ग्राम बसारी में कार्य हेतु समितियां

कार्यक्रम में सभी समिति के सदस्यों के क्रियान्वयन हेतु नियंत्रण समिति–

श्री दिवान त्रिलोक सिंह बुन्देला, प्रभारी
श्री भारत कृष्णदेव सिंह बुन्देला
श्री पर्वत सिंह बुन्देला
श्री शारदा प्रसाद शुक्ला

स्वागत व्यवस्था हेतु समिति –

श्री रामसेवक अग्रवाल
डॉ. अवधकिशोर अवस्थी
श्री संतोष अग्रवाल
डॉ. मुराद अली
डॉ. जगदीश अरजरिया
श्री केदारनाथ अग्रवाल
श्री वृन्दावन रैकवार
श्री सिब्बा रैकवार
श्री कल्लू रैकवार
श्री तोता रैकवार (नत्थू)
श्री शिब्बू रैकवार (पुन्नू)
श्री रामस्वरूप रैकवार (दसुवा)

कृषि मेला समिति –

श्री प्रेमनारायण रूसिया
श्री आनंद शुक्ला
श्री जुगल किशोर गुप्ता
श्री सुरेश साहू
श्री बाबा अग्रवाल (महेन्द्रा ट्रैक्टर्स)
श्री असाटी जी (मैस्सी ट्रैक्टर्स)
श्री टंडन जी (टंडन बीज भण्डार)
श्री नन्नेभैया पटेल
श्री रमेश चौरसिया
श्री मोहन चौरसिया

भोजन व्यवस्था एवं कूपन वितरण हेतु समिति –

श्री महेश प्रसाद अग्रवाल (पम्मू) प्रभारी
श्री किशोरी लाल अग्रवाल, प्रभारी
श्री धर्मेन्द्र खरे, सहायक
श्री संजय खरे
श्री मनोज अग्रवाल

मंचसज्जा व बैठकव्यवस्था समिति,

श्री शोभालाल गुप्ता, प्रभारी
श्री अच्छेलाल यादव, प्रभारी
श्री बारेलाल तनय धनुवां गड़रिया
श्री मुल्ली यादव
श्री लली गड़रिया
श्री हीरा गड़रिया
श्री बलराम अहिरवार
श्री बबलू तनय मठोर अहिरवार
श्री भागीरथ यादव
श्री पन्ना तनय सरिया अहिरवार
श्री गंगू तनय पिरवा अहिरवार
श्री मन्नू तनय गुटुआ गड़रिया
श्री ओमप्रकाश बारेलाल
श्री जगदीश तनय रामप्यारे गड़रिया

गेट व्यवस्था व झंडा बैनर समिति–

श्री शीतल प्रसाद रावत, प्रभारी
श्री महादेव यादव, प्रभारी
श्री मुल्ली अहिरवार
श्री आशाराम तनय रजुआ
श्री राजू तनय चटरा
श्री भगवान दास तनय लल्लू अहिरवार
श्री दीपचन्द्र तनय अमरा अहिरवार
श्री देवराम तनय मुल्ली अहिरवार
श्री पप्पू तनय कन्दू अहिरवार
श्री किशोरी लाल कुशवाहा
श्री जगदीश प्रसाद पटेल 'पप्पू'
श्री कन्छेदी कुशवाहा
श्री बाला तनय मनुवा

चाय–नाश्ता समिति (जलपान व्यवस्था समिति) –

श्री सुरेश अग्रवाल (पप्पू) प्रभारी
श्री शशिकान्त शर्मा, प्रभारी
श्री राजेश रैकवार
श्री संतोष रैकवार
श्री सुरेन्द्र रैकवार

मेला व्यवस्था समिति –

श्री कैलाश अग्रवाल, प्रभारी
श्री बाबूलाल खरे प्रभारी
श्री केदारनाथ अग्रवाल
श्री सरजू यादव, प्रभारी
श्री अनारी लाल लोधी
श्री पुन्ना अहिरवार
श्री छोटा तनय रामदास अहिरवार
श्री दरवारी तनय बिहारी अहिरवार
श्री रमेश तनय गनपता अहिरवार
श्री पंचा तनय पिरवा कोंदर

प्रदर्शनी व्यवस्था समिति –

श्री पंचम लाल विश्वकर्मा, प्रभारी
श्री रामस्वरूप रावत
श्री धनुवां कोंदर
श्री रमेश तनय रजवा अहिरवार

विद्युत व्यवस्था समिति –

श्री लल्ली जैन (समस्त व्यवस्था)
श्री ऋतेश अग्रवाल
श्री सुशील सोनी
श्री रामचरण रैकवार
श्री नत्थू कुशवाहा
श्री सुम्मेर सिंह
श्री गनेश रैकवार
श्री बराती धोबी

आवास व्यवस्था समिति (स्कूल के तीन कमरों में) –

श्री लखन यादव, प्रभारी
श्री वृन्द्रावन राजपूत (घस्सू) प्रभारी
श्री राजू तनय बल्दुआ रैकवार
श्री गोपाल रैकवार तनय भुम्मी
श्री कल्लू तनय लल्लू अहिरवार
श्री मुकेश विश्वकर्मा (भोजन व्यवस्था)
श्री रामपाल सिंह (भोजन व्यवस्था)
श्री कुन्जी अहिरवार

आवास व्यवस्था समिति (स्कूल के अन्य तीन कमरों में) –

श्री यूनुस 'इद्दूखां', प्रभारी
श्री परमानन्द यादव, प्रभारी
श्री कलन तनय सेवा लाल रैकवार
श्री सुखलाल तनय भरोसा अहिरवार
श्री देशराज अहिरवार
श्री रामकुमार यादव (भोजन व्यवस्था)
श्री राकेश बाल्मीकि

आवास व्यवस्था समिति (आर.आई.क्वार्टर में) –

श्री बाबू लाल यादव, प्रभारी
श्री जगदीश तनय मुल्ली यादव
श्री कल्ला रैकवार
श्री रमेश तनय हरजुआ अहिरवार

आवास व्यवस्था समिति
(पंचायत भवन क्र. १ में) –
श्री प्रभु यादव, प्रभारी
श्री रतन यादव
श्री बिहारी लाल तनय हल्कइयां अहिरवार

आवास व्यवस्था समिति
(न्यू कार्यालय भवन) –
श्री राजू तनय सरपटियां काछी,, प्रभारी
श्री विजय रैकवार
श्री भगवान दास तनय तुलसीदास अहिरवार

आवास व्यवस्था समिति
(पंचायत भवन क्र. २)
श्री राजेश अग्रवाल, प्रभारी
श्री छिंदी अहिरवार
श्री कल्लू तनय बब्बू रैकवार

टेंट व्यवस्था समिति –
श्री अखिलेश्वर प्रसाद चौबे, प्रभारी
श्री राममिलन श्रीवास, प्रभारी
श्री सुरेश तनय तुलसीदास अहिरवार
श्री रामकृपाल यादव,
श्री गज्जू तनय बिहारी अहिरवार

अश्वनृत्य व्यवस्था समिति –
श्री आर. सिंह, प्रभारी
श्री मन्नू यादव, सहायक
श्री मथुरा यादव, सहायक
श्री खुमान धोवी
श्री रघुनंदन साहू

बैलगाड़ी दौड़ व्यवस्था समिति –
श्री देवी प्रसाद पटेल
श्री मथुरा प्रसाद पटेल
श्री भुमानीदीन पटेल
श्री परसू कुशवाहा
श्री करंजुआ अहिरवार
श्री बन्दू यादव तनय गुटियां अहिरवार
श्री प्यारे लाल अहिरवार
श्री रजुआ अहिरवार
श्री हलकाई तनय रामप्यारे गड़रिया
श्री सल्लू तनय लीला अहिरवार

कम्प्यूटर एवं पत्रलेखन समिति –
श्री महेन्द्र शुक्ला, प्रभारी
श्री आदित्य दुबे, प्रभारी
श्री अरूण शुक्ला, सहायक
श्री मंगल सिंह बुन्देला, सहायक

स्टेडियम में रात्रि सुरक्षा व्यवस्था समिति–
श्री भगवानदास अहिरवार
श्री अपरवली अहिरवार
श्री द्वारिका अहिरवार
श्री हीरालाल पाल
श्री टुड़ी कांदर

खेल व्यवस्था समिति (कबड्डी)–
श्री महादेव विश्वकर्मा, प्रभारी
डॉ. बंगाली, प्रभारी
श्री कन्हैया लाल यादव, सहायक
श्री शहीद खान श्री लखन प्रजापति
श्री मुकेश साहू
श्री हेमचन्द्र यादव (महादेव)
श्री मातादीन अहिरवार
श्री मिजाजी यादव श्री गौरव राय
श्री रामस्वरूप रैकवार श्री सुरेन्द्र रैकवार
श्री राकेश पटेल (कल्लू)
श्री राजू कुशवाहा श्री जगदीश अवस्थी
श्री कैलाश तनय कृपाल पटेल
श्री दाऊ तनय रामप्रसाद पटेल

खेल व्यवस्था समिति (वालीबाल)–
श्री पर्वत सिंह बुन्देला, प्रभारी
श्री संजय सिंह, प्रभारी
श्री राममिलन पटेल
श्री महेन्द्र विश्वकर्मा
श्री सिराज खान
श्री अनिल पटेल
श्री भागवत पटेल, कर्री
श्री दुर्गा अहिरवार
श्री विमलेश जोशी
श्री दिनेश रैकवार
श्री अजय बाल्मीकि
श्री कमलेश कोरी
श्री सुरेन्द्र सिंह बुन्देला
श्री बिनोद तनय बैजनाथ पटेल
श्री रवीन्द्र सेन
श्री रामकिशोर रैकवार
श्री सुरेश हरिजन

खेलकूद व्यवस्था समिति
(दौड़, कूद)–
श्री पुष्पेन्द्र सिंह बघेल, प्रभारी
श्री आदित्य दुबे, प्रभारी
श्री छोटे खान

श्री विश्वनाथ सिंह बुन्देला
श्री अशोक जोशी
श्री हरिश्चन्द्र अहिरवार
श्री धर्मेन्द्र राजपूत
श्री लक्ष्मी पटेल तनय मातादीन पटेल

अखाड़ा व्यवस्था समिति –
श्री मातादीन रैकवार
श्री रामस्वरूप पटेल

चौपर व्यवस्था समिति –
पं. श्री गोकुल प्रसाद शुक्ला
श्री मूलचन्द्र जोशी
श्री सुल्ली रैकवार

कार्यालय प्रभारी –
श्री नवल किशोर अग्रवाल, प्रभारी
श्री भागवत राजपूत
श्री गयाप्रसाद साहू

पंजीयन समिति –
श्री बी.एन. वर्मा, प्राचार्य, प्रभारी
श्री राममूर्ति नामदेव
श्री कृपाराम पटेल
श्री महेन्द्र शुक्ला
श्री महेश्वर रामभगत
श्री ग्यादीन अहिरवार

बैठक व्यवस्था समिति –
श्री कन्हैया लाल यादव प्रभारी
श्री बीरेन्द्र यादव 'मुन्नू'
श्री लखन तनय गोकुल यादव
श्री सिराज खां
श्री मथुरा यादव
श्री मुन्नू पटेल
श्री जीतेन्द्र सोनी
श्री सीताराम शिवहरे
श्री स्वामीदीन कुशवाहा
श्री भागचन्द्र कुशवाहा
श्री जस्सू सोनी

डोड़ा (नौका) दौड़ समिति –
श्री विजय रैकवार प्रभारी
श्री चन्दू रैकवार श्री लखन रैकवार
श्री राकेश रैकवार श्री कल्ला रैकवार
श्री भुम्मी रैकवार श्री दिव्या रैकवार
श्री रामस्वरूप रैकवार
श्री टुम्मी रैकवार

□

बुन्देली हैरीटेज विलेज



बसारी के तालाब का विहंगम दृश्य



बसारी की ऐतिहासिक गढ़ी

मान सम्मान पुरस्कार



तत्कालीन पर्यटन एवं संस्कृति मंत्री श्री अजय सिंह राहुल भैया श्री कपि तिवारी निदेशक म.प्र. आदिवासी लोक कला परिषद् को सम्मान पत्र भेंट करते हुए । तत्कालीन जनसंपर्क मंत्री श्री मानवेन्द्र सिंह भँवर राजा, तत्कालीन सहकारिता मंत्री डॉ. गोविन्द सिंह, मुन्ना राजा, देवेन्द्र प्रताप सिंह (डिल्लू राजा), आदि भी दिखाई पड़ रहे हैं।



दलदल घोड़ी नृत्य के कालाकारों को पुरस्कार देते हुएतत्कालीन मंत्री श्री राजा पटेरिया एवं बुन्देली उत्सव के संरक्षक श्री शंकर प्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्ना राजा' तथा दीवान श्री त्रिलोक सिंह बसारी ।



बाल कलाकारों एवं पुरुष एवं महिला कलाकारों को प्रमाण पत्र देते हुए तत्कालीन जनसंपर्क मंत्री श्री मानवेन्द्र सिंह 'भँवर राजा' एवं तत्कालीन मंत्री श्री राजा पटेरिया।

Website : www.bundeliutsav.org



मथुरा वृन्दावन की कृष्ण भक्ति



बुन्देली की एक भावना प्रधान वधैया की प्रस्तुति

बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिकता



हाराज छत्रसाल का स्मारक (मकबरा)



महाराज छत्रसाल द्वारा राज्य भ्रमण के दौरान
ग्राम बसारी में बैठने के स्थान पर उनकी विशाल मूर्ति की स्थापना



स्वांग का एक मनमोहक चित्र



नवीनतम जानकारियों एवं तकनीकियों के लिए प्रदर्शनियाँ



मध्यप्रदेश के मालवांचल की लोकप्रिय प्रस्तुति गणगौर



राजस्थान का प्रशंसनीय कालवेलिया नृत्य



दिवारी नृत्य



कछियाई गायन



राई नृत्य



बुन्देली उत्सव


बुन्देली उत्सव 2003 बसारी
10 फरवरी 2003 सोमवार से 16 फरवरी 2003 तक
अपुन ऐंसई नेह जोरें रइयो
अपुन ने इतै पधार कैं भौतई किरपा करी


सातवों
बुन्देली उत्सव
उत्सव 2003
बुन्देली उत्सव बसारी-03

झाँकी





बुन्देली खेल-कूद प्रतियोगिताओं का उद्घाटन



खिलाड़ी टोलियों का मार्चपास्ट



गाँव-गाँव में खेली जाने वाली कबड्डी



महिला कुश्ती का एक दृश्य



चौपड़ : दिमागी कसरत, बुजुर्गों के व्यस्त क्षण



बैलगाड़ी दौड़ का तो क्या कहना ?



'घुड़वन को नाच ' साधना और संतुलन की बेजोड़ मिसाल



बुन्देली व्यंजनों की अपनी विशेष महक :
ग्रहणियों और पाँच सितारा होटलों की व्यंजन प्रतियोगिता

साहित्य



अखिल भारतीय बुन्देली कवि सम्मेलन



बुन्देली विकास संस्थान द्वारा आयोजित लोकगीत संध्या



आल्हा : वीर रस गायन



महिला कलाकारों द्वारा बुन्देली गीत की प्रस्तुति



बाल कलाकारों द्वारा गायन



बाल कलाकारों द्वारा नृत्य

राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक द्वारा व्यक्तिगत और संस्थागत फिक्स डिपाजिट पर सर्वाधिक ब्याज

अवधि		50 लाख से 1 करोड तक	1करोड से अधिक
1 वर्ष एवं 2 वर्षों से कमः	**6.50%**	6.50%	6.50%
2 वर्ष एवं 3 वर्षों से कम :	**7.00%**	7.00%	7.00%
3 वर्ष या अधिक :	**7.25%**	7.50%	7.75%

- *अर्धवार्षिक, त्रैमासिक, मासिक ब्याज की सुविधा.*
- *ब्याज के स्त्रोतों पर बैंक द्वारा आयकर कटौती नहीं.*
- *जमा निक्षेपों पर तुरंत ऋण सुविधा.*
- *वरिष्ठ नागरिक को आधा प्रतिशत अधिक ब्याज का लाभ.*

संभागीय शाखाओं एवं जिला स्तर पर कार्यरत जिला बैंकों में राशि विनियोजित कर भविष्य को सुरक्षित बनाएं

बैंक द्वारा कृषि विकास ऋण के साथ-साथ शहरी एवं ग्रामीण आवास ऋण, प्याज भण्डारण, शीतगृत, महिला कुटीर उद्योग,कृषि क्लीनिक, खेती की जमीन क्रय करने, सिंचाई, कृषि यंत्र, मिनी बस, मिनी ट्रक, आटो, स्कूटर, मोटर साइकिल आदि के लिए ऋण वितरण प्रारम्भ ।



म.प्र.राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक मर्या.
विकास भवन,38-बी,एम.पी.नगर,जोन-1भोपाल द्वारा प्रसारित
(राज्य विकास बैंक). फोन नं. 2550151,152

e-mail : mpvikasbank@rediffmail.com

आकल्पन एवं मुद्रण : प्रियंका ऑफसेट, 25-ए, प्रेस कॉम्पलेक्स, भोपाल फोन : 0755-2555789